राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 20 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2018**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

श्री अरविन्द दर्शन में आध्यात्मवाद व भौतिकवाद का समन्वय

❑ **प्रोफेसर विभा मुकेश**

श्री अरविन्द की तत्व मीमांसा मूल रूप से वेदान्त ईशोपनिषद तथा भागवद्गीता पर आधारित है। परमसत्ता के विषय में अपने विचार व्यक्त करते समय वे विज्ञान की दार्शनिक व्याख्याओं तथा भौतिकवाद, द्वैतवाद तथा आत्मगत प्रत्ययवाद और अद्वैतवाद के आध्यात्मवादी सिद्धांतों की पूर्णताओं का भलीभाँति दिग्दर्शन कराते हैं। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत श्री अरविन्द के आध्यात्मवाद एवं भौतिकवाद के समन्वय का विस्तार से विवेचन किया गया है।

योगिराज अरविन्द (1872-1950) के व्यक्तित्व में भारतीय दर्शन की आत्मा का सच्चा एवं पूर्ण स्वरूप दिखायी देता है। उनकी नैतिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों ने निःसन्देह उन्हें बहुमुखी प्रतिभा का धनी बना दिया। रोमा रोला ने श्री अरविन्द को एशिया की प्रतिभा तथा यूरोप की प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ठ समन्वय माना है।

श्री अरविन्द का जन्म 15 अगस्त 1872 को हुआ। उनके पिता का नाम डॉ. कृष्णघन घोष था जो कि विचारों से स्वयं पाश्चात्य सभ्यता के प्रेमी थे। औषधि विज्ञान की उच्चतर शिक्षा के लिए जीवन कुछ वर्ष एडिनबरा विश्वविद्यालय में व्यतीत कर चुके थे। श्री अरविन्द का बाल्यकाल इंग्लैण्ड में ही व्यतीत हुआ। सात वर्ष की आयु में ही उनके पिता उन्हें एक अंग्रेज परिवार की देख-रेख में छोड़ आये। अंग्रेजी भाषा पर अच्छा अधिकार होने के साथ-साथ उन्होंने फ्रैंच, ग्रीक तथा लेटिन भाषायें भी सीख लीं। होमर, गेटे, मैजिनी तथा गैरी बाल्डी के जीवन चरित्रों से प्रभावित होने के कारण उनकी साहित्य की ओर प्रवृत्ति हुई। इंग्लैण्ड में 'इण्डिया मजलिस' तथा लोटस एण्ड डैगर आदि संस्थाओं से प्रभावित हुए बिना न रह सके। ब्रिटेन में निवास करते हुए ही उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आलोचना करते हुए कुछ लेख प्रकाशित किये, जिसके कारण अंग्रेज शासकों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ। भारत वापसी के कुछ दिनों बाद ही पाश्चात्य सभ्यता के प्रति उनका मोह टूट गया। आर्य सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति उनका मोह एवं आकर्षण दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया। स्वामी विवेकानन्द एवं स्वामी रामकृष्ण परमहंस के वैदान्तिक समन्वय का भी उन पर विशेष प्रभाव पड़ा।

श्री अरविन्द ने सन् 1863 से 1906 तक गुप्त रूप से राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेना शुरू कर दिया था। इस काल में वह बड़ौदा राज्य में सरकारी पद पर थे। वे बंगाल के राष्ट्रवाद के मान्य नेता बन गये। महाराष्ट्र केसरी लोकमान्य तिलक से सम्पर्क होने पर उनका एक क्रान्तिकारी संस्था से सम्बन्ध हो गया। सन् 1910 में श्री अरविन्द ने स्वयं को राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग कर दिया। उनके जीवन का एक बड़ा भाग योगाभ्यास में व्यतीत हुआ। उनका विश्वास था कि आध्यात्मिकता भारत को बचाती रही है। भारत की आध्यात्मिकता की विजय बहुत आवश्यक थी। इसी आध्यात्मिक संदेश को विश्व में पहुंचाने तथा भारत की आध्यात्मिक क्षेत्र में सर्वोच्चता स्थापित करने के लिए उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन योग साधना में लगा दिया। वे ब्रिटिश राज्य की सीमा को छोड़कर फ्रांसीसी बस्ती पॉडिचेरी चले गये जहां पर उन्होंने योगाश्रम ''अरविन्दआश्रम'' की स्थापना की और जीवनपर्यन्त योग साधना में लगे रहे। 5 दिसम्बर 1950 को पॉडिचेरी में उनका भौतिक शरीर चेतना शून्य हो गया और वे जीवन की उच्चतम अवस्था को प्रस्थान कर गये।

श्री अरविन्द की आध्यात्मिक गहराई तक पहुंच, उनका रहस्यवादी विवेचन-विश्लेषण, ससीम एवं असीम का समन्वय, उनकी तीक्ष्ण, प्रखर तथा असामान्य बौद्धिक क्षमता उनके योग का सर्वोष्कृष्ट उदाहरण हैं। उनके ग्रन्थ 'द लाइफ डिवाइन' के प्रकाशन के समय से संसार के प्रमुख विद्वानों का ध्यान श्री अरविन्द की ओर आकृष्ट हुआ एवं उनका महाकाव्य 'सावित्री' आध्यात्मिक काव्य के क्षेत्र में एक नवीन युग का प्रवर्तक माना जाता है। इसके अतिरिक्त उनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं गीता पर निबन्ध, योग का समन्वय, दी आइडियल ऑफ ह्यूमन यूनिटी, ह्यूमन

❑ **प्रोफेसर दर्शनशास्त्र विभाग, हे.न.ब. केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखण्ड)**

साइकल इत्यादि हैं। श्री अरविन्द को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए माननीय डॉ. राधा कृष्णन् ने उनकी उपलब्धियों का मूल्यांकन करते हुए कहा है कि "समकालीन भारतीय चिन्तकों में श्री अरविन्द सबसे मेघावी चिन्तक हैं। दर्शन के मूलभूत तत्वों तक उनकी पहुंच, आन्तरिक जीवन के निर्माण भी दिशा में उनका निष्ठावान प्रयास और मानवता तथा उनके भविष्य के प्रति उनका अगाध प्रेम उनकी कृतियों को वह गहराई एवं संपूर्णता प्रदान करता है जो अन्यत्र दुर्लभ है।"[1]। श्री अरविन्द की समन्वयवादी प्रवृति के कारण ही रोमा रोला ने श्री अरविन्द को एशिया की प्रतिभा तथा योरूप की प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट समन्वय मानते हुए कहा है कि वास्तव में श्री अरविन्द बहुमुखी प्रतिभा के धनी एवं एक कवि, चिन्तक, देशभक्त एवं सामाजिक-राजनीतिक पारखी थे। उनकी विचारधारा एक नवीन एवं उभरती हुई आत्मा के अवतार का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें आध्यात्मिकता की धारणा सक्रिय है।[2]

श्री अरविन्द के शब्दों में उनका दर्शनशास्त्र भारतीय व पाश्चात्य विचारधारा का समन्वय है। इस प्रकार से उन्होंने भारत के सन्यासवादी आध्यात्मवाद और पाश्चात्य जगत् के लौकिकवादी भौतिकवाद की परस्पर घोर विरोधी प्रवृत्तियों का समन्वय करने का प्रयास किया है। भारतीय आध्यात्मवादी उच्चतम प्रतिभा की उपलब्धि आर्य ऋषि-मुनियों के माध्यम से ही सम्भव हुई है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। बौद्धकालीन शिक्षाओं में भी उसी प्रतिभा की झलक दृष्टिगोचर होती है। लेकिन परवर्ती काल में मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में संसार त्याग पर अत्यधिक बल दिया गया है। जनमानस के दिल एवं दिमाग में यह धारणा घर कर गयी कि लौकिक जगत क्षणभंगुर एवं मिथ्या है। इसलिये भोगमय जीवन से दूर रहना ही उचित है। मुक्ति के लिए त्याग एवं वैराग्य अत्यन्त आवश्यक है। इसका परिणाम यह हुआ कि हमें अपने व्यवहारिक एवं प्राकृतिक जीवन से बहुत दूर हटा कर वास्तविक जीवन-संघर्ष में हमारी प्राण शक्ति को दुर्बल बना दिया गया। इसके फलस्वरूप व्यक्ति और समाज दोनों का ही अहित हुआ एवं रचनात्मक प्रगति रूक सी गयी। इसके विपरीत यूरोप में घोर लौकिकवाद एवं भौतिकवाद को प्रोत्साहन मिला है। सर्वत्र वाह्य वातावरण की विजय और समाज को बौद्धिक आधार पर संगठित करने की दिशा में अथक प्रयास ने मानवीय ज्ञान भण्डार को बहुत विस्तृत किया। हमारी सृजनात्मक शक्ति में अभूतपूर्व वृद्धि की तथा समाजवाद, समानता, मानवता, लोकतन्त्र के आदर्शों को प्रस्थापित किया। लेकिन इतना सब होने पर भी न तो आत्मा व परमात्मा की वास्तविकताओं को समझ सके और न ही समग्र संसार को नियमित व संचालित करने वाली ईश्वरीय शक्ति के रहस्य को खोल सके। यही कारण है कि यूरोप की सभ्यता एक अन्य सन्त पॉल अथवा एक दूसरे सन्त फ्रांसिस को जन्म न दे सकी है, जबकि भारत में ऐसे अनेक सन्तों का प्रत्येक युग में जन्म होता रहा है।

श्री अरविन्द का विचार था कि भारत तथा यूरोप दोनों ही अति की ओर चले हैं। अपने चरम रूप में न तो आध्यात्मवाद ही व्यवहारिक है और न ही भौतिकवाद जीवन का अन्तिम आदर्श है। इसलिए दोनों ही धाराओं का समन्वय न केवल अनिवार्य है अपितु उपयोगी भी है। योगिराज अरविन्द का यह विश्वास था कि यूरोपीय भौतिकवाद एवं भारतीय आध्यात्मवाद के मध्य उचित एवं व्यवहारिक सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। ऐसा हो जाने पर वह न केवल भारत के लिए अपितु समग्र विश्व के लिए भी कल्याणकारी एवं क्रान्तिकारी होगा। पूर्व-पश्चिम के इस समन्वयात्मक दृष्टिकोण के फलस्वरूप जिस नवीन दर्शन का जन्म होगा उसमें स्वाभाविक रूप से पदार्थ जैसे भूत, द्रव्य इत्यादि एवं आत्मा अथवा परमात्मा दोनों के महत्व को समान रूप से स्वीकार किया जायगा। योगिराज अरविन्द ने स्वलिखित कृतियों में इसी समन्वय को उजागर करने का प्रयत्न किया है एवं इस बात को स्पष्ट किया है कि केवल भौतिकवाद या केवल आध्यात्मवाद पर बल देना कदापि उचित नहीं होगा।

श्री अरविन्द के अनुसार परम सत् एक आध्यात्मिक तत्व है। वह केवल अविचल, अलक्ष्य, अनुभवातीत और अपरिवर्तनशील सत्ता नहीं है, अपितु उसमें गतिशीलता, उदविकास तथा एक से अनेक में परिवर्तित होने के गुण सदैव रहते हैं। अतः विविधता भी उतनी ही वास्तविक है जितनी की एकता वास्तविक है। यदि एक परमात्मा या निर्गुण ब्रह्म सत्य है, वास्तविक है अथवा सत् है तब असंख्य जीवों में बिखरे हुए उसी परमात्मा का प्रकाश आत्मा भी उतनी ही सत्य है, वास्तविक है। ठीक उसी प्रकार यह वाह्य जगत् उसी परमात्मा की वास्तविक सृष्टि है, आधारविहीन या काल्पनिक सृष्टि नहीं है। संसार का प्रत्येक द्रव्य या पदार्थ उसी परमात्मा की विभिन्न अभिव्यक्तियां हैं। अन्य शब्दों में पदार्थ भी आवरण युक्त आत्मा ही है। ब्रह्माण्ड विकास हेतु आत्मा स्व चेतना को स्वतः ही समाप्त

करके, सीमित करके अचेतन का रूप धारण कर लेता है। उस अचेतना से ही विकास का क्रम आरम्भ होता है और उत्तरोत्तर द्रव्य जीवन तथा मन का विकास होता है। अरविन्द ने अपनी विचारधारा में आत्मा और द्रव्य या भौतिक संसार के मध्य के अन्तर को दूर कर उन्हें समन्वित रूप में प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयास किया है। योगिराज अरविन्द के अनुसार वास्तव में ये दोनों एक ही हैं। एक से अनेक और अनेक से एक की अद्भुत अभिव्यक्ति के रूप में परमसत् सर्वत्र अभिव्यक्त हो रहा है।

श्री अरविन्द स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि ब्रह्म अर्थात् परम सत् का हमें ज्ञान नहीं है। विश्व चेतना में एक बिन्दु ऐसा है जहाँ चेतना एक विलक्षण रूप ले लेती है, जब उसे स्पष्ट प्रतीत होने लगता है कि कुछ है, तत्पश्चात् वह इसका निर्धारण भी करती है, फिर भी वह 'कुछ' इस निर्धारण से पहले ही रहता है। इसलिए अरविन्द स्वीकारोक्ति स्वरूप कहते हैं कि आरम्भ में तो कुछ अर्थात् इस व्यापक सत् में तो आस्था रखनी ही है। इस आस्था के साथ इस पथ पर अग्रसर होने पर ही 'ज्ञान' तो 'पूर्ण अनुभूति' है, सम्भव है।

श्री अरविन्द ने सत् विचार में सत्ता के विभिन्न स्तरों की व्याख्या की है सत्ता के विभिन्न स्तर अभिव्यक्त रूप से संबंधित हैं न कि सत्ता के मूल अव्यक्त रूप से संबंधित हैं। वे है - शुद्ध सत्, चित्त शक्ति, आनन्द, अतिमानस, मानस, मन, प्राण एवं जड़तत्व।

शुद्ध सत् चित्त, चिद और आनन्द है। वह सृष्टा अतीत, असीम, निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान है। उसमें ज्ञाता, ज्ञान और भेद में कोई अंतर नहीं है। जगत का सृजन और पालन करता है। अरविन्द के मत में सच्चिदानन्द और विश्व ज्ञान और अज्ञान के मध्य की कड़ी अतिमानस है। "हम उसे अतिमानस अथवा सत्यचेतना कहते हैं क्योंकि वह मानसिकता से श्रेष्ठ एक तत्व है और वस्तुओं की एकता और मौलिक सत्य में रहता, कार्य करता और आगे बढ़ता है, मानस के समान उनकी प्रतीति और रूपात्मक विभाजन में नहीं रहता है।"[3] शुद्ध सत् के विचार में अरविन्द दर्शन में दो स्तर दिखायी देते हैं। प्रथम शुद्ध सत् का वह विवेचन जो मानव को अपनी दार्शनिक दृष्टि से उपलब्ध होता है, जब हम स्व से ऊपर उठकर जगत् को जानने का प्रयास करते हैं और दूसरा जो हमारा बौद्धिक विचार प्रस्तुत करता है। प्रथम स्थान एवं काल में स्थित एवं द्वितीय स्थान और काल की परिधि से ऊपर उठ जाता है। प्रथम में जगत में उसका अस्तित्व तथा द्वितीय में अस्तित्व का शुद्ध भाव एक विचार उत्पन्न होता है जो इसे स्थानकाल सब से परे एक निरपेक्ष सत् के रूप में प्रस्तुत करता है। लेकिन हम अपने वैचारिक दृष्टिकोण से निरपेक्ष सत् का एक चित्र बना लेते हैं जिसे हम 'ज्ञान' नहीं कह सकते हैं। 'शुद्ध सत्' को अनन्त क्रियात्मक भी माना गया है। शुद्ध सत् का यह सापेक्ष रूप भी उस शुद्ध से भिन्न नहीं है।[4]

निरपेक्ष सत् को एक या अनेक, स्थिर या गत्यात्मक समझना, हमारा मानसिक प्रयत्न या मानसिक व्यायाम है क्योंकि निरपेक्ष सत् समस्त कोटियों से परे है। अरविन्द मानते हैं कि निरपेक्ष 'शुद्ध सत' (Pure consciousness) भी है और शक्ति रूप में भी प्रतीत हो सकता है। जहां तक शुद्ध सत् तथा शक्ति का सम्बन्ध है श्री अरविन्द का मानना है कि इस अर्थ में शक्ति 'सत्' में निहित है कि दोनों के बीच का सम्बन्ध सर्वथा अपृथकत्व को लिये हुये है। यह तो सम्भव हो सकता है कि हम 'सत' के संबंध में शक्ति से अलग विचार करें। यहां पर वैचारिक पृथकता तो हो सकती है लेकिन वास्तविक रूप में दोनों एक दूसरे से अलग नहीं रहते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि 'शक्ति' का स्वरूप क्या है। शक्ति के स्वरूप में दो सम्भावनायें हैं। शक्ति या तो स्थिर रह सकती है या गत्यात्मक। श्री अरविन्द के अनुसार शक्ति की दो वैकल्पिक अवस्थायें सम्भव हैं :- 'स्थिरता' की एवं 'गतिशीलता' की। शक्ति के आत्म संकेन्द्रण की एवं 'शक्ति के विसरण की'। लेकिन एक दूसरी समस्या भी उत्पन्न हो जाती है जिसे श्री अरविन्द ने एक प्रश्न के रूप में उठाया है कि यदि परमसत् अपने इस रूप में है कि शक्ति उसमें केन्द्रित है एवं स्थित है तब उस शक्ति को गतिशील हो जाने की क्यों आवश्यकता हो गयी? वैसे ही उस रूप में सत् पूर्ण रहता, गतिशील होने से तो उसमें परिवर्तन की सम्भावना जाग्रत हो जाती है।[5] श्री अरविन्द पुनः प्रतिउत्तर स्वरूप कहते हैं कि ऐसा होना तो शक्ति के स्वरूप में निहित है। यह स्थिर रहती है और गतिशील भी होती है। यह शक्ति का स्वरूप है। यहां पर क्यों का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है क्योंकि शक्ति का स्वभाव है अर्थात् अनिवार्य धर्म है कि कभी शक्ति गतिशील हो जाए और कभी स्थिर रहे।

शक्ति के स्वरूप की व्याख्या करते हुए श्री अरविन्द का कहना है कि शक्ति वास्तविक रूप में चित्त रूप है। यह भी निर्देशित करते हैं कि चेतना शक्ति है। अस्तित्व के प्रत्येक पक्ष में, प्रत्येक स्तर में गति एवं गत्यात्मकता दिखायी देती है जो एक चेतन शक्ति को ही प्रतिरूपित करता है। यहां चेतन शब्द से तात्पर्य मानवीय चेतन नहीं है। मूलतः यह एक ऐसी शक्ति है जो अस्तित्व की स्वचेतन चेतना है। इसलिए इसे मानसिक चेतना का समरूप कहना उचित नहीं है। यह प्राणतत्व एवं भौतिक गति की चेतना भी हो सकती है। जिसे अवचेतन (sub concient) अवस्था कहते हैं। अतिचेतन (super concient) अवस्था में अतिमानस के स्तर तक पहुंच सकती है। लेकिन यह विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हो सकती है।[6] इसी चित्र शक्ति द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति है एवं सृष्टि की क्रीड़ायें चलती हैं। अतः श्री अरविन्द ने सृष्टि की उत्पत्ति का मूल आधार चित्त शक्ति को माना है।

श्री अरविन्द ने 'शुद्ध सत्' को केवल सत और चित् ही नहीं कहा है अपितु इसे आनन्द स्वरूप भी कहा है क्योंकि निरपेक्ष सत् में स्वयं को अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति निहित है। इसलिए सृष्टि की उत्पत्ति आह्लाद में है। सृष्टि क्रीड़ायें आनन्द रूप हैं। इसी आनन्द की परम अवस्था सृष्टि का मूल लक्ष्य है। परम सत् में निहित समस्त शक्तियों की अभिव्यक्तियां अस्तित्व के आनन्द के रूप हैं।[7] निरपेक्ष सत् में निहित शक्तियों की अभिव्यक्ति के अनेक रूप हो सकते हैं। यह अस्तित्व के प्रत्येक पहलू, प्रत्येक चेतन क्रिया, प्रत्येक पक्ष में व्यक्त हो सकती हैं निरपेक्ष सत् की आत्माभिव्यक्ति का आनन्द असीम है। इसकी कोई सीमा नहीं है। अस्तित्व का अर्थ ही आनन्द रूप में व्यक्त होना है। आनन्द शून्य सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसी आनन्द की अभिव्यक्ति सृष्टि में व्याप्त है तब सृष्टि में अशुभ का अस्तित्व कैसे है। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए श्री अरविन्द का कथन है कि संसार में अशुभ की व्याप्ति किसी भी प्रकार से सत् के आनन्द रूप को खण्डित नहीं करती है और न ही उसमें किसी प्रकार की विसंगति की उत्पत्ति होती है।

इस समस्या का कि क्या दैवी सत्ता अपने शुद्ध आनन्द रूप में अशुभ, दुःख, भूल एवं असत्य को उत्पन्न कर सकती है। श्री अरविन्द ने अशुद्ध के पूर्ण निषेध अथवा पूर्ण स्वीकार के मतों के विरूद्ध पाप की यथार्थता को माना है। उन्होंने इस समस्या का समाधान निरपेक्ष, जगत और व्यक्ति को दृष्टि में रखकर किया है। परम सत् या निरपेक्ष सत् में अशुभ और असत्य के लिए कोई स्थान नहीं है। असत्य एवं अशुभ की उत्पत्ति का कारण अज्ञान है। निरपेक्ष सत् पूर्ण ज्ञान है। जैसे ही अज्ञान का तिरोभाव होकर ज्ञान की स्थापना हो जाती है अशुभ और असत्य तिरोहित हो जाते हैं। ज्ञान वहाँ तक सत्य है जहाँ तक कि वह प्रमाणिक है। श्री अरविन्द ने भी कहा है प्रामाणिकता निरपेक्षता की ओर पहला कदम है। चेतना की एकता और पारस्परिकता में भूल, अशुभ और असत्य के ये समस्त तत्व, भेद और विविधता नहीं मिलते हैं। इसलिए श्री अरविन्द के मत में "असत्य और अशुभ में कोई प्रामाणिक सार्वभौमिकता नहीं है जैसा कि निरपेक्षता में भी नहीं है। वे ऐसी परिस्थितियां एवं परिणाम हैं जो कि केवल एक विशेष अवस्था में ही उत्पन्न होते हैं जबकि पृथकता एक विरोध में समाप्त होती है और अज्ञान ज्ञान की एक मूल अचेतना और मिथ्या संकल्प, मिथ्या अनुभूति, मिथ्या क्रिया और मिथ्या प्रतिक्रिया सहित एक परिणामजनित मिथ्या चेतना और मिथ्या ज्ञान में समाप्त होता है।[8]

श्री अरविन्द विकास की प्रक्रिया की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि विश्व में जो कुछ भी दृष्टिगोचर होता है, उसका उद्गम, आधार, सार और परम तत्व अतीत और असीम सत् चित और आनन्द रूप शुद्ध सत् है। प्रकाशक और प्रभावी आत्मज्ञान की स्थिति एवं शक्ति तथा आत्मशक्ति की स्थिति चेतना के दो पहलू हैं। विश्व सत्ता की रचनात्मक क्रिया का केन्द्र अतिमानस का माध्यमिक तत्व है। यह अतिमानस अपने आत्म स्थित सत्य के अनुसार उसकी अभिव्यक्ति के महत्व के सामंजस्य में वस्तुओं के नियम, रूप एवं गति का आवश्यक रूप में विकास करता है।

मानस प्राण और जड़ पदार्थ अज्ञान तत्व की अधीनता में कार्य करते हुए इन समस्त उच्चतर तत्वों के अनेक पहलू हैं। जड़ तत्व किसी विश्व मानस की सृष्टि नहीं हो सकता है। इसलिये जगत् एक चेतन शक्ति की सृष्टि है। जड़ पदार्थ आत्मा का एक रूपमात्र होने से सत् का एक आत्म विस्तार है। यह जड़ पदार्थ चेतना के विषय के रूप में प्रकट होता है। जड़ आत्मा का शरीर है। आत्मा जड़ का जीव है। जड़ पदार्थ में अज्ञान के तत्व की चरम परिणति है। अज्ञान आत्मा का मौलिक गुण न होकर जड़ का मौलिक गुण है। जड़ पदार्थ यान्त्रिक नियम के बन्धन

की सीमा है। यह शुद्ध सत् के एक सार्वभौम संबंध के आधार की ओर विश्व विकास के क्रम की अन्तिम सीढ़ी है जिसमें कि प्रथम शब्द रूप है, आत्मा नहीं। अज्ञान और ज्ञान, रूप और सार, जड़ और आत्मा की दो सीमाओं के मध्य अगणित श्रेणियां हो सकती हैं। एक विकासोन्मुख श्रृंखला जड़ पदार्थ में भी पायी जाती है जो कि हमें कम से अधिक, सूक्ष्म एवं अधिक से कम घनत्व की ओर ले जाती है।

जीवन के सम्बन्ध में अरविन्द का कहना है कि विश्रृंखलन और प्रतिष्ठाापन, स्थिरता एवं परिवर्तन, जीवन एवं मृत्यु सब एक ही जीवन की प्रक्रियायें है। अरविन्द के शब्दों में, ''जीवन एक सार्वभौम शक्ति का रूप, उसका एक गतिशील प्रक्षेप अथवा धारा, स्वीकारात्मक अथवा निषोधात्मक उस शक्ति की सतत् क्रिया अथवा क्रीड़ा है जो कि रूपों को बनाती है और उनके सार के विश्रृंखलन और प्रतिष्ठापन की सतत् प्रक्रिया के द्वारा उनको अनुप्राणित djrhgS प्रत्येक रूप सामान्य शक्ति का सतत् ग्रहण एवं निष्कासन कर रहा है। पौधे, पशु और मानव जीवन में हम वही जन्म, वृद्धि, मृत्यु, पोषण, उत्पत्ति, निद्रा, जागृति, जीवन गति की न्यूनता शिशुपन से वद्धावस्था तक इच्छा संवेदना, संकल्प इत्यादि के प्रति क्रिया-प्रतिक्रिया पाते हैं।

जीवन के विकास की तीन अवस्थाओं का वर्णन करते हुए श्री अरविन्द कहते हैं कि ''इस क्रिया में तीन अवस्थायें हैं - जड़ जीवन, प्राणात्मक जीवन और मानसिक जीवन, अवचेतन, चेतन और आत्मचेतन। निम्नतम वह है जिसमें कि स्पंदन अब भी जड़ की निद्रा में पूर्णतया अवचेतन है ताकि पूर्णतया यन्त्रवत् प्रतीत हो। मध्यम स्थिति वह है जिसमें कि वह एक प्रतिक्रिया के योग्य हो जाता है जो अब भी अधिमानसिक है परन्तु उसकी सीमा पर है जिसको हम चेतना कहते हैं। सर्वोच्च वह है जिसमें जीवन मानसिक प्रत्यक्ष के योग्य संवेदन के रूप में चेतन मानसिकता विकसित करता है जो कि इस परिवर्तन के इन्द्रिय मानस अथवा बुद्धि के विकास का आधार बन जाता है।[10] जीवन जड़ एवं मानस के मध्य की कड़ी है।

जीवन अपने प्रारम्भिक रूप में एक विभाजित एवं अचेतन संकल्प है जो कि रूप तथा वातावरण पर शासन करने वाली आन्तरिक शक्तियों के नियन्त्रण में है। अपने द्वितीय रूप में मृत्यु, इच्छा और सामर्थ्यहीनता जो कि वातावरण के विषय, आत्मविस्तार, अधिकार के लिए संघर्ष को प्रेरित करता है। अपने अन्तिम रूप में जीवन एक सन्तुलन प्राप्त कर लेता है जो चेतन मानस की ओर उसके विकास के साथ-साथ ही बढ़ता जाता है।

मानस सीमित जगत की सृष्टि का साधन है। मानस तत्व रूप में एक ऐसी चेतना है जो कि अविभाज्य पूर्ण से वस्तुओं के रूपों को नापती, सीमित करती और काटती है एवं उनको एक पृथक रूप में रखती है। लेकिन मूल चेतना में मानस अज्ञान नहीं है। मानस सीमा निर्धारण की एक प्रक्रिया है। अतएव मानस यथार्थ प्रत्यय की एक पृथक क्रिया न होकर केवल मात्र एक गौण शक्ति मात्र है।

मानस का कार्य सृष्टिक्रिया को चलाते रहना है। अरविन्द ने विकासक्रम को उन्मुक्त माना है। लेकिन विकास की इस स्थिति में गति अत्यधिक तीव्र एवं अबाध हो जाती है क्योंकि विकास का यह क्रम अज्ञान में होने वाले विकास के विरूद्ध, ज्ञान के अधिकाधिक उच्च स्तरों से हो कर गुजरता है जब तक कि वह शुद्ध सत् तक नहीं पहुंच जाता है। मानस और अतिमानस में स्वाभाविक अन्तर के कारण उनमें श्रेणियां पायी जाती हैं जो आरोहरण एवं अवरोहण में सहायक सिद्ध होती हैं। जड़ से प्राणतत्व और जीवन से मानस पर पहुँचने के धीमे क्रम विकास के फलस्वरूप यह क्रान्तिकारी परिवर्तन बुद्धिग्राह्य और सम्भव हो गया है। अरविन्द ने भी कहा है कि जब हम मानस से परे उठते हैं तब हमारी शान्त आत्मा में प्रकाश, ज्ञान, शक्ति, आनन्द तथा अन्य असाधारण शक्तियों का विशाल गतिशील अवरोहण होता है।

उच्च मानस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए श्री अरविन्द का कहना है कि ''तेजी से विजय की भावना, विविधता से विचार करते हुये, बनाते हुये और प्रत्यय की आत्मशक्ति से उसके विचारों की प्रभावोत्पादक रूप में अनुभूति करते हुए, स्वयं में स्थित तादात्म्य, सत्यों को ले जाने वाले मौलिक तादात्म्य से उत्पन्न होने वाली एक सर्वज्ञता ही ज्ञान के इस उच्चतर मानस का स्वभाव है। अतः उच्च मानस एक ज्योतिर्मय विचार, मन, एक आध्यात्मिक प्रत्ययजनित ज्ञान का मन है। उच्च मानस में जो ज्ञान हमको होता है वह नित्य ज्ञान की अभिव्यक्ति है। उच्च मानस का एक और पहलू भी है। वह संकल्प और अनुभूति का पहलू है। अनुभूतियां, संकल्प और क्रियायें उच्चतर ज्ञान के स्पन्दन बन जाते हैं। विचार स्वानुकूल शक्ति उत्पन्न करके हमारे मानस, जीवन और जड़ में

आरोपित करता है।

उच्च मानस एक उच्चत शक्ति ज्ञानदीप्त मानस (illuminated mind) के आरोहण के लिए आधारभूमि प्रदान करता है। उच्च मानस की मन्द और क्रमिक प्रक्रिया की अपेक्षा एक तीव्र और क्रान्तिकारी रूपान्तर ज्योतिर्मय आन्तरिक वेग और शक्ति में करता है। यहां पर विचार, दृष्टि के आधीन होने के कारण सत्य के प्रतिबिम्ब को न पकड़कर स्वयं सत्य को पकड़ता है। श्री अरविन्द ने कहा है कि ''जिस प्रकार उच्च मानस आध्यात्मिक विचार और उसकी सत्य की शक्ति के द्वारा जीव में एक उच्चतम चेतना लाता है। उसी प्रकार ज्ञानदीप्त मानस एक सत्य दृष्टि और सत्य प्रकाश के द्वारा और उसकी देखने और पकड़ने की शक्ति से एक और भी उच्चतर चेतना लाता है।[12] ज्ञान दीप्त मानस इन्द्रियों में आध्यात्मिक सम्वेदना की एक प्रत्यक्ष और सम्पूर्ण शक्तिभर देता है जिससे भौतिक जीव व हमारा प्राण भी संसार की समस्त वस्तुओं में दैवी सत्ता का स्पर्श कर सके।

एक उच्चतर शक्ति सम्बोधिमय मानस पर उच्च मानस एवं ज्ञानदीप्त मानस निर्भर रहते हैं। उच्चतर शक्ति सम्बोधिमय मानस सहज ज्ञान के द्वारा कार्य करता है ज्ञान अथवा दृष्टि के द्वारा नहीं। हृदय, जीवन, इन्द्रियों, शरीर और मानस को भी रूपान्तरित करता है। संकल्प, अनुभूतियों एवं सम्वेगों में स्वयं अपनी ज्योतिर्मय गति लाने के कारण समस्त चेतना को सम्बोधि तत्व में परिवर्तित कर देता है।

श्री अरविन्द ने अधिमानस को सम्बोधिमय मानस से परे माना है। अधिमानस अज्ञान में अतिमानस का प्रतिनिधित्व करता है। अतिमानस की अधिमानस में संश्लिष्टता नहीं होती है। इसके पश्चात् भी वह सम्पूर्ण को आत्मसात् करता है। श्री अरविन्द ने माना है कि जो मानसिक बुद्धि के लिए असंगत भेद हैं, वे अधिमानस बुद्धि के सम्मुख साथ-साथ रहने वाले परस्पर सम्बन्धी हैं। जो मानसिक बुद्धि के लिए विरोध हैं वे अधिमानसिक बुद्धि के लिए पूरक हैं।[13] अधिमानस पूर्ण और अविभाज्य सर्वव्यापी एकता को शक्तियों और पहलुओं के पृथक्करण और संयोग की असीम सामर्थ्य के द्वारा सृष्टि प्रक्रिया में आगे बढ़ता है। परिणामस्वरूप वह सच्चिदानन्द को असीम सम्भावनाओं से परिपूर्ण स्वरूप प्रदान करता है जिसे अनेक जगत् में विकसित किया जा सकता है।

अतिमानस के आरोहण से बोधिमय मानस द्वारा किया हुआ परिवर्तन पूर्ण होता है। आरोहण के इस स्तर पर विचार, अनुभूति और संवेग समस्त सार्वभौम, सर्वव्यापी, उदार, असीम और आध्यात्मिक बन जाते हैं। लेकिन अधिमानस के द्वारा सम्पूर्ण प्रकृति का रूपान्तरण नहीं होता है। अचेतन के अधोमुखी वेग को भी वह रोक नहीं पाता है। अतएव सम्पूर्ण प्रकृति का यदि पूर्ण सर्वांग रूपान्तरण करना है तो अतिमानस का अवरोहण आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। यहां पर विकासमान शक्तियों की एक सम्पूर्णता है जो कि परस्पर गुम्फित होकर एक दूसरे को प्रभावित करती है। इसलिए विभिन्न मध्यम शक्तियों और जीवों की सृष्टि होती है। किसी एक शक्ति से पूर्ण संयोग होना कठिन हो जाता है। अरविन्द ने कहा है ''जब उच्चतर निम्न चेतना में अवरोहण करता है वह निम्न को परिवर्तित कर देता है। परन्तु उससे स्वयं भी संशोधित और न्यून हो जाता है। जब निम्न का अवरोहण होता है तब उसका उन्नयन होता है। परन्तु तभी वह उन्नयनकारी पदार्थ और शक्ति में परिवर्तन कर देता है।[14] निम्न के भली प्रकार संश्लिष्ट होने पर उच्च स्तर प्रकट होता है। चेतना के समस्त स्तरों का समान रूप से साथ-साथ रूपान्तरण नहीं होता है। कारण यह है कि आन्तरिक तत्व बाह्य से अधिक शीघ्र परिवर्तित होता है। मानव का पूर्ण रूपान्तरण तब होता है जब आन्तरिक के साथ-साथ बाह्य चेतना भी पूर्ण आध्यात्मिक हो जाती है। जगत सत्ता में अधिमानस और आध्यात्मिक मानस मानव और भौतिक जीवन से लेकर परम आध्यात्मिक स्तर तक जाने वाली चेतना की अवस्थाओं की एक क्रमबद्ध श्रृंखला बन जाती है।

अतः पर और अपर दो गोलार्दों में विकास की समस्त श्रृंखला को विभाजित किया गया है। चेतना के जगत के परार्द्ध और अपरार्द्ध में स्वयंज्योतिर्मय होने पर भी अधिमानस पूर्ण अविभाज्य अतिमानसिक ज्योति को हमसे अलग रखता है। सत् चित्त, आनंद अतिमानसिक से परार्द्ध तथा मानस, जीवन और जड़ से अपरार्द्ध का निर्माण हुआ है और इन दोनों के मध्य में एक रेखा है अधिमानस की। अतः दोनों ही गोलार्द्ध मानस एवं अतिमानस की सीमा में मिलते हैं। अतएव विकास की मुख्य समस्या है निम्न का उच्च में अवरोहण तथा मानस और अतिमानस के आवरण को भेदना।

इस प्रकार श्री अरविन्द के अनुसार विकास कोई घटना न होकर, सतत् विकास है। विकास में हमेशा एक भूत,

भविष्य और वर्तमान होता है जब तक कि पूर्ण आत्माभिव्यक्ति न हो जाए। प्रत्येक वस्तु के पीछे सत्, चित् और आनन्द है। जगत् में जहाँ एक तत्व की अभिव्यक्ति होती है वहाँ अन्य तत्व भी गुप्त रूप से अपना कार्य सम्पादित करते रहते हैं। प्रत्येक में प्रत्येक छिपा है। उदाहरण के लिए जिस प्रकार जड़ पदार्थ अवरोहण में अन्तिम पद है उसी तरह से वह आरोहण में प्रथम पद है। जगत् श्रेणियां और क्रम जिस प्रकार भौतिक सत्ता के प्रत्येक स्तर में विवर्तित हैं। उसी प्रकार ये समस्त उससे विवर्तित होने के योग्य भी हैं।

अतः श्री अरविन्द का विचार है कि उनके द्वारा प्रस्तुत आध्यात्मवाद और भौतिकवाद का यह समन्वय अरस्तू और हीगेल की तरह केवल एक बौद्धिक विचार नहीं है बल्कि मनुष्य के लिए व्यवहारिक योजना है जिसके अन्तर्गत वे अपने भौतिक प्रयोजन का त्याग किये बिना ही परम सत्य की प्राप्ति की ओर बढ़ सकते हैं। श्री अरविन्द के शब्दों में ''हम देखते हैं कि भारत में सन्यासवाद के आदर्श का प्रतिपादन करने वालों ने वेदान्त के सूत्र एक ही है, दूसरा नहीं'' - ''एक सत्-नेह नानास्ति किंचन'' के अभिप्राय को भली-भांति नहीं समझा है। उन्होंने दूसरे सूत्र ''यह सब कुछ ब्रह्म है'' ''सर्वखल्विदं ब्रह्म'' की ओर उचित ध्यान नहीं दिया है। एक ओर जहां मुनष्य में ऊपर उठकर परमात्मा को प्राप्त करने की उत्कट आकांक्षा दिखायी देती है वहीं दूसरी ओर परमात्मा में भी अपनी अभिव्यक्ति को अपने में शाश्वत् रूप में समेटने के उद्देश्य से नीचे की ओर उतरने की प्रवृत्ति भी स्पष्ट देखने को मिलती है। इन दोनों बातों को समुचित ढंग से परस्पर सम्बद्ध करने का प्रयास हमने अब तक नहीं किया है। अर्थात् पदार्थ में निहित ब्रह्म शक्ति की वास्तविकता को उतनी अच्छी तरह नहीं समझा गया जितनी अच्छी तरह आत्मा में निहित सत्य (या परमात्मा) के साक्षात्कार को साक्षात्कार कर लिया गया है। दूसरे शब्दों में जिस परम सत् का साक्षात्कार सन्यासी करना चाहता है उसे तो पूर्णतया समझ लिया गया है पर प्राचीन वेदान्तियों की भांति उस परम सत् की पूर्ण व्यापकता और विस्तार को नहीं समझा गया। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि पूर्ण व्यापकता की खोज में उस परम सत् की वास्तविकता को ही कम कर दिया जाए। अर्थात् भौतिकवादी आधार को स्वीकार करते हुए भी आध्यात्मवादी आधार के महत्व को कम नहीं किया जा सकता। यह सच है कि भौतिकवाद ने ईश्वरीय प्रयोजन की सिद्धि में महान योग दिया है, उसी तरह हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि सन्यासवाद के आदर्श ने भी महान सेवा की है। अन्तिम सामंजस्य में हम भौतिक विज्ञान के सत्यों और उस के वास्तविक उपयोगी तत्वों का निश्चय ही संरक्षण करेंगे, चाहें हमें उसके विद्यमान सभी रूपों की तोड़-मरोड़ अथवा परित्याग ही क्यों न करना पड़े और इससे भी अधिक सावधानी हमें प्राचीन आर्यों की विरासत को सुरक्षित रखने के लिए बरतनी पड़ेगी चाहें वह विरासत कितनी ही न्यून अथवा अवमूल्यित क्यों न हो गयी हो।[15]

श्री अरविन्द ने एक आध्यात्मिक विचारक के रूप में माना कि इतिहास के क्रम विकास में जो घटनाचक्र एक के पश्चात् दूसरा घटित होता रहता है, उसके मूल में ईश्वरीय शक्तियां ही काम कर रही होती हैं। उन्होंने आध्यात्मिक नियतिवाद के सिद्धान्त को स्वीकार किया। ब्रह्म की क्रमिक पुनराभिव्यक्ति को इतिहास कहा है। श्री अरविन्द ने आध्यात्मिक नियतिवाद को स्पष्ट करने के लिए दो उदाहरण दिये। प्रथम बंगाल का राष्ट्रवाद और द्वितीय फ्रांस की क्रान्ति। ये दोनों घटनायें कदापि घटित नहीं होती, यदि इनके मूल में ईश्वरीय इच्छा न होती। इस प्रकार का दैवी न्यायवाद भगवद्गीता के विचारों और जर्मन प्रत्ययवाद के समन्वय का प्रतीक है। हीगेल ने इसे ही इतिहास का औचित्य माना है। इतिहास के इसी रूप को तर्कसंगत और बुद्धिगम्य स्वीकार करते हैं। गीता में भी कहा गया है कि महापुरूष ईश्वर का उपकरण (instrument or tool of God) होता है। वह वास्तविक कर्ता न होकर ईश्वर द्वारा निर्धारित कर्म का निमित्त मात्र होता है। ईश्वर साक्षात्कार हो जाने पर मानव ईश्वर के अनुसार आध्यात्मिक कर्म करने लगता है।[16] हीगेल का भी मानना है कि विश्व इतिहास के सिकन्दर, नैपोलियन, सीजर इत्यादि महापुरूष अचेतन रूप से दैवी योजना को क्रियान्वित करने के साधन बने और अपने क्रिया कलापों द्वारा पार्थिव इतिहास में विश्वात्मा की क्रमिक अभिव्यक्ति को सार्थक बनाया है।[17]

श्री अरविन्द का विश्वास था कि मानव संस्कृतियों और सभ्यताओं का विकास चक्रीय ढंग से होता है। अतः स्पष्ट है कि श्री अरविन्द आध्यात्मिक स्वतंत्रता के आदर्श को स्वीकार करते हैं। उनका मत है कि मानव प्रकृति की यान्त्रिक आवश्यकता से तब ही मुक्ति पा सकता है जब वह स्वयं को मानस से अतीत आध्यात्मिक शक्ति का

अभिकर्ता मानकर कार्य करने लगे। श्री अरविन्द ने एशिया जागरण की विशेषताओं यथा आध्यात्मिकता, आन्तरिक स्वतन्त्रता एवं विश्व बन्धुत्व की धारणा से युक्त आध्यामिक स्वरूप को यूरोप के बुद्धिवादी आदर्शवाद से मिलाने का प्रयत्न किया।

सन्दर्भ

1. दिवाकर आर.आर., *'महायोगी श्री अरविन्द'*, की भूमिका में डॉ. राधाकृष्णन
2. Verma V.P., *'Modern Indian Political Thoughts'*, Asia Publishing House, Bombay, 1975, p. 239
3. Shri Aurobindo, *'The Life Devine'*, Sri Aurobindo Ashram Publication, Pondicherry, 2005, p. 174
4. We say that pure existence is Our absolute and in itself unknowable by our though we can go back to it in a supreme identity that transcendents the terms of knowledge. The moment on the country is the field of the relative and yet by the very definition of the relative all things in the movement contain are contained in and are the absolute. Sri Aurobindo, *'The Life Devine'*, p. 72
5. Why should this possibility of a play of movement of Force translate itself at all? Why should not Force of Existence remain externally concentrated in itself infinite, free from all variation and formations? Sri Aurobindo, The Life Divine, p. 79
6. It (consciousness) is no longer synonymous with mentality but indicates a self aware force of existence of which mentality is a middle term, below mentality it sinks into vital and material movements which are for us sub conscient, above it rises into the super mental which is for us the super conscient. But in all it is one and the same thing organising itself differently. Sri Aurobindo, The Life Divine, p. 83.
7. It is ananda out of which this world is born, It is ananda that sustains and it is ananda that is its goal and consumation. Sri Aurobindo, *'The Life Divine'*, p. 79
8. Sri Aurobindo, *'The Life Divine'*, Part II, p. 375. अशुभ समस्या की विशद व्याख्या उपर्युक्त पुस्तक के उपखण्ड में की है।
9. Sri Aurobindo, op. cit., Part I p. 213
10. Sri Aurobindo, op. cit., Part I. p. 225
11. Sri Aurobindo, op. cit., Part I. p. 334
12. Sri Aurobindo, op. cit., Part II. p. 788
13. Sri Aurobindo, op. cit., Part I. p. 739
14. Sri Aurobindo, op. cit., Part I. p. 807
15. Sri Aurobindo, op. cit., Vol. I, p. 30
16. Op. cit. p. 242
17. Hegal, *'The Philosophy of History'*, Cambridge University Press, 1994, pp. 30-31

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 20 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2018
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

सापेक्ष अभावबोधः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ प्रोफेसर इला साह
❖ डॉ. ललित चंद्र जोशी

सापेक्ष अभावबोध एक ऐसी अवधारणा है, जो व्यक्ति या समूह के बीच तुलनात्मक दृष्टिकोण को विकसित करती है, जिसमें तुलना समान स्थिति या श्रेणी के व्यक्तियों तथा ऊँची-नीची स्थिति वाले लोगों से भी हो सकती है। यह तनाव को उत्पन्न करती है। इस प्रकार का अभावबोध पुरुषों की तुलना में महिलाओं में अधिक पाया जाता है। वर्तमान दौर में महिलाओं की स्थितियों/प्रस्थितियों में परिवर्तन आया है। पारिवारिक, सामाजिक, निर्णायक सभी प्रकार की भूमिकाओं में वे स्वयं को सशक्त अनुभव भी कर रही हैं, लेकिन समाज द्वारा थोपे गये बंधे-बंधाए विधि-विधानों से निकलने के लिए वे आज भी संघर्षरत् हैं। वर्तमान में महिलाओं का घर से बाहर निकलकर विभिन्न व्यवसायों को अपनाकर उनकी आत्मनिर्भरता, आर्थिक सशक्तता व पारिवारिक संरचना को मजबूती प्रदान करने को एक नवीन घटना व वर्तमान आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। लेकिन दोहरी भूमिका का दबाव उनमें कई स्थितियों में सापेक्ष अभावबोध के माध्यम से तनाव उत्पन्न करता है, जिनकी प्रभाविकता को जानने का प्रयास प्रस्तुत शोध का उद्देश्य है।

वर्तमान समय सांस्कृतिक संक्रमण, उपभोक्तावाद, भूमण्डलीकरण और उदारीकरण का है। राष्ट्र, समाज, मानवता और यहां तक कि मानव भी तेजी से बदल रहा है और ऐसे में महिलाओं की स्थिति में बदलाव आना भी स्वाभाविक है। पुनर्जागरण युग में शिक्षित मध्यम वर्ग ने महिलाओं के सर्वांगीण विकास के लिए सतत् प्रयास किये और महिलाओं में जागरुक व सशक्त होने की प्रवृत्ति में बढ़ोत्तरी होने लगी। यही कारण है कि वर्तमान युग को महिला सशक्तीकरण का युग माना जाने लगा, जिसके कारण वह प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित कर रही है। चाहे वे आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्र हो, उनकी स्वतंत्रता या स्वावलंबन, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में परिवर्तन अवश्य परिलक्षित होता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आधुनिकीकरण, महिला जागृति, शिक्षा आदि अनेक कारणों से महिलाओं का अन्य क्षेत्रों के साथ आर्थिक क्षेत्र में भी तीव्रता से पदार्पण हुआ है और पुरुषों के समान बराबरी का दर्जा भी प्राप्त होने लगा, जिसके परिणामस्वरूप महिलाएं विविध ऐसी भूमिकाओं का निर्वाह कर रही हैं जो परम्परागत भारतीय संस्कृति में केवल पुरुषों को ही प्राप्त थीं, जिसके कारण उनकी स्थिति, जीवन स्तर, भूमिकाओं तथा दृष्टिकोणों में विचारणीय परिवर्तन आये हैं। समकालीन भारतीय समाज में प्रचलित परम्परागत, मान्यताएं धीरे-धीरे बदल रही हैं और इसके लिए आधुनिक शिक्षा, नया आर्थिक ढाँचा, भौगोलिक व व्यावसायिक गतिशीलता को उत्तरदायी कारण के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। एम0 एन0 श्रीनिवास, ए0 डी0 मिश्रा तथा एस0 सी0 दुबे जैसे महान विद्वानों ने भी इसको स्वीकार किया है।

उत्तराखंड राज्य जनसंख्या की दृष्टि से देश के 20वें स्थान पर है, जिसका लिंगानुपात 2011 की जनगणना के अनुसार 1000 में 963 है। प्रतिकूल परिस्थितियां होने के बावजूद यहाँ की महिलाएँ पर्वतीय जीवन की मेरुदंड रही हैं। स्वतंत्रता के बाद बदली हुई सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के कारण महिलाओं की शिक्षा एवं रोजगार के अवसरों में यहाँ भी काफी वृद्धि हुई है जिसके कारण इनके लिए अपनी समानता की अभिव्यक्ति और उनकी प्रतिष्ठा के नये रास्ते खुल गये हैं। आज अधिकांश आर्थिक प्रणालियों में स्त्रियों से काम लेने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। यहाँ की महिलाएं घर-गृहस्थी से बाहर निकलकर शिक्षित होने के पश्चात विभिन्न वैतनिक कार्यों में प्रवेश कर रही हैं, जिसे एक नवीन घटना व वर्तमान आवश्यकता के रूप में देखा जा रहा है। कार्योजित होने

❑ विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, सोबन सिंह जीना, परिसर, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)
❖ पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, सोबन सिंह जीना, परिसर, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

की दशा में उन्हें समायोजन, परम्परागत पारिवारिक नियम, बच्चों की देखभाल व जीवन से संबंधित विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उनमें तनाव उत्पन्न होता है, जो दूसरे व्यक्तियों से स्वयं की तुलना कर उनमें अभावबोध को जन्म देता है, अर्थात् कार्योजित महिलाओं का कार्यक्षेत्र में विभिन्न व्यक्तियों से सम्पर्क होता है, जहां किसी-न-किसी रूप में वे स्वयं का मूल्यांकन दूसरे की तुलना में कम महसूस करती हैं और अभावबोध से ग्रसित होने लगती हैं।

साहित्य समीक्षा

सापेक्ष अभावबोध की अवधारणा सर्वप्रथम स्टॉफर एवं उनके साथियों द्वारा 1947 में उनकी पुस्तक 'अमेरिकन सोल्जर' में अमेरिकी सैनिकों के संदर्भ में प्रस्तुत की थी।[1] सामान्यतः सापेक्ष अभावबोध की व्याख्या संदर्भ समूह व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में की जाती है, जिसका प्रयोग सर्वप्रथम हाईमैन ने अपनी पुस्तक The Psychology Of Status में कर स्पष्ट किया-''व्यक्ति के व्यवहार प्रतिमान और उनकी स्थिति का विश्लेषण केवल जिस समूह का वह सदस्य है, को जान लेने से ही नहीं किया जा सकता। वास्तव में व्यक्ति अन्य समूहों, जिन्हें वह अपना आदर्श मानता है और उनसे व्यवहार की तुलना एवं मूल्यांकन करता है, जो उसके व्यवहार पर अत्याधिक प्रभाव डालते हैं।''[3]

Social Theory and Social Structure में आर0 के0 मर्टन ने कहा है कि संदर्भ समूह का उद्देश्य मूल्यांकन एवं आत्म मूल्यांकन के निर्धारण को एवं परिणामों को व्यवस्थित करने के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उन्होंने लिखा है-''मनुष्य अपनी स्थिति की तुलना केवल उन मनुष्यों से ही करते हैं, जिन्हें वे अपने लायक समझते हैं।''[3] आयन वाकर एवं हीदर जे0 स्मिथ ने Fifty Years of Relative Deprivation Research में सापेक्ष अभावबोध के लिए तुलना के महत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है-'Social Comparsion Between People (As Individual Or As Group) Are At The Heart Of Relative Deprivation.'[4] इन्द्रा चौहान के अनुसार-''एक कार्यालय में समान पदों में पदोन्नति के अवसरों में कभी, अधिकारियों द्वारा पक्ष लेने तथा बराबरी न होने के कारण समान पद के लोगों के संबंध काफी प्रभावित होते हैं।''[5]

अतः स्पष्ट है कि सापेक्ष अभावबोध एक ऐसी अवधारणा है जो व्यक्ति या समूह के बीच तुलनात्मक दृष्टिकोण विकसित करती है जिसमें तुलना का आधार अधिकतर समान स्थिति या समान श्रेणी के व्यक्ति होते हैं। लेकिन इसमें तुलनात्मक दृष्टिकोण अपने से ऊँची या नीची स्थिति वाले लोगों से भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त कई विद्वानों ने समय-समय पर महिलाओं की दशा व दिशा पर लिखते हुए उनमें अभावबोध की स्थिति का मूल्यांकन किया है। इनमें रीता सूद[6], प्रमिला कपूर[7], कृष्णा चक्रवर्ती[8], ए0 डी0 मिश्रा[9], रणदेवी[10], गुलाटी[11], स्वर्णलता सलूजा[12], भदौरिया मृदुला[13] आदि प्रमुख हैं।

अध्ययन की प्रासंगिकता- यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि समाज का विकास महिलाओं की सहभागिता के बिना अधूरा है और विद्धानों ने महिलाओं की भूमिका को हमेशा पुरुषों के पूरक के रूप में देखा है। परिवर्तन की प्रक्रिया के कारण वे जागरुक हुई हैं। प्रत्येक क्षेत्र में उनकी सहभागिता बढ़ी है। पूंजीवाद, सामन्तवाद व परम्परावाद को समाप्त करने का स्वर भी बुलन्द हुआ है। लेकिन अधिकांशतः महिलाएँ आज भी अधीनस्थ के संस्कारों से जकड़ी होती हैं। जॉन स्टुअर्ट मिल की पुस्तक 'The Subjection of Woman' जो आज से लगभग डेढ़ सौ दशक पूर्व लिखी गयी थी जिसमें लिंग समानता, वैवाहिक अधिकार, स्वतंत्रता, निर्णायक भूमिका आदि अनेक पक्षों पर लिखा गया था, जो महिला समाज के लिए अनिवार्य हैं। तब से अब तक महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थितियों में बदलाव भी आया है। प्रत्येक क्षेत्र में सहभागिता का स्तर भी बढ़ा है, लेकिन आज भी स्त्री एवं सत्ता, सम्पत्ति व आय के प्रश्न, पारिवारिक प्रस्थितियां, निर्वचन की भूमिका, पराधीनता जैसी गम्भीर समस्याओं का सामना प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में महिलाएं कर रही हैं और बंधे-बंधाए समाज द्वारा निर्मित विधि-विधानों से निकलने के लिए संघर्षरत् हैं।

विकास के नाम पर होने वाला चहुंमुखी बदलाव आधुनिक पढ़ी-लिखी और परम्परागत समाज से जुड़ी महिलाओं के लिए अपेक्षाकृत अधिक रोचक नहीं है, जो महिलाएं परिवार की आर्थिक रीढ़ बनने के लिए अपनी योग्यता व बौद्धिक कुशलता के कारण संबंधित क्षेत्रों में कार्य करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में जाती हैं, वहां विभिन्न प्रकार की समस्याओं का उन्हें सामना करना पड़ता है जो तनाव को जन्म देता है और अभावबोध की स्थिति उत्पन्न

होती हैं। प्रस्तुत् अध्ययन जिला नैनीताल के नगर हल्द्वानी में शिक्षण व्यवसाय में कार्यरत् महिलाओं पर आधारित है, जिसके माध्यम से जानने का प्रयास किया गया है कि किन-किन परिस्थितियों में कार्योजित महिलाओं में सापेक्ष अभावबोध प्रतीत होता है।

अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तुत् शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य हल्द्वानी राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत महिलाओं का विभिन्न स्थितियों में सापेक्ष अभावबोध का अध्ययन करना है।

अध्ययन क्षेत्र- प्रस्तुत् अध्ययन का क्षेत्र नैनीताल जनपद का हल्द्वानी शहर है, जो नैनीताल से दक्षिण में 40 किमी. की दूरी पर स्थित है। यह भाबर में बसाया जाने वाला पहला नगर है और नैनीताल जिले का शीतकालीन मुख्यालय भी यही है। इसकी स्थापना 1834 में हुई। 2011 की जनगणना के अनुसार यहां 156078 पुरुष एवं 81955 महिलाएँ हैं। साक्षरता का प्रतिशत 87.45 पुरुष व 80.83 महिलाओं का है। कार्यरत् जनसंख्या के आधार पर कुल कार्यरत जनसंख्या 123021 है, जिसमे 96,673 करीब 79 प्रतिशत पुरुष व 26,348 अर्थात् 21 प्रतिशत महिलाओं का है।

शोध पद्धति- प्रस्तुत् शोध पत्र में वर्णनात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है, जिसमें नगर हल्द्वानी जिला नैनीताल के विभिन्न राजकीय महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षिकाओं को अध्ययन समग्र के रूप में लिया गया है, जिनकी संख्या 388 है। हल्द्वानी नगर में बी0 आर0 सी0 (ब्लॉक संसाधन केन्द्र) के अन्तर्गत 12 सी0 आर0 सी0 (संकुल संसाधन केंद्र) हैं जिनमें 137 प्राथमिक विद्यालय हैं और इनमें कार्यरत शिक्षकों की संख्या-432 है। इनमें 388 महिला शिक्षिकाएं तथा 44 पुरुष शिक्षक कार्यरत् हैं। शोध की वैज्ञानिकता को ध्यान में रखते हुए 6 सी0 आर0 सी0 को निदर्शन की लॉटरी पद्धति द्वारा चुनकर उनमें कार्यरत् 266 महिला शिक्षिकाओं को उत्तरदाताओं के रूप में चयनित किया गया है। तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची को प्राथमिक रूप में तथा संबंधित साहित्य विभिन्न संकुलों से प्राप्त आंकड़ों, मैगजीन, जर्नल्स आदि को द्वितीयक स्रोतों के रूप में प्रयोग किया गया है।

विश्लेषण - अभावबोध की स्थिति को विभिन्न आयामों के माध्यम से देखा जा सकता है, अर्थात् व्यक्ति स्वयं की तुलना किसी दूसरे से विभिन्न आधारों को लेकर कर सकता है। जैसे-सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पारिवारिक, मित्र मंडली, कार्यक्षेत्र या भौतिक सुख साधन आदि। जैसा कि स्टॉफर ने भी लिखा है सापेक्ष अभावबोध समाज में पायी जाने वाली वह भावना हैं जो हमारी आपसी संबंधों के मध्य एक तनाव की स्थिति लाती है, जिसे उन्होंने अमेरिकी सैनिकों के संदर्भ में प्रस्तुत किया।

अतः शोधपत्र में कुछ पक्षों को लेकर उत्तरदाताओं में व्याप्त अभावबोध को जानने का प्रयास किया गया है, जिनमें प्रथम प्रश्न के अनुसार यह जानने का प्रयास किया गया है कि गृहणी/कामकाजी में अधिक सुखी कौन है? प्राप्त प्रत्युत्तरों के आंकड़े निम्नवत् हैं-

सारणी संख्या-01

गृहणी अथवा कामकाजी में अधिक सुखी कौन

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
गृहणी	176	66.16
कामकाजी	79	29.69
कह नहीं सकते	11	4.15
योग	266	100.00

उपर्युक्त सारणी में चयनित उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक 66.16 प्रतिशत ने गृहणी का अधिक सुखी इसलिए माना है कि उन्हें दोहरी भूमिका का निर्वह्न नहीं करना पड़ता। जबकि 29.69 शिक्षिकाएँ कामकाजी महिलाओं की स्थिति को सुखद मानने के पक्ष में थीं, लेकिन 4.15 प्रतिशत उत्तरदाता कहीं नौकरी तो कहीं कामकाजी महिलाओं की स्थिति को सुखद मान रही थीं, जिन्होंने अपने उत्तर की पुष्टि 'कह नहीं सकते' में की है। अतः कार्यरत महिलाएं कही-न-कहीं दोहरी भूमिका के निर्वह्न से गृहणियों की अपेक्षा स्वयं को अधिक व्यस्त स्वीकार करती हैं।

सापेक्ष अभावबोध को स्टॉफर द्वारा सर्वप्रथम द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 9 कारणों के माध्यम से प्रस्तुत् किया गया था और तनाव के लिए उत्तरदायी भी माना था। क्या महिलाएं सापेक्ष अभावबोध को अनुभव करती हैं और यदि हां तो उनके प्रमुख क्या कारण हो सकते हैं। यह जानने का प्रयास पर प्राप्त प्रत्युत्तरों को सारणी संख्या-02 व 03 में निम्नवत् स्पष्ट किया गया है-

सारणी संख्या-02

सापेक्ष अभावबोध पाए जाने संबंधी प्रत्युत्तर

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	122	45.87
नहीं	76	28.58
कभी-कभी	63	23.68
कभी नहीं	05	1.87
योग	266	100.00

सारणी संख्या-03

अभावबोध के विभिन्न आयामों से संबंधित प्रत्युत्तर

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
आर्थिक आधार पर	92	34.58
पारिवारिक आधार पर	37	13.90
सामाजिक आधार पर	11	4.13
कार्यरत परिस्थितियों के आधार पर	72	27.09
भौतिक सुख-सुविधाओं के आधार पर	54	20.30
योग	266	100.00

उपर्युक्त प्रथम सारणी से प्राप्त तथ्यों के अनुसार सर्वाधिक 45.87 प्रतिशत शिक्षिकाएं सापेक्ष अभावबोध पाए जाने की स्थिति में पायी गयी। 28.58 ने कभी-कभी अभावबोध की स्थिति को महसूस करने की बात तो 1.87 ने इस प्रकार की स्थिति कभी नहीं पायी जाने की बात को स्वीकार किया है। वहीं दूसरी सारणी में 34.58, 13.90, 4.13, 27.09 तथा 20.30 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने क्रमशः आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक, कार्यरत् परिस्थितियों एवं भौतिक सुख-सुविधाओं को अभावबोध की स्थिति का आधार स्वीकार किया है। अतः स्पष्ट है कि अधिकांश शिक्षिकाएं अभावबोध अनुभव करती हैं, चाहे उसका आधार कुछ भी क्यों न हो।

भारतीय सामाजिक संरचनात्मक प्रक्रिया में परिवर्तन की गति अत्यंत धीमी पायी जाती है। परिवर्तन हो या विकास प्रत्येक क्षेत्र में अवश्य हो रहा है। लेकिन उसकी गति अपेक्षाकृत कम दिखायी पड़ती है। कार्यरत् शिक्षिकाओं से भी यह जानने का प्रयास किया गया कि कभी आपने कार्यक्षेत्र में पुरुषकर्मियों द्वारा महिलाओं से भेदभाव या स्वयं को श्रेष्ठ व अधिक परिश्रमी माना जाता है। प्रत्युत्तर निम्नवत् हैं-

सरणी संख्या- 04

कार्यक्षेत्र में भेदभाव से संबंधित प्रत्युत्तर

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	186	69.92
नहीं	43	16.16
कभी-कभी	37	13.92
योग	266	100.00

वर्तमान समय में जब स्त्री-पुरुष समानता का नारा बुलन्द है, तब अधिकांश महिलाओं का यह स्वीकार करना कि कार्यक्षेत्र में न केवल उनके साथ भेदभाव होता है, बल्कि पुरुषकर्मी हमेशा स्वयं को श्रेष्ठ, बुद्धिमान व अधिक परिश्रमी मानते हैं। पुरुषकर्मी वर्चस्व को व्यक्त करता है और इसका प्रतिशत 69.92 है। 16.16 प्रतिशत इस प्रकार के भेदभाव से इनकार करती हैं, जबकि 13.92 प्रतिशत मानती हैं कि कभी-कभी इस प्रकार के भेदभाव की स्थिति को कार्यक्षेत्र में अनुभव करती हैं। अतः सहकर्मी होने के पश्चात इस प्रकार का भेदभाव तनाव उत्पन्न करता है। यह अभावबोध की स्थिति की अभिव्यक्ति है। अतः महिला शिक्षिकाओं में पुरुषों के परिप्रेक्ष्य में सापेक्ष अभावबोध निहित है।

कामकाजी महिलाओं के अध्ययन में अधिकांशतः यह बात सामने आती है कि गृहणियों की तुलना में उन पर काम का बोझ अधिक होता है। लेकिन सर्वाधिक 42.20 प्रतिशत कार्यरत् शिक्षिकाएँ इससे असहमत पायी गयीं और कारण जानने के प्रयास में उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि गृहणी महिलाओं के पास भी कार्यबोझ कम नहीं होता। दिन भर कार्य करने के पश्चात भी उन्हें कोई पारिश्रमिक/वेतन भी नहीं मिलता। अतः अधिकांश महिला उत्तरदाताओं में गृहणियों से सापेक्ष अभावबोध कम है। लेकिन 16.16 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अधिक कार्यबोझ को स्वीकार किया है। 3.24 प्रतिशत इससे आंशिक सहमत तथा 38.40 प्रतिशत इससे पूर्ण सहमत पायी गयी। इसी प्रकार धर्म, स्वतंत्रता, बच्चों का समुचित ध्यान, स्वास्थ्य आदि संबंधों पर भी सापेक्ष अभावबोध को जानने का प्रयास किया गया है।

अधिकांशतः धार्मिक नियम महिलाओं पर ही थोपे जाते हैं। सभी व्रत, त्यौहार, पर्वोत्सवों, रीति-रिवाजों में उनकी सहर्ष सहभागिता का प्रमाण है। जबकि महिलाओं की तुलना में पुरुषों में यह प्रवृत्ति अपेक्षाकृत कम पायी जाती है। धार्मिक क्षेत्र में सापेक्ष अभावबोध की स्थिति का

मूल्यांकन करने के लिए उत्तरदाताओं के विचारों को जानने का प्रयास निम्न सारणी में दर्शाया गया है, जिसमें अधिकांश उत्तरदाता इस मत से सहमत पायी गयी कि धार्मिक नियमों की कठोरता पुरुषों की तुलना में स्त्रियों पर अधिक थोपी जाती है यथा-

सारणी संख्या-05

धार्मिक नियमों की कठोरता पुरुषों की तुलना में महिलाओं पर अधिक थोपा जाना

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
सहमत	210	78.94
असहमत	47	17.67
कह नहीं सकते	09	3.39
योग	266	100.00

सर्वाधिक उत्तरदाता 78.94 प्रतिशत सहमत, 17.67 प्रतिशत असहमत तथा 3.39 प्रतिशत कह नहीं सकते समूह की पायी गयीं। इसमें व्यक्तिगत साक्षात्कार के आधार पर भी सत्य को जानने का प्रयास किया जिसमें-सहमति व्यक्त करने वाली शिक्षिकाओं का मानना है कि महिलाओं की तुलना में न तो पुरुषों को व्रत करते देखा जाता है, न पर्वोत्सवों में उनकी अहम् भूमिका रहती है और न ही रीति-रिवाजों को सम्पन्न कराने में उनकी सक्रिय सहभागिता ऐसी स्थिति में वे सापेक्ष अभावबोध अनुभव करती हैं और विद्रोह की स्थिति में परम्परागत मूल्य उनके आड़े आ जाते हैं। असहमति व्यक्त करने वाले उत्तरदाता समूह का मानना था कि वे ऐसा इसलिए नहीं मानती है, क्योंकि इसमें अपनी सक्रिय सहभागिता को स्वयं महिलाओं द्वारा सहर्ष स्वीकार किया जाता है जिसे जबरदस्ती थोपना नहीं माना जा सकता। कह नहीं सकते समूह का मानना था कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री-पुरुष समानता की जब बात होती है तो धार्मिक नियम भी समान रूप से लागू होने चाहिए। लेकिन अगर उसे महिलाएं स्वयं का अधिकार मानती हैं तो स्वीकार करने में कभी-कभी बुराई नहीं भी प्रतीत होती है। लेकिन यह सत्य है कि उन महिलाओं को सर्वाधिक पाया गया जो धार्मिक क्षेत्र में स्वयं को पुरुषों की तुलना में अधिक नियंत्रित अनुभव करती हैं।

वर्तमान समय में घर से बाहर निकलकर कार्य करना आज की आवश्यकता, आर्थिक मजबूती व उनकी आत्मनिर्भरता के रूप में समाज द्वारा भी स्वीकार किया जा रहा है लेकिन उनकी दोहरी जिम्मेदारी को नकारा नहीं जा सकता। कई बार तो कार्यरत पुरुष की तुलना में उसे उस प्रकार की स्वतंत्रता भी प्राप्त नहीं होती, जिसकी उसे अपेक्षा रहती है अर्थात् पारिवारिक स्थितियां, परम्परागत मानसिकता, बच्चों की देखभाल आदि अनेक रूपों में वह सापेक्ष अभावबोध को अनुभव करती हैं। जे0 पी0 सिंह ने भी लिखा है-''कामकाजी महिलाओं पर परिवार व बच्चों की देखभाल का अतिरिक्त दायित्व होता है, कार्यक्षेत्र में कितना भी बड़ा पद क्यों न हो, नैसर्गिक रूप से वे सर्वप्रथम मां, बहू, पत्नी की भूमिका को ही स्वीकार करती दिखायी पड़ती हैं।''[14] ये सारी स्थितियां अभावबोध को जन्म देती हैं। अतः शिक्षिकाओं से ये जानने का प्रयास किया गया कि परिवार में कार्यरत पुरुष की तुलना में कार्यरत् महिला को कम स्वतंत्रता प्राप्त होती है? 72.55 अर्थात सर्वाधिक प्रतिशत सहमत लोगों का पाया जाना महिलाओं में अभावबोध को व्यक्त करता है। असहमत का प्रतिशत 14.66, आंशिक सहमत 2.63 प्रतिशत तथा 2.63 प्रतिशत पूर्ण असहमत भी पाए गये, लेकिन सहमत या आंशिक रूप से सहमत अभावबोध पाया जाना की स्थिति को दर्शाते हैं। निम्न सारणी में प्राप्त तथ्यों को स्पष्ट किया गया है।

सारणी संख्या- 06

परिवार में कार्यरत पुरुषों की तुलना में कार्यरत महिलाओं को कम स्वतंत्रता

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
सहमत	193	72.55
असहमत	39	14.66
आंशिक सहमत	27	10.16
पूर्ण असहमत	07	2.63
योग	266	100.00

यह एक सामान्य सी बात है जब महिलाएं दोहरी भूमिका का निर्वाह करती हैं तो कहीं न कहीं प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में उनके मन में इस बात का तनाव रहता है कि वे बच्चों को पर्याप्त समय नहीं दे पाती हैं और उनकी उचित देखभाल नहीं कर पाती हैं तथा चाहकर-ना चाहकर उन्हें डे बोर्डिंग, आया, नौकर आदि के संरक्षण में बच्चों को रखना उसकी मजबूरी बन जाती है और निरंतर बढ़ती आपराधिक घटनाओं से वे हमेशा भयभीत रहती हैं। ऐसी स्थिति में कई बार घर में रहने वाली उन महिलाओं से वे अपनी तुलना करने लगती हैं, जो अपने बच्चों को समय दे पाती हैं और इन स्थितियों में अभावबोध होना एक

स्वभाविक प्रक्रिया हो जाती है जो तनाव को जन्म देती हैं। इसी प्रमाणिकता को सिद्ध करने के लिए चयनित उत्तरदाताओं से जानने का प्रयास किया गया कि बच्चों की उचित देखभाल न करने के कारण वे अभावबोध महसूस करती हैं प्राप्त प्रत्युत्तर निम्नवत् हैं-

सारणी संख्या- 07

बच्चों का ध्यान न रख पाने के कारण अभावबोध अनुभव करना

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
हमेशा	254	95.48
नहीं	07	2.63
कभी-कभी	05	1.89
योग	266	100.00

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि बच्चों का ध्यान न रख पाने की स्थिति में अभावबोध पाया जाता है, का प्रतिशत सर्वाधिक 95.48 है, नहीं को 2.63 ने स्वीकार किया है। उन्होंने बतलाया कि बचपन से ही वे स्वयं व बच्चे भी इस प्रकार तैयार रहते हैं कि यदि दोनों कार्य करेंगे तो स्थितियां ऐसी ही होंगी। 1.89 प्रतिशत का मानना था कि कभी-कभी उन्हें अभावबोध अनुभव होता है। ये वे शिक्षिकाएं थी जहां बच्चों की देखरेख के लिए कोई-न-कोई पारिवारिक सदस्य अवश्य था।

उपर्युक्त जिन तथ्यों के आधार पर शिक्षण व्यवसाय में कार्यरत् महिलाओं में व्याप्त सापेक्ष अभावबोध को जानने का प्रयास किया था उससे स्पष्ट होता है कि आज भी महिलाएं उन अधिकारों से वंचित हैं, जिनकी वे अपेक्षा रखती हैं। इसके पीछे परम्परागत निर्योग्यताएं व अधीनस्थ की संस्कृति प्रमुख है। वर्तमान सामाजिक सोच स्त्री की स्वतंत्रता को मूल रूप से स्वीकार करने में असमर्थ है। कामकाजी अधिकांश शिक्षिकाओं का गृहणी की भूमिका को सुखद मानना कार्योजित होने के पश्चात स्वयं को सापेक्ष अभावबोध की स्थिति में पाना, चाहे सापेक्ष अभावबोध के आधार पारिवारिक, सामाजिक हों, आर्थिक हों, कार्य परिस्थितियों के आधार पर हो या भौतिक सुख-सुविधाओं के आधार पर। कार्यक्षेत्र में महिला होने के कारण भेदभाव हो, पुरुषों की तुलना में महिलाओं में धार्मिक नियमों की कठोरता, तुलनात्मक रूप से आर्थिक सशक्तता के पश्चात भी पुरुषों से कम स्वतंत्रता का होना तथा उचित रूप से बच्चों की देखभाल न कर पाना आदि ऐसे कारण प्राप्त हुए, जिनमें महिलाओं ने स्वयं की तुलना गृहणियों से, पुरुषों से या कार्यक्षेत्र में कार्य करने वालों से कर सापेक्ष अभावबोध की पुष्टि की है।

संदर्भ

1. S.A Stouffer, *'The American Soldier'*, Adjustment During Army Life, Priceton University Press 1947, P. 125
2. H.H. Hyman, *'The Psychology of Status'*. Archives Of Psychology, 1942, P. 169
3. R.K., Merton, *'Social Theory And Social Structure'*, The Free Press England, 1968, P. 40-41
4. Walker Iain And Smith Hearther J., *'Fifty Years of Relative Deprivation Research'*, Cambridge University Press, W.W.W. Cambridge. Org.
5. Chauhan Indira, *'The Dilemma of Working Women Hostelers'*, B.R. Publishing, Corporation, Delhi, 1986, P. 45
6. Sood Rita, *'Changing Status And Adjustment of Women'*, Manic Publication, Delhi, 1991, pp. 61
7. Kapoor P., *'Marriage And The Working Women In India'*, Vikas, New Delhi, 1971, pp. 48, 49
8. Chakrwarti Krishna, *'The Conflicting Word of Working Mother'*, Calcutta, 1978, pp. 46-47
9. Mishra A.D., K.M.Rai, *'Problems And Procepacts of Working Women in Urban India'*, Mittal Publication, New Delhi, 1994, p. 49
10. Randive V., *'Working Class Women In Social Scientist'*, 1975, pp. 40-41
11. Gulati L.,*'Occupational Distribution Of Working Women'*, In Economic And Political Weekely, Vol 10, 25 Oct, 1975, pp. 1693-1701
12. Swarnlata, *'Women I.A.S.Officer on Their Dual Role'*, Social Welfare, Vol 32, 1985, p. 02
13. Bhadauria Midrula, *'Woman in India'*, A.P.H. Publishing Corporation, New Delhi, 1987, p. 13
14. सिंह जे0 पी0, *'आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन'*, प्रिंटिस हाल ऑफ इण्डिया, दिल्ली, 2005, पृ. 306

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

राहुल सांकृत्यायन की इतिहास दृष्टि का एक विश्लेषण

❑ प्रोफेसर हितेन्द्र पटेल
❖ श्रेयांजना बासु

दर्शन जगत को बुद्धि द्वारा समझने का प्रयत्न है, साहित्य भावना द्वारा और इतिहास अनुभव के उपलब्ध विवरण के आधार पर। इस समझ को फिर इस तरह से उपस्थित करना जिससे मानव समाज को एक बेहतर दिशा में जाने की और ऐसा करने के लिए परिवर्तन को जरूरी और अवश्यंभावी बनाकर पेश करने के बड़े दुस्साहस का काम जिन लोगों ने इन तीनों विषयों में किया है उनमें राहुल सांकृत्यायन का नाम लिया जाना चाहिए। उनका उद्देश्य था अतीत के प्रगतिशील प्रयत्नों को सामने लाकर पाठकों के हृदय में आदर्शों के प्रति प्रेरणा पैदा करना। इस आलेख में उनके साहित्य से कुछ अंशों के सहारे यह कहने का प्रयास किया गया है कि उनके लिए ऐतिहासिक स्रोतों की समझ इतिहासकारों की तरह संकीर्ण नहीं है और वे आमलोगों के प्रति विश्वास से भरकर अतीत चिंतन करते रहे और उन्हें कभी भी यह नहीं लगा कि मध्य वर्ग आम भारतीय लोगों से तत्वतः अधिक प्रगतिशील हैं। वे अतीत चिंतन करते हुए उन दिशाओं में गए हैं जहां से हम अपने अतीत की इतिहासकारों से बेहतर व्याख्या कर सकते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में जाति (नेशन) और धर्म की जैसी व्याख्या राहुल के पास है उससे हम लाभान्वित हो सकते हैं। हिन्दी प्रदेश के बौद्धिक इतिहास के आधुनिक पर्व के इतिहास लेखन में भी उनकी दृष्टि से हमें मदद मिल सकती है।

दर्शन जगत को बुद्धि द्वारा समझने का प्रयत्न है, साहित्य भावना द्वारा और इतिहास अनुभव के उपलब्ध विवरण के आधार पर। इस समझ को फिर इस तरह से उपस्थित करना जिससे मानव समाज को एक बेहतर दिशा में जाने की और ऐसा करने के लिए परिवर्तन को जरूरी और अवश्यंभावी बनाकर पेश करने के बड़े दुस्साहस का काम जिन लोगों ने किया है उनमें राहुल सांकृत्यायन का नाम लिया जाना चाहिए।

किसी आदमी की जाति पहचानने के लिए सबसे बड़ा चिन्ह."पक्का चिन्ह" – है उसकी भाषा।[1] इसके बाद वे जाति की पुष्टि के लिए जिस कारक का ज़िक्र करते हैं वह है धर्म। संस्कृति को वह भाषा, कला और धर्म की सम्मिलित उपज मानते थे।[2] वे इसे गलत मानते हैं कि जातियों का ज़िक्र हो और धर्म को छोड़ दिया जाए। वे उन लोगों को जो धर्म को जातीयता में विशेष स्थान नहीं देना चाहते उनको राहुल ऐसे लोग मानते हैं जिनकी निगाह वर्तमान को नहीं देखती। वे स्पष्ट लिखते हैं "जिस देश में अपनी भाषा, साहित्य, कला के बराबर या उससे भी अधिक जनता का दृढ़ आग्रह किसी धर्म के बारे में मिलता हो, और जब तक वह जनता उसके लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी करने के लिए तैयार हो; वहाँ हम धर्म से आँख नहीं मूँद सकते...जब तक मजहब से प्रभावित होकर कोई जाति उसी के ऊपर अपने अलग व्यक्तित्व को कायम करने के लिए डटी हुई है, तब तक भूत में यह मजहब नहीं था, या भविष्य में नहीं रहेगा, इस बात को कहकर उस विचार को हटाया नहीं जा सकता और न हम वर्तमान की समस्या को हल कर सकते हैं।"[3]

भारत के संदर्भ में वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि "हमें यह मानने में कोई उज्र हो ही नहीं सकता कि हमारे देश के मुसलमान अपनी जातीयता में मजहब को बहुत स्थान देते हैं।"[4] साथ ही, यह उनके लिए स्पष्ट है कि "एक मजहब होने पर भी यदि भाषा भिन्न भिन्न हुई तो अलग जाति का सवाल उठे बिना नहीं रहेगा।" वे 1944 में कहते हैं कि सारे पाकिस्तानी (इस्लाम के आधार पर एक हो जाएँ अगर) एक जाति के नहीं हो जाएंगे, भाषा का सवाल वहाँ तीव्र उठेगा। यह कम उल्लेखित है कि राहुल ने 1944 में कहा था कि "पूर्व बंगाल –जो कि पाकिस्तान का दूसरा टुकड़ा होगा –भी अपनी समुन्नत मातृभाषा को छोडकर उर्दू को अपनायेगा इसकी आशा नहीं रखनी चाहिए।"[5] इसी आधार पर वे कहते हैं कि "पाकिस्तान कभी एक जातीय देश नहीं रहेगा।" राहुल की यह धारणा

❑ प्रोफेसर इतिहास विभाग, रवींद्र भारती विश्वविद्यालय, कोलकाता (पश्चिम बंगाल)
❖ शोध अध्येत्री, इतिहास विभाग, रवींद्र भारती विश्वविद्यालय, कोलकाता (पश्चिम बंगाल)

है कि जातीयता के प्रश्न पर व्यावहारिक रूप से विचार करते वक्त धर्म से भी ज़्यादा हमें भाषा को प्रधानता देनी होगी। पाकिस्तान के बारे में वे लिखते हैं कि ''पश्चिमी खंड में ही एक नहीं ग्यारह जातियाँ हैं जिनकी भाषाएँ हैं सिन्धी, बलोची, बहुई , मुल्तानी, पश्चिमी पंजाबी, पश्तो, कश्मीरी, दरदी , बलती, हुन्ज़ा, और पूरब में पूरबी बंगाल की अपनी एक जीवित भाषा है। इस प्रकार पाकिस्तान ग्यारह जातियों का एक जाति संघ होगा।''[7]

भाषा के संबंध में राहुल जी की इस बात पर गौर करना ज़रूरी है कि कुरु जनपद (मेरठ कमिश्नरी, अलीगढ़ जिला छोड़कर) की एक भाषा अब सारे उत्तरी भारत के अनेकों पुराने जनपदों की शिक्षा का माध्यम हो गई है, और उसे ही हम मातृभाषा का स्थान दिलाना चाहते हैं . अर्थात ब्रज, बुन्देली, अवधी, बनारसी, भोजपुरी, मैथिली, मगही, मारवाड़ी, मेवाड़ी, मालवी, छत्तीसगढ़ी भाषाओं को मातृभाषा से खारिज कराना चाहते हैं। प्राकृत युग में भी मगही, सौरसेनी, आदि भाषाओं की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की गयी है और अब हम यदि उससे उल्टा करना चाहते हैं, तो न यह उचित है और न यह संभव है। इन लोक भाषाओं की जड़ उससे कहीं दूर तक गई है, जितना कि हम समझते हैं।[7] वे इतिहास के इस अनुभव की ओर हमारा ध्यान दिलाते हैं कि बुद्ध के पहले जनपद युग में हर एक जनपद (कुरु, पांचाल, कोसल, काशी, मगध) का व्यक्तित्व अपनी भाषा पर ही आधारित था और उनकी एक स्वतंत्र राजनैतिक सत्ता भी थी। भाषा के अंतर के कारण दो जनपद एक साथ आने और मिल जाने के लिए तैयार नहीं थे। कन्नौज के आधिपत्य के दौर में विभिन्न जातियों को एक साथ जोड़कर कन्नौजिया की जातीय भावना का प्रसार भी आखिरकार सफल न हो सका। पूरे दौर में एक भाषा को लादने का प्रयत्न भी नहीं किया गया। एक 'अमातृभाषा' संस्कृत को भाषा ज़रूर स्वीकार किया गया।

राहुल के अनुसार सारे भारत में भारत की जातियाँ इस रूप में बाँट कर देखी जा सकती हैं .

बिहार

1. मल्ल (भोजपुरी भाषा-भाषी)- चंपारण, सारण, शाहबाद (युक्तप्रांत में गोरखपुर की देवरिया तहसील, गोरखपुर, बलिया, आजमगढ़ और गाजीपुर जिलों के भाग)
2. वज्जी(पश्चिमी मुज़फ्फरपुर जिला
3. विदेह ((मैथिली) दरभंगा जिला
4. अंग (छिकाछि की भाषा) भागलपुर, मुंगेर, और पूर्णिया के कुछ भाग
5. मगध, पटना, गया, तथा जजारीबाग , मुंगेर जिलों के कुछ भाग
6. मुंडा (छोटनागपुर)
7. ओरांव (छोटनागपुर)
8. हो (छोटनागपुर)
9. संथाल (संथाल परगना)
10. राढ़ (पश्चिमी बंगा)-मनभूम, सिंहभूम

दूसरे प्रान्तों के प्रजातन्त्र के नाम उन्होने इस तरह गिनवाए हैं .

युक्त प्रांत : मल्ल (पहले ही उल्लेख किया जा चुका है) काशी, दक्षिणी अवध, उत्तरी अवध, उत्तरी ब्रज, पश्चिमी ब्रज, पूर्वी कुरु (खड़ी बोली), बुंदेलखंड, कूर्मांचल (पूर्वी पहाड़ी)

मध्य-प्रांत :

छेदी (जबलपुरी), दक्षिणी कोशल (छत्तीसगढ़ी), गोंड, नीमाड, मालव, बघेलखंड, उत्तर महाराष्ट्र, बुंदेलखण्ड

राजपूताना

मेवाड़, मारवाड़, मेरवाड़

देहली

पश्चिम कुरु (हरियाणी)

पंजाब

पश्चिमी कुरु, पूर्वी पंजाब, पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी हिमालय (पश्चिमी पहाड़ी), कनौर, स्फिती, लाहुल

कश्मीर

जम्मू, लद्दाख, बाल्तिस्तान, दरदस्तान, हुंजा, कश्मीर

सीमाप्रान्त

पश्तो

बलोचिस्तान

बहुई

सिंध

बंबई

कच्छ , सौराष्ट्र (कठियावाड़ी), गुजरात, दक्षिणी महाराष्ट्र, कोंकण, कर्नाटक, डाकिनी भाषा (बिखरे)

मद्रास-कर्नाटक

तुलू, कुर्ग, केरल, तमिलनाड, आंध्र

ओड़ीसा

उत्कल

बंगाल
1 राढ़ (पश्चिम बंग), 2 मध्य-बंग, 3 पूर्व बंग , 3 चट्टग्राम, 4 लेपचा, गोर्खा, शर्बा, 5 कोच
आसाम
पूर्व बंग, आसाम, नागा, गारो , ख़ासी, जयंतिया , मनीपुर, मिस्त्री
भूटान
नेपाल . गोर्खा, नेवार, तमंग, थारू, शवी
अंतर्प्रान्तीय भाषाएँ .हिन्दी, उर्दू, इंगलिश[8]

राहुल के बारे में यह बात बहुप्रचारित है कि वे अंग्रेज़ी या उर्दू विरोधी थे। यह सही नहीं कहा जा सकता। वे कहते हैं कि मुस्लिम प्रधान प्रान्तों में उर्दू अन्तर्प्रान्तीय भाषा होगी और बाकी प्रान्तों में हिन्दी। (यह संदर्भ हिन्दी-उर्दू राज्यों के संदर्भ में कही गयी है।) लाखों की तादाद में ऐंग्लो-इंडियन और दूसरे जो अंग्रेज़ी बोलते हैं उनके लिए वे कहते हैं कि यद्यपि इनकी आबादी सारे भारत में बिखरी हुई है, तो भी हर जगह उनके बच्चों को पढ़ाने के लिए अंग्रेज़ी भाषा के स्कूलों का प्रबंध करना होगा।[9] वे मातृभाषा की शक्ति को लेकर सचेत और आशावान हैं और इस बात से बिलकुल इत्तफाक नहीं रखते कि ग्रामीण बोलियों का महत्व सिर्फ उनके सुंदर गीतों, कहानियों, मुहावरे और लोकोक्तियों के कारण हैं और उन्हें संग्रहीत कर लिया जाना चाहिए क्योंकि ये धीरे धीरे मर रही हैं। वे जोरदार शब्दों में कहते हैं कि...धृष्टता मत कीजिए। यदि ये भाषायें...अब तक नहीं मरीं तो नज़दीक भविष्य में वे ...शेष (खत्म) नहीं होने जा रहीं। उनके तुलसियों, सूरों और विद्यापतियों की कदर अब तक आपने न की या उन्हें भुला दिया तो भी उनकी उर्वरता गई नहीं; ज्यों की त्यों हैं। भविष्य उनका है।[10] वे कहते हैं जनता की भाषाएँ जब घर की मालकिन बनेंगी, अपने घर को संभालने का सामर्थ्य जनता में तभी आ सकता है।[11]

राहुल के लिए अधिक प्रान्तों का बनना अच्छी बात है। वे कहते हैं कि अभी तक प्रान्तों का बंटवारा शासकों के सुभीते के अनुसार हुआ था अब उसे जनता के सुभीते के अनुसार करना होगा। उनके शब्दों में तीन प्रान्तों की जगह तीस प्रांत हो जाने से अंग्रेज़ प्रभुओं की आपत्ति के ख्याल से डर मत जाएँ ...क्या आप समझते हैं कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद ऐसा ही अक्षुण्ण रहेगा ? सफेद आई सी एस वालों की चक्की के नीचे भारत क्या ऐसे ही पिसता रहेगा ? अगर यह भी हो तो भी फिक्र करने की ज़रूरत नहीं।[12]

भाषा और इसके आधार पर गठित राज्य .जनपद पर राहुल बहुत स्पष्ट रूप से कुछ सुझाव देते हैं। उनके अनुसार हिन्दी-उर्दू प्रांत (पंजाब, सिंध, युक्त-प्रांत, बिहार तथा रियासतों) को 30 जनपदों में इस प्रकार बांटा जा सकता है-

भाषा	जनपद	केंद्र
1 हिन्दकी	पच्छिमी पंजाब	रावलपिन्डी
2 मध्य पंजाबी	मध्य पंजाब	लाहौर
3 पूर्वी पंजाब	पूर्व पंजाब	लुधियाना
4 सिन्धी	सिंध	करांची
5 मुल्तानी	मुल्तान	मुल्तान
6 काश्मीरी	काश्मीर	श्रीनगर
7 पच्छिमी पहाड़ी	त्रिगर्त	कांगड़ा
8 हरियानी	हरियाना	दिल्ली
9 मारवाड़ी	मारवाड़	जोधपुर
10 वैराटी	विराट	जयपुर
11 मेवाडी	मेवाड़	चित्तौड़
12 मालवी	मालवा	उज्जैन
13 बुन्देली	बुंदेलखंड	झांसी
14 ब्रज	सूरसेन	आगरा
15 कौरवी	कुरु	मेरठ
16 पंचाली	रूहेलखण्ड	बरेली
17 गढ़वाली	गढ़वाल	श्रीनगर
18 कूर्मांचली	कूर्मांचल (कुमाऊँ)	अल्मोड़ा
19 कोशली	कोशल	अवध लखनऊ
20 वात्सी	वत्स	प्रयाग
21 चेदिका	चेदी	जबलपुर
22 बघेली	बघेलखंड	रीवाँ
23 छत्तीसी	छत्तीसगढ़	विलासपुर
24 काशिका	काशी	बनारस
25 मल्लिका (भोजपुरी)	मल्ल	छपरा
26 वज्जिका	वज्जी	मुजफ्फरपुर
27 मैथिली	विदेह (तिरहुत)	दरभंगा
28 अंगिका	अंग	भागलपुर
29 मागधी (मगही)	मगध	पटना
30 संथाली	संथाल परगना	जसीडीह

यह स्पष्ट है कि यह राहुल के लिए अंतिम तालिका नहीं थी, क्योंकि श्री नगर को दो जनपदों के केंद्र पर भी शायद वह पुर्नविचार करते अगर वे इस पर और सोचते । यह

भी कहा जा सकता है कि वे मुण्डा, उडांव, हो आदि के बारे में भी वे जरूर कुछ सोचते क्योंकि वे इस विषय पर उसी वर्ष लिख चुके थे। जो बात ध्यान देने योग्य है वह है राहुल की लोकतान्त्रिक सोच। वे जाति की प्राथमिक पहचान के रूप में भाषा को रखते हैं और सभी जनभाषाओं के साथ एक जनपद की बात रखते हैं। वे हिन्दी को इन तीस जनपदों के बीच संवाद की भाषा के रूप में देखते हैं। हिन्दी को वे अनिवार्य द्वितीय भाषा (जो सप्ताह में दो तीन घंटे पढ़ने हों) के रूप में रखने की वकालत करते हैं।

राहुल ने भाषा को कैसा होना चाहिए विषय पर अपना जो अभिमत रखा है उसपर विशेष रूप से ध्यान दिया जा सकता है। वे एल्बर्ट श्वाइट्जर के हवाले से फ्रेंच और जर्मन भाषा के अंतर को उपवन और वन के अंतर की तरह देखते हैं। जर्मन लोक भाषा से जुड़ी है और इसमें जंगल की भांति विचरने का विकल्प खुला है जो फ्रेंच की सुगढ़ और सुनिश्चित रास्ते से अलग है। भाषा के प्रवाहमान रूप की ही राहुल वकालत करते हैं। वे हिन्दी को जनभाषाओं की ''महाउर्वर" भूमि की ओर मुड़ने की सलाह देते हैं। इसी से संस्कृत या अरबी फारसी से उधार लेकर चलने की प्रवृत्ति से छुटकारा मिल सकता है।

पूंजीवाद : पूंजीवाद के आगमन की बड़ी रोचक व्याख्या राहुल ने की है। वे मानते थे कि यूरोपीय समाज में राजा और पुरोहित ही सबकुछ थे। सारी शक्ति उन्हीं के हाथों में होती थी। बनिए बेचारे शक्ति से वंचित थे। अपने समाज में वे भले ही शक्ति पाने में असफल थे लेकिन सात समुंदर पार उनके शक्तिशाली होने को यूरोपीय समाज के शक्तिशाली वर्ग नहीं रोक सके। इसी क्रम में बनिया क्लर्क ने शौर्य दिखलाते हुए 1757 में बंगाल में अपना विजय अभियान शुरू किया। तीन वर्ष बाद ही यूरोप में पूंजीवाद शुरू हुआ। ये लोग बाज़ार बनाने लगे, उसको नियंत्रित करने लगे और धीरे धीरे इन लोगों ने अपनी शक्ति को बहुत बढ़ा लिया।

राष्ट्रीयता : यूरोप में राष्ट्रीयता के विकास को वे फ्रांस में उठी राष्ट्रीयता की लहर के साथ जोड़कर देखते हैं। कैसे यह जर्मन जातियों में फैली मगियार सैनिकों की पवित्र रोमन साम्राज्य की ज़रूरत और फिर लुई कोसुथ (1802-1894) द्वारा आस्ट्रिया के निरंकुश शासन के खिलाफ आंदोलन के जरिए .इसपर राहुल ने ध्यान दिया। कालांतर में जब हंगरी को आस्ट्रिया से जातीय अधिकार मिले, लेकिन तब उसने अपनी सहभागी जातियों . सणबयन, क्रोशियन, रूमानियन को जातीय अधिकार नहीं दिए। मगियर द्वारा अन्य जातियों की भाषा और उनकी जातीय पहचान को न स्वीकार करने को राहुल गलत मानते हैं। इस मामले में वे सी डी हजेन की 1937 में प्रकाशित पुस्तक को उद्धृत करते हैं और कहते हैं कि हंगरी की इस नीति और हमारे यहाँ के कितने ही राष्ट्रीय नेताओं के विचारों में बहुत समानता है, और वह दूसरी अल्पमत जतियों को वही स्वायत्त अधिकार देने के लिए नहीं तैयार हैं, जिनके लिए वे पिछले पचास वर्षों से लड़ते आये हैं।[13]

तुर्की में भी इसी तरह से जातीयताओं को दबाने की चेष्टा की गयी, पर यह संभव नहीं हो सका। वहाँ सभी जातियों- ईसाई,यूनानियों, तथा आर्मेनियनों, और मुसलमान अरबों को अधिकारों से वंचित रख कर उन सबको तुर्क बनाने की कोशिश की गयी। राहुल उल्लेख करते हैं कि अदन में 30 हज़ार आर्मेनियन ईसाईयों को मार डाला गया, गैर मुस्लिम के धार्मिक अधिकारों को छीनने की कोशिश हुई और अल्पमत जातियों को व्यापार के क्षेत्र में मिटाने की कोशिश की गयी। मकदुनिया जैसी जगह में जहां मुसलमान कम थे वहाँ मुसलमानों को बहुमत में लाने के लिए दूसरी जगहों के मुसलमानों को लाकर बसाने की कोशिश की गयी । इस आधार पर राहुल जी कहते हैं कि हिन्दू बहुमत से यदि भारतीय मुसलमानों को खतरा मालूम होता है तो...उसे हम बिल्कुल निर्मूल नहीं कह सकते।[14]

राहुल का प्रस्ताव है कि हर जाति को पूर्ण स्वतंत्रता हो और वहाँ के लोग ही चूंकि इस लड़ाई में शामिल होंगे किसी बाहरी या सामुदायिक आधार पर छद्म लड़ाई करना संभव न होगा। लोग अपने आर्थिक अधिकारों के लिए लड़ेंगे। कोई सांप्रदायिक फूट डाल कर 'इस्लाम खतरे में' 'हिन्दू खतरे में' का झूठा नारा लगाकर आर्थिक समस्याओं को ढंकने की कोशिश नहीं कर पाएगा। भारत की हजारों समस्याओं की दवा के रूप में वे सुझाते हैं कि हमारी सरकार अपना पहला कर्तव्य समझे-सभी देशवासियों के खाने, कपड़े, मकान, दवा, शिक्षा आदि का प्रबंध करना। यह तभी संभव हो सकता है जब कि केवल जनता की आवश्यकता और लाभ के लिए उद्योग धंधे चलाये जाएँ।[15]

अखंड हिंदुस्तान के लिए एक देश की तरह एक जाति की जरूरत पर वे बल देते हैं। वे कहते हैं कि जब हमारे

राष्ट्रीय नेतागण अपनी अपनी कायस्थ, राजपूत, ब्राह्मण जाति के बाहर शादी ब्याह के मामले में जाने के लिए तैयार नहीं हो सकते तो अखंड भारत कैसे बन सकता है? वे हिन्दू धर्मांधता का विरोध करते हैं।

हिन्दी उर्दू के झगड़े पर उनका मत है कि जो नेतागण इस झगड़े को खत्म करने की कोशिश कर रहे हैं वे उस समस्या को भली भांति समझते नहीं हैं। राहुल के अनुसार ये लोग 'बिच्छू का मंत्र न जाने, साँप के बिल में अंगुली डाले' की नीति पर चलने वाले हैं। हिन्दू उर्दू के झगड़े के बीच वे दो संस्कृतियों की टक्कर देखते हैं, जिसके कारण ही दोनों भाषाओं को दो भिन्न भिन्न रास्तों पर विकसित किया।

प्रगतिशीलता : राहुल के अनुसार प्रगतिशील वही हो सकता है जो आज से बीस या पचास बरस पहले नहीं, दस और पाँच बरस पहले भी नहीं बल्कि आज इस वक्त जो कुछ भी मानवता का भंडार बना है, बन रहा है, उससे पूरे तौर से आगाही रखता है। ...प्रगतिशीलता का रास्ता ...गतिशील है। जहां चलनेवाला, उसका रास्ता और सारी परिस्थिति क्षण क्षण बदल रही है , वहाँ रहगीर का काम कितना कठिन हो जाता है इसे आसानी से समझा जा सकता है।

राहुल और नया भारत : 1943 में यात्रा के दौरान राहुल को यह लगा कि ''सेठों के सामने अब राजा झूठे हैं। उनके खर्च बहुत बढ़ गए हैं, लेकिन आमदनी उतनी की उतनी ही है, और सेठों के लिए आमदनी की कोई सीमा नहीं।''[16]

एक और दिलचस्प बात राहुल ने कही है उसी दौर में। वे लिखते हैं- "आधुनिक शिक्षा ने जब वर्तमान शताब्दी के आरंभ में हमारे देश में कदम रखा, तो लोग धरम की ओर से कुछ उदासीन हो गए, लेकिन जब हमारे विश्वविद्यालयों के स्नातकों ने काषायवस्त्र धारण कर लिया तो श्रद्धा दस गुने बल से लौट आई। मैंने देखा कितनी ही तरुण शिक्षिताएँ बड़ी श्रद्धा के साथ ...कुटियों की परिक्रमा कर रही थीं।

राहुल, इस्लाम और भारतीय मुसलमान : एक बार राहुल से पूछा गया कि अगर बौद्ध धर्म और कम्युनिज़्म में एक को चुनना पड़े तो किसे चुनेंगे तो उन्होने कहा कि वे कम्युनिज़्म को चुनेंगे क्योंकि इसमें बौद्धों की सामाजिक समानता निहित है। प्रश्नकर्ता ने जब यह कहा कि यह समानता तो इस्लाम में भी है तो राहुल ने जो कहा वह ध्यान देने योग्य है। उन्होने कहा ''इस्लाम की समानता और बौद्धों की समानता में बहुत अंतर है। इस्लाम में मजहबी समानता है। हरेक मुसलमान धर्म-क्षेत्र में समान समझा जाता है, लेकिन बौद्ध धर्म में मानवमात्र समान है यही क्यों जीवमात्र समान है। इस मौलिक भेद के कारण एक धर्म युक्तियों, अनुरोध, स्नेह, बंधुत्व, त्याग, सहिष्णुता से फैला और दूसरा तलवारों की धार पर । वैसे अनेक मुसलमान संतों ने सहिष्णुता और मानव समानता का प्रचार भी किया। पर बहुत कम।''

राहुल एवं कम्युनिस्ट पार्टी : एकबार जब उनसे किसी ने पूछा कि आपने हिन्दी के लिए कम्युनिज़्म को भी छोड़ दिया तो राहुल ने संशोधन किया कि कम्युनिज़्म को हमने नहीं छोड़ा था, पार्टी से संबंध तोड़ा था। वे भावी कम्युनिस्ट क्रांति के प्रति आशावान थे। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के अनुसार भावी कम्युनिस्ट क्रांति में ...उनका अखंड विश्वास था ... कहा करते थे लाल भवानी की पूजा से ही देश के दुःख दूर होंगे।[19]

राहुल, भारतीय साहित्य और हिन्दी : राहुल जी ने सिद्ध करने की कोशिश की थी कि हिन्दी का प्रथम कवि सरहपाद (760 ई) एक यथार्थ-वादी क्रांतिकारी कवि था और हिन्दी और हिंदुस्तान का भविष्य उज्ज्वल इसी परंपरा को आगे बढ़ाने से बन सकता है। वे मानते थे कि मूलतः सिद्ध-सामंत युग (760 ई से 1300 ई) की भाषा और आज की भाषा मूलतः एक है। इस संदर्भ में वे लिखते हैं कि अपभ्रंश सुनकर किसी को लग सकता है कि यह कोई अलग भाषा है लेकिन इसका एक नाम है -देशी भाषा।[22] राहुलजी ने 1933 में बड़ौदा में इंडियन औरियंटल कान्फ्रेंस में कहा था कि चौरासी सिद्धों का काल हिन्दी साहित्य का आरंभ काल है, जो कि तिब्बती ग्रन्थों के आधार पर निश्चित है। ...सिद्धों की कविता का प्रचार ही पीछे कबीर, नानक, दादू आदि संतों के वचन-प्रचार के रूप में परिणित हो गया। ... और परंपरा बढ़ चली।[23]

राहुल जी का संघर्ष : श्री लंका में रहते हुए उनके बारे में लिखते हुए भदंत आनंद कौशल्यायन ने लिखा है... ''राहुल जी के हस्ताक्षर सुपाठ्य नहीं रहे थे। उनके दिनों दिन बिगड़ने वाली स्वाक्षरी उनके बढ़ते हुए स्नायु दौर्बल्य की सूचना दे रही थी। बहु-मूत्र का रोग। असन्तोषजनक भोजन। बच्चों और परिवार से दूर। किसी प्रकार का खास मनोविनोद नहीं। रात दिन लिखना पढ़ना। वही काम और वही आराम ! ...बाद में देखा कि कभी कभी किसी

भी समय राहुलजी सोने लग गये थे। दिन में आठ और नौ बजे सोते पाये जाने लगे।...राहुल जी का 'क्लास' में पढ़ाने जाना बंद कर दिया गया। ...उचित समझा गया कि राहुलजी जया-जेता के पास जाकर रहें क्योंकि उन दोनों बच्चों को बिना एक चिट्ठी लिखे हुए, रात को राहुलजी कभी सोते ही नहीं थे।...थोड़ी से चंगे होकर राहुलजी एक बार फिर सिंहल आए। न वे पढ़ा सकते थे औ न उन्हें किसी ने पढ़ाने के लिए कहा। उन्हें खाने .पीने की सुविधा-असुविधा का ख्याल करके उन्हें उनके एक परम मित्र श्री एम के कापड़िया के यहाँ ही रखा गया।''[24]

राहुल जी और उनका इतिहास के प्रति दृष्टिकोण : जब राहुल जी का स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं था उन्हें दिल्ली विश्वविद्यालय में व्याख्यान के लिए जाना पड़ा डॉ. नगेन्द्र के विशेष आग्रह पर। विजयेन्द्र स्नातक ने उनसे सिद्ध साहित्य पर बोलने का अनुरोध किया। उन्होने अपने भाषण में यह सिद्ध किया कि कण्णपा अपने युग के सबसे प्रभावशाली व्यक्ति थे। और भी इसी तरह की बातें बोले। स्नातक ने विनम्रता पूर्वक प्रतिवाद किया और उनसे कहा कि वे प्रमाण दें। इसपर राहुल जी ने यह कहा- मैं नहीं चाहता कि आप मेरी मान्यता को ग्रहण करें, किन्तु मैं इतना अवश्य चाहता हूँ कि आप इतिहास के पृष्ठ पलटें। अंग्रेजों द्वारा लिखा गया इतिहास हमारे देश का दूषित, त्रुटित और पक्षपात रंजित इतिहास है। मैं इस इतिहास पर सिद्ध साहित्य को नहीं परखता। क्या आप बता सकते हैं कि सिद्धों की विशाल परंपरा से कौन सा अंग्रेज़ इतिहासकार परिचित है ?किसने पूर्व .मध्ययुग पर प्रामाणिक दृष्टि से लिखा है। आप इन इतिहास ग्रन्थों को पढ़कर कण्णपा या किसी सिद्ध या नाथपंथी योगी का परिचय नहीं पा सकते क्योंकि इनकी दृष्टि सन-सम्वतों में सिमटी रह जाती है। मैं देखता हूँ कि गौतम बुद्ध के बाद देश में तीन-चार बार क्रांतियाँ हुई हैं। किन्तु किसी क्रांति को जनमानस की व्यापक क्रांति के रूप में हमारे इतिहास लेखकों ने अंकित नहीं किया। महेशों और नरेशों का इतिहास लिखने वाले क्या जानें कि जनमानस को जागृत करने वाले विलासी नरेश नहीं होते, साधु, महात्मा और सिद्ध होते हैं। जो राज्य सत्ता से कहीं अधिक प्रभाव जनता पर डालते हैं। आप लोग पहले इतिहास की दृष्टि को स्वच्छ करें इतिहास के पृष्ठों पर पड़ी धूल को साफ करें और तब इतिहास पढ़ने का उपक्रम करें। मैं सिद्धों और नाथों का समर्थक नहीं हूँ किन्तु इतिहास में उनके महत्त्व की कथाओं को पढ़कर यह कहने को बाध्य हुआ हूँ।[25]

क्या यह कहना ठीक है कि सिद्ध और योगियों की रचनाओं को साहित्य न माना जाए ?

रामचंद्र शुक्ल ने सिद्ध और योगियों की रचनाओं को 'साहित्य' न मानते हुए लिखा है कि यह सांप्रदायिक शिक्षा मात्र है। वे कहते हैं कि ''चौरासी सिद्धों में बहुत से मछुए, चमार, धोबी, डोम, कहार, लकड़हारे, दर्जी तथा बहुत से शूद्र कहे जाने वाले लोग थे। ... जो शास्त्रज्ञान सम्पन्न न थे , जिनकी बुद्धि का विकास बहुत सामान्य कोटि का था। " इस दृष्टि की आलोचना करते हुए नामवर सिंह ने लक्षित किया है कि यहाँ साहित्य की कसौटी का आधार सामाजिक और सांस्कृतिक है। जो ''सुसंस्कृत" है उसकी गाली भी साहित्यिक है , लेकिन जो ''असंस्कृत" है उनकी डांट फटकार भी असाहित्यिक है।[26]

नागार्जुन (175 ई) का शून्यवाद : वे विदर्भ के ब्राह्मण थे। उनका मत था कि रूप आत्मा (=मेरे) में नहीं बसता ।

राहुल के अनुसार मुख्य वाद हैं

शून्यवाद - नागार्जुन, आर्यदेव, चन्द्रकीर्ति

विज्ञानवाद - असंग, वसुबंधु, दिङ्गनाग,धर्मकीर्ति, शांतरक्षित

बौद्ध दर्शन का चरम विकास राहुल 400 -600 के बीच यानि वसुबंधु से धर्मकीर्ति के समय को मानते हैं।[28] विज्ञानवाद (योगाचार दर्शन) का समर्थन करने वाले थे असंग (350) और बसुबंधु जो ब्राह्मण (पठान) थे। दोनों भाई थे। ये लोग पेशावर के रहने वाले थे। असंग बड़े थे। बसुबंधु ने अभिधर्मकोश लिखा और उसपर टीका(भाष्य) लिखी। यह राहुल को तिब्बत यात्रा में संस्कृत में मिल गया। वसुबंधु मध्यकालीन न्याय शास्त्र के पिता दिग्नाग के गुरु थे। वसुबन्धु चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के गुरु थे।

इसके बाद आए दिग्नाग (425) । इनके बारे में राहुल ने पुरातत्व निबंधावली (पृ 214-15) में लिखा है। इनका मुख्य ग्रंथ प्रमाणसमुच्चय है जो सिर्फ तिब्बती भाषा में ही मिलता है।

इसके बाद आते हैं धर्मकीर्ति (600) जिन्हें भारतीय काँट भी कहा जाता है। उनका जन्म चोल (उत्तर तमिल) प्रांत में हुआ था। ये भी ब्राह्मण थे। वे ब्राह्मण ग्रन्थों के भी ज्ञाता थे। बाद में बौद्ध गृहस्थ के रूप में बाहर जाने पर ब्राह्मणों का विरोध झेला। वे नालंदा चले आए। वहाँ के प्रधान धर्मपाल के शिष्य बन गए। धर्मकीर्ति की न्यायशास्त्र में

ज़्यादा रुचि थी और दिग्नाग की शिष्य परंपरा के आचार्य ईश्वरसेन से उन्होने इसे पढ़ा। तिब्बती भाषा में अनुवादित बौद्ध न्याय के कुल संस्कृत ग्रन्थों के 175000 श्लोकों में 137000 धर्मकीर्ति की टीका अनुटीकाओं के हैं।[30]

धर्मकीर्ति ने मन और शरीर अलग हैं या एक ही हैं इसपर भी अपने विचार प्रकट किए हैं। बौद्ध आत्मा को नहीं मानते , उसकी जगह वह चित्त , मन और विज्ञान को मानते हैं, जो तीनों पर्याय हैं।

सन्दर्भ

1. राहुल सांकृत्यायन, *'आज की समस्याएँ'*, किताब महल, इलाहाबाद, 1945, पृ. 1. यह पुस्तक राहुल जी के तीन लेख और एक भाषण को लेकर पुस्तकाकार प्रकाशित हुई है। ये तीनों लेख एचएनएस में प्रकाशित हुए थे और भाषण मध्य-भारतीय फासिस्ट-विरोधी लेखक के अध्यक्ष की हैसियत से (1944 में) दिया गया था। जाति के चिन्ह के रूप में उन्होने भाषा के अतिरिक्त वेश, भोजन, गाने की रुचि ('गाना और खाना') और भौगोलिक स्थिति का ज़िक्र किया है।
2. वही, पृ. 2
3. वही, पृ. 3
4. वही, पृ. 31
5. *'पाकिस्तान या जातियों की समस्याएँ'*, आज की समस्याएँ, पृ. 4
6. पूर्वोक्त, पृ. 21
7. वही पृ. 5
8. इस प्रकार कुल मिलाकर 73 जातियों का उल्लेख राहुल ने किया है। देखें पूर्वोक्त, पृ. 27-28
9. पूर्वोक्त, पृ. 29
10. पूर्वोक्त, पृ. 33
11. वही, पृ. 34
12. वही, पृ. 35
13. 'पाकिस्तान या जतियों की समस्या?', पूर्वोक्त, पृ. 11
14. वही, पृ. 12-13
15. वही, पृ. 15
16. मेरी जीवन यात्रा भाग दो , किताब महल, इलाहाबाद, 1950, पृ. 640
17. यह उद्धरण डा. जयनाथ 'नलिन' के संस्मरण से लिया गया है। 'नलिन' जी ने राहुल जी से मसूरी में डेढ़ घंटा बातचीत की थी जिसमें यह प्रसंग आया था। देखें डा जयनाथ 'नलिन', 'राहुलजी का सहज व्यक्तित्व', डा ब्रह्मानन्द संपा. राहुल सांकृत्यायन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, हरियाणा प्रकाशन, दिल्ली, 1971, पृ. 19-20
18. नलिन , उपरोक्त , पृ. 20
19. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', *'मंगलमूर्ति श्री राहुल जी'*, डा ब्रह्मानन्द सम्पा. पूर्वोक्त , पृ. 42
20. उपाध्याय विश्वम्भरनाथ, *'बोधिसत्व राहुल सांकृत्यायन'*, डा ब्रह्मानन्द सम्पा. पूर्वोक्त , पृ. 30
21. भाटिया कैलाशचन्द्र, 'भाषा अध्ययन के क्षेत्र में राहुलजी की देन', पूर्वोक्त, पृ. 105
22. राहुल सांकृत्यायन, *'हिन्दी काव्य धारा'*, किताब महल, इलाहाबाद, 1945, पृ. 5 वे इस देशी भाषा को हिन्दी की ही आदि भाषा के रूप में स्वीकार नही करते बल्कि यह भी कहते हैं कि इस देशी भाषा पर मराठी, उडिया, बंगला, आसामी, गोरखा, पंजाबी, गुजराती भाषा का भी उतना ही अधिकार है जितना हिन्दी का है। (पूर्वोक्त, पृ. 11-12) इसे वह 'सम्मिलित निधि' मानते हैं और कहते हैं कि बारहवीं -तेरहवीं शताब्दी तक द्राविड भाषा भाषी आंध्र , तमिल , केरल और कर्णाटक को छोड़कर भारत के सभी प्रांतों की एक सम्मिलित भाषा थी। वे अपभ्रंश के कवियों को भुला देने को बहुत गलत मानते हैं और साधिकार कहते हैं कि सरहपाद (760) से लेकर राजशेखर सूरि (1300) के बीच के समय के कवियों को महत्त्व देते हैं। वे लिखते हैं- ''अपभ्रंश के कवियों को विस्मरण करना हमारे लिए हानि की वस्तु है। यही कवि हिन्दी-काव्य -धारा के प्रथम स्रष्टा थे। वे अश्वघोष, भास, कालिदास और बाण की सिर्फ जूठी पत्तलें नही चाटते रहे, बल्कि ...हमारे काव्य-क्षेत्र में नया सृजन किया है; नये चमत्कार, नये भाव पैदा किये।" (हिन्दी काव्य धारा, पृ. 12)
23. शर्मा ओमप्रकाश शास्त्री, *'राष्ट्रभाषा हिन्दी और राहुल सांकृत्यायन'*, उपरोक्त, पृ. 84
24. भदंत आनंद कौशल्यायन, *'श्री लंका में राहुल जी'*, उपरोक्त, पृ. 167
25. विजयेन्द्र स्नातक, *'कडवे-मीठे दो लघु संस्मरण'*, उपरोक्त , पृ. 183
26. इस संदर्भ में एक जोरदार टिप्पणी के लिए देखें नामवर सिह, दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृ. 103।
26. राहुल ने विज्ञान का अर्थ इस समय के हिसाब से चित्त के रूप में किया है। वे लिखते हैं कि धर्मकीर्ति बाह्य जगत को अवास्तविक बतलाते हुए विज्ञान (=चित्त) को असली तत्व साबित करते हैं।
27 बौद्ध दर्शन, पृ. 134
28. दिग्नाग का जन्म कंजीवरम (तमिलनाडु) में हुआ था। ये ब्राह्मण थे। भिक्षु नगदत्त के संपर्क में आकर भिक्षु बने। थोड़े समय बाद गुरु से आत्मा के संबंध में मतभेद हो गया जिसके कारण मठ छोड़कर वे उत्तर भारत मे आकर वसुबन्धु के शिष्यों में शामिल हो गए। न्याय शास्त्र का विशेष अध्ययन किया। प्रमाणसमुच्चय का मूल संस्कृत अभी तक नही मिल सका है। राहुल ने तिब्बत की चार यात्राओं में इसे ढूँढ़ने की बहुत कोशिश की लेकिन ये नही मिली। उनको यह उम्मीद रही कि यह तिब्बत के किसी न किसी मठ में ज़रूर मिलेगी।
30. राहुल सांकृत्यायन, *'बौद्ध दर्शन'*, किताब महल, इलाहाबाद, 1980 (प्रथम संस्करण 1943)

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

बाल-आवारागर्दी : कारण एवं निवारण

❑ डॉ. राम आनन्द चौबे

बाल-आवारागर्दी एक बर्हिगामी सामाजिक समस्या है। इस समस्या की प्रकृति वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही है। यह व्यक्ति के लिए जहाँ एक ओर वैयक्तिक विघटन की सूचक है, वहीं दूसरी ओर समाज के लिए गंभीर सामाजिक समस्या भी है। किन्तु इसका यथोचित परीक्षण इस बात पर निर्भर करता है कि यह कहाँ तक सामाजिक संगठन के लिए प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है। समाज के सदस्यों द्वारा यह माना जा सकता है कि बाल-आवारागर्दी की दशा सामाजिक संगठन में अवरोध उत्पन्न करने हेतु तीव्र गति से बढ़ रही है किन्तु इस प्रकार की मान ली गयी आपत्ति सूचक दशा की भयावह स्थिति की सत्यता को वैषयिक रूप से मापना आवश्यक समाजशास्त्रीय कदम है। **वर्तमान समय** में सामाजिक विघटन की जितनी भी समस्याएँ हैं, उनमें बाल-आवारागर्दी की समस्या सबसे विषम और महत्वपूर्ण है। आज बाल-आवारागर्दी की समस्या न केवल शहरों में व्याप्त है बल्कि ग्रामीण समाज भी इस समस्या से त्रस्त है। संसार में ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसने इतना कहर ढाया हो, जितना कि बाल-आवारागर्दी ने। इसने सबसे अधिक घुमक्कड़ों को पैदा किया है। असंख्य लोगों को बेघर, बेसहारा बना दिया है। इसने कितने ही बच्चों को आत्मसम्मान एवं स्वाभिमान को विवशतापूर्वक त्यागकर दूसरों के सम्मुख हाथ फैलाने के लिए विवश किया है। कितने ही को मदात्ययी बनाकर उनका जीवन नष्ट कर दिया है। अनेक बालिकाओं को नैतिकता की मर्यादाएं भुलाकर वेश्यावृत्ति के लिए विवश किया है। बाल-आवारागर्दी का इससे भी भयानक पक्ष यह है कि यही वह अपराधिक सोपान है जहाँ बालक अपराधिता का प्रथम पाठ पढ़ता है, अपराध करना सीखता है और अपराधिक कृत्यों मे दक्ष होने पर न जाने कितने लोगों को जान-माल की हानि पहुँचाता है। समाज में जैसे-जैसे आवारा बालकों की संख्या में वृद्धि हो रही है, बाल अपराधियों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। बाल-अपराधी जितने ही अपने हित के प्रति सचेत होंगे, वयस्क अपराधियों की संख्या भी उतनी ही अधिक होगी। इन समस्त समस्याओं की जड़ में आवारागर्दी निहित है। इस वस्तुस्थिति में उन सभी कारकों का मूल्यांकन एक बड़े परिप्रेक्ष्य में करना होगा जो इस समस्या के लिए उत्तरदायी हैं तथा उन विधियों को ढूँढ़ना होगा जो अध्ययन के दृष्टिकोण से तर्काश्रित हैं।

बाल-आवारागर्दी एक व्यापक संज्ञा है। इसके अन्तर्गत बालकों के वे सभी आचरण एवं व्यवहार प्रतिमान संलग्न हैं जिसे समाज अच्छा नहीं मानता। इनके क्रिया-कलापों से एक संगठित सामाजिक व्यवस्था के स्थापित सामाजिक प्रतिमान, सामाजिक एकता और सामाजिक संतुलन भंग होने का खतरा प्रतिबिम्बित होता है। इन बालकों के ऊपर परिवार का विशेष दबाव नहीं होता। माता-पिता की बगैर अनुमति के घर से गायब रहते हैं। कुछेक बालक तो परिवार का परित्याग भी कर देते हैं। यार-दोस्तों के साथ स्वेच्छाचारी एवं शरारती व्यवहारों को प्रकट करते हैं। इनके भ्रमण का न तो कोई निश्चित स्थान होता है और न ही आजीविका का स्पष्ट स्रोत। निरूद्देश्य इधर-उधर घूमने के फलस्वरूप कुसंग में पड़कर विपथगमनात्मक कार्यों को सम्पादित करने लगते हैं। प्रस्तुत अध्ययन इसी बाल-आवारागर्दी के कारणों एवं निवारण के उपाय खोजने के प्रयासों पर आधारित है।

यद्यपि इस दिशा में कुछ शोध-प्रपत्र पश्चिमी समाजशास्त्रियों द्वारा प्रकाशित किये गये हैं, जैसे काबेल फूट[1], जॉन वी0 वेट[2], सारा हरिस[3] इत्यादि। इसी प्रकार कुछ पत्रिकाओं जैसे फेडरल प्रोवेशन[4] प्रिजन जनरल[5] आदि में भी आवारा बालकों के सन्दर्भ में कुछ महत्वपूर्ण शोध-प्रपत्र प्रकाशित हुए हैं। कुछ पश्चिमी समाजशास्त्रियों ने इस सन्दर्भ में अपनी पुस्तकें भी लिखी हैं जैसे सी0जे0 रिब्टन टर्नर[6] ओ0एफ0 लेविस[7], डब्ल्यू0एच0 डायसन[8] इत्यादि। ये शोध-प्रपत्र और पुस्तकें काफी पुरानी हो चुकी हैं और अब अप्राप्य भी हैं। आवारा बालकों के सन्दर्भ में केवल एक ही अध्ययन सामने आया है और वह अध्ययन शंकर सहाय श्रीवास्तव द्वारा किया गया है।[9]

❑ असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, श्री महंथ रामाश्रय दास स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भुड़कुड़ा, गाजीपुर (उ.प्र.)

निःसन्देह इस अध्ययन की उपलब्धियाँ बहुत ही महत्वपूर्ण हैं तथापि पद्धतिशास्त्रीय दृष्टि से यह अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। केवल इसी अध्ययन के आधार पर किसी प्रकार का सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता। कहना न होगा कि इन विपथगामी बालकों की समस्याओं का सम्यक् अवबोध प्राप्त करने के सन्दर्भ में ही प्रस्तुत अध्ययन का चयन किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य : प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य अद्योलिखित हैं:-

1. आवारा बालकों की वैयक्तिक विशेषताओं का पता लगाना,
2. आवारा बालकों के सामाजिक उद्गम का अन्वेषण करना,
3. आवारा बालकों के हैतुकीय कारकों को ज्ञात करना,
4. आवारा बालकों के आदत-प्रतिमान एवं दैनिक क्रियाविधिकी का अन्वेषण करना,
5. आवारा बालकों के सामाजिक जगत का सूक्ष्मातिसूक्ष्म पर्यवेक्षण करना,
6. आवारागर्दी के प्रति आवारा बालकों के दृष्टिकोण को पर्यवेक्षित करना,
7. पुनर्वास के सन्दर्भ में आवारा बालकों की प्रतिक्रिया का अन्वेषण करना,
8. समस्या के समाधान के सन्दर्भ में उन तरीकों एवं साधनों को बताना जिससे प्रभावकारी निरोधात्मक उपाय ढूँढा जा सके।

प्राक्कल्पनाएँ

प्रस्तुत अध्ययन से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण प्राक्कल्पनाएं अधोलिखित हैं-

1. बाल-आवारागर्दी दोषपूर्ण सामाजिक कारकों का परिणाम है।
2. जिन परिवारों में सामाजिक आदर्श प्रतिमानों एवं नैतिक मूल्यों का उल्लंघन होता है, वैसे परिवारों के बालक आवारागर्दी से अधिक आहत होते हैं।
3. सुसंगठित परिवारों की अपेक्षा भग्न परिवार अधिक आवारा पैदा करते हैं।
4. उच्च आर्थिक स्तरीय परिवार की अपेक्षा निम्न आर्थिक स्तरीय परिवार के बालक अधिक आवारा होते हैं।
5. आवारागर्दी के सृजन में गन्दी बस्तियों की बहुविध भूमिका होती है।
6. आवारागर्दी की ओर उन्मेषित करने में पड़ोस तथा मित्र मण्डली का विशेष योगदान होता है।
7. आवारा बालकों के भ्रमण का न तो कोई निश्चित स्थान होता है और न ही आजीविका का स्पष्ट स्रोत।

सम्प्रत्यात्मक विश्लेषण : हमारी परिभाषा के अनुसार ''एक आवारा बालक 7 वर्षायु से लेकर 18 वर्षायु तक का वह बालक है जिसके भ्रमण का न तो कोई निश्चित स्थान होता है और न ही आजीविका का स्पष्ट स्रोत। वह प्रायः अप्रतिबन्धित यात्रा करने वाला तथा विपथगमनात्मक व्यवहार करने वाला बालक होता है।''

शोध अभिकल्प : प्रस्तुत शोध-अध्ययन का अभिकल्प अन्वेषणात्मक तथा वर्णनात्मक दोनों ही है।

समग्र तथा प्रतिदर्श : प्रस्तुत अध्ययन का समग्र वाराणसी महानगर के आवारा बालक हैं। अध्ययन का समग्र असीमित प्रकृति का है। इसलिए अनुसंधाता ने समग्र को कुछ निश्चित क्षेत्रों में विभाजित करने के लिए दैव निदर्शन की ग्रिड प्रविधि को अपनाकर उत्तरदाताओं का चयन पद्धतिशास्त्रीय दृष्टिकोण से श्रेष्ठतर समझा है। इस प्रकार जिन क्षेत्रों का चयन किया गया है वे हैं वाराणसी कैंट, संकटमोचन, गोदौलिया, बेनियाबाग, सिगरा, मैदागिन, काशी रेलवे स्टेशन, मंडुवाडीह, सारनाथ इत्यादि। ग्रिड प्रविधि के आधार पर वाराणसी महानगर की 10 क्षेत्रीय इकाईयों के चयन के पश्चात् प्रत्येक क्षेत्र से 20-20 आवारा बालकों का चयन सोद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श के आधार पर किया गया। पुनःश्च इन बालकों के परिवार तथा मित्रमण्डली से मिलकर आवारापन की पुष्टि की गई। जिस किसी क्षेत्र में 20 आवारा बालक उपलब्ध नहीं हुए इसकी पूर्ति समीप के क्षेत्रों से की गयी।

उपलब्धियाँ

सारणी संख्या-1

आवारा बालकों का आयु स्तर

आयु-समूह	आवृत्ति	प्रतिशत
7 वर्षायु से 8 वर्षायु तक	7	3.5
9-10	19	9.5
11-12	21	10.5
13-14	59	29.5
15-16	69	34.5
17-18	25	12.5
योग	200	100.0

बाल-आवारागर्दी और आयु में गहरा सम्बन्ध है।

बाल्यावस्था में जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है, बालकों में आवारापन की प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है। कतिपय बालकों की भूमिकायें आवारा उपसंस्कृति में रूपांतरित हो जाती हैं। सारणी में अंतर्विष्ट दत्त सामग्री के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 64.0 प्रतिशत उत्तरदाता 13 से 16 वर्षायु के मध्य हैं। यह इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि अधिकांश उत्तरदाता किशोरावस्था के हैं। सारणी के अवलोकन से यह भी स्पष्ट होता है कि 12.5 प्रतिशत उत्तरदाता 17 से 18 वर्षायु के मध्य हैं। उत्तरदाताओं का गणितीय माध्य 13.89 है। यह इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि एक निश्चित आयु सीमा पार करने के पश्चात् बालक या तो आवारागर्दी छोड़ देते हैं या फिर अपने को पूर्णतया आवारा उपसंस्कृति में समायोजित कर लेते हैं या फिर आवारागर्दी की सीमा पार करके अपराधिक जगत की ओर उन्मुख हो जाते हैं।

सारणी संख्या-2

आवारा बालकों का लैंगिक-स्तर

लिंग-भेद	आवृत्ति	प्रतिशत
बालक	190	95.00
बालिकायें	10	5.00
योग	200	100.0

सामाजिक स्तरीकरण एवं विभेदीकरण का एक प्रमुख आधार लिंग विभेद है। बालक और बालिकाओं में, स्त्री और पुरुषों में भेद प्राणिशास्त्रीय अधिक है, सामाजिक-सांस्कृतिक कम। सारणी संख्या-2 में अन्तर्विष्ट दत्त-सामग्री के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि आवारा बालकों की तुलना में आवारा बालिकाओं की संख्या काफी कम है। आवारा बालकों की संख्या जहाँ 95.0 प्रतिशत है वहीं बालिकाओं की संख्या मात्र 5 प्रतिशत है। यह इस तथ्य को प्रदर्शित करता है कि तीव्र सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों के बावजूद परिवार में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों पर आज भी अनुशासन अधिक है।

आवारा बालकों का जातीय-स्तर : जाति से सम्बन्धित कोई भी विवेचना करते समय हमारा प्रमुख अभिप्राय भारतीय समाज से होता है, क्योंकि यहाँ इसका चरम रूप देखने को मिलता है।[10] चूँकि भारत में जातियों की काफी बड़ी संख्या है, अतः प्रस्तुत शोध-प्रपत्र में अध्ययन की सुगमता हेतु जातीय परिवर्त्य को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया गया है जो अधोलिखित हैं- सवर्ण जाति, पिछड़ी जाति, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा गैर जातीय समूह।

सारणी संख्या-3

आवारा बालकों का जातीय-स्तर

जातीय स्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
सवर्ण	34	17.0
पिछड़ी जाति	79	39.5
अनुसूचित जाति	43	21.5
अनुसूचित जनजाति	5	2.5
गैर-जातीय समूह	39	19.5
योग	200	100.0

उपर्युक्त सारणी में अन्तर्विष्ट दत्त-सामग्री के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि प्रतिदर्शित उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक संख्या पिछड़ी जाति तथा अनुसूचित जाति के उत्तरदाताओं की है। इस श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले उत्तरदाताओं की संख्या क्रमशः 39.5 प्रतिशत तथा 21.5 प्रतिशत है। क्षेत्रीय कार्य के दौरान पिछड़ी जातियों में यादव जाति के सर्वाधिक उत्तरदाता पाये गये। तत्पश्चात् खटिक, बिन्द, केवट, मौर्या और राजभर पाये गये। अनुसूचित जाति के अन्तर्गत हरिजन उत्तरदाताओं की संख्या अधिक थी। चूँकि सवर्ण जातियों में आवारागर्दी को हेय दृष्टिकोण से देखा जाता है अतः यही कारण है कि पिछड़ी जाति तथा अनुसूचित जातियों की अपेक्षा सवर्ण उत्तरदाताओं की संख्या कम पायी गयी। सवर्ण जातियों में अन्य उप-जातियों की अपेक्षा ब्राह्मण उत्तरदाताओं की संख्या अधिक पायी गयी है। इसी प्रकार गैर जातीय-समूह के अन्तर्गत समाविष्ट उत्तरदाताओं में सभी मुस्लिम बालक हैं। मुस्लिम जातियों में भी पिछड़ी जाति जैसे बुनकर, धुनियाँ, चुड़ीहार तथा अंसारी जातियों की संख्या अधिक पायी गयी है।

आवारा बालकों की पारिवारिक संरचना : आवारा बालकों की पारिवारिक संरचना किस सीमा तक सामान्य अथवा भग्न है, इसे ज्ञात करने का प्रयास किया गया है। संरचनात्मक सम्पूर्णता की दृष्टि से एक सामान्य परिवार वह है जिसमें माता-पिता दोनों जीवित होते हैं। इसके विपरीत भग्न परिवार से तात्पर्य उन परिवारों से है जिसमें मृत्यु, तलाक, परित्याग अथवा कारावास आदि के कारण माता-पिता दोनों या दोनों में से कोई एक पक्ष नहीं होता अथवा सौतेला होता है। सारणी संख्या-4 इस तथ्य पर विस्तृत रुप से प्रकाश डालती है।

सारणी संख्या-4

आवारा बालकों की पारिवारिक संरचना

परिवारिक संरचना के प्रकार	आवृत्ति	प्रतिशत
भग्न परिवार	105	52.5
सामान्य परिवार	95	47.5
योग	200	100.0

उपर्युक्त सारणी में अन्तर्विष्ट दत्त सामग्री से स्पष्ट होता है कि 52.5 प्रतिशत उत्तरदाता भग्न परिवारों से सम्बद्ध हैं जबकि 47.5 प्रतिशत उत्तरदाता सामान्य परिवार से आये हुए हैं। यहाँ पर हमारी इस प्राक्कल्पना की पुष्टि होती है कि अधिकांश आवारा बालक भग्न परिवार से आते हैं। उपर्युक्त दत्तों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि पारिवारिक संरचना के अन्तर्गत पाये गये सामान्य तथा भग्न परिवारों से सम्बद्ध आवारा बालकों में अंतर बहुत ही कम है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आवारा व्यवहार के निर्धारण में भग्न परिवार का उतना ही योगदान है जितना कि उन परिवारों का जिन्हें भग्न परिवार नहीं मानते हैं।[11] **यद्यपि यह** सत्य है कि बालक को आवारा बनाने में भग्न परिवार की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, फिर भी कोई भी बालक एक या दो कारकों से असामान्य व्यवहार करने के लिए बाध्य नहीं होता, वरन् इसके लिए अनेक कारक उत्तरदायी होते हैं।[12] बालक को विपथगमन की ओर प्रोत्साहित करने में यह तथ्य महत्वपूर्ण नहीं है कि परिवार भग्न है बल्कि महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि परिवार अथवा पारिवारिक जीवन कितना विघटित है।[13]

सारणी संख्या-5

आवारा बालकों की परिवार से सम्बद्धता

वर्गीकरण	आवृत्ति	प्रतिशत
परिवार से सम्बद्ध	64	32.0
परिवार से अंशतः सम्बद्ध	50	25.0
परिवार से असम्बद्ध	86	43.0
योग	200	100.0

उपर्युक्त सारणी में समाविष्ट दत्तों के सांख्यिकीय विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 32 प्रतिशत उत्तरदाता अपने परिवार से सम्बद्ध हैं। ये उत्तरदाता दिनभर सड़कों पर मटरगस्ती करने के पश्चात् रात्रिकाल में अपने परिवारजनों के साथ रहते हैं। वास्तव में बाल-आवारागर्दी कोई रातों-रात या अचानक विकसित होने वाली घटना नहीं है। यह भी एक सीखने की प्रक्रिया है। पूर्ण आवारा बनने में कई अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। प्रारम्भिक अवस्था में बालक कभी-कभी बिना आज्ञा घर से अनुपस्थित होने लगते हैं, जिसका स्पष्ट बोध माता-पिता को नहीं होता। इस अवस्था में बालक के मन में माता-पिता का डर सदैव बना रहता है। अतः वह दिन के अधिकांश समय भ्रमण करने के पश्चात् शाम होते ही घर लौट आता है और माता-पिता से बचने के लिए कोई न कोई बहाना बनाता है। दूसरी अवस्था में माता-पिता का डर कम होने लगता है। अब वह डाँट और मार को सहन करने की क्षमता अपने अन्दर समेट लेता है। बात-बात में क्रुद्ध होकर माता-पिता से लड़ाई करने लगता है। मित्र-मण्डली अपना प्रभाव दिखाने लगती है। घूमने-फिरने का दायरा बढ़ जाता है। फिर भी दिनभर घूमने के पश्चात् रात्रिकाल में घर लौट आता है। 25 प्रतिशत उत्तरदाता अपने परिवार से अंशतः सम्बद्ध हैं अर्थात् गृहपरित्यागी होने के पश्चात् भी अपने परिवार में महीने अथवा दो महीने में, कभी-कभी तीन महीने में एक बार निश्चित रुप से चले जाते हैं। इस श्रेणी के उत्तरदाता आस-पास के जनपदों अथवा दूसरे राज्यों से आकर वाराणसी शहर में निरुद्देश्य भ्रमण करते हैं। इस स्तर पर बालक और परिवार का सम्बन्ध टूटने लगता है। अब उसे प्रतिदिन घर लौटने की आवश्यकता नहीं होती। पेट भरने के लिए चोरी, उठाईगीरी तथा भिक्षाटन का सहारा लेने लगते हैं। 43 प्रतिशत उत्तरदाता अपने परिवार से कोई सम्बन्ध नहीं रखते हैं। इन उत्तरदाताओं में देखा गया कि वे घर लौटना बिल्कुल पसन्द नहीं करते हैं। घर नहीं जाने के सन्दर्भ में भिन्न-भिन्न कारणों का उल्लेख करते हैं। अंतिम स्तर पर आवारागर्दी असाध्य रूप धारण कर लेती है। तब आवारागर्दी बाल-अपचार के निकट पहुँच जाती है।

सारणी संख्या-6

आवारा बालकों का माता-पिता के साथ सम्बन्ध

माता के साथ सम्बन्ध	आवृत्ति	प्रतिशत
सुखद	69	34.5
कटुपूर्ण	85	42.5
माता नहीं है	46	23.0
योग	200	100.0
पिता के साथ सम्बन्ध	आवृत्ति	प्रतिशत
सुखद	53	26.5
कटुपूर्ण	113	56.5
पिता नहीं है	34	17.0
योग	200	100.00

सारणी में अन्तर्विष्ट दत्तों के प्रेक्षण से ज्ञात होता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं का अपने माता-पिता के साथ सम्बन्ध मधुर नहीं है। इस श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले उत्तरदाताओं में 42.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं का अपने माता के साथ सम्बन्ध तथा 56.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं का अपने पिता के साथ सम्बन्ध कटुपूर्ण है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आवारा बालक और माता-पिता के साथ सम्बन्ध सामान्यतः कटुपूर्ण होते हैं।

सारणी संख्या-7

पिता की व्याधिकीय व विचलनकारी आदतें

आदत प्रतिमान	आवृत्ति	प्रतिशत
व्याधिकीय एवं विचलनकारी आदतें	127	63.5
कोई व्याधिकीय आदत नहीं	39	19.5
पिता नहीं है	34	17.0
योग	200	100.0

सारणी के दत्तों के प्रेक्षण से ज्ञात होता है कि 63.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पिता की आदतें सामान्य नहीं प्रत्युत व्याधिकीय एवं विचलनकारी हैं। इस श्रेणी के 23 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पिता की आदतें मुख्यतः मद्यपान, 13.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पिता मादक पदार्थो के सेवनकर्ता, 12.5 प्रतिशत में जुआ खेलने की आदतें, 10 प्रतिशत में व्याभिचार से सम्बन्धित आदतें तथा 4.5 प्रतिशत में विविध विचलनकारी आदतें पायी गयीं। इससे यह स्पष्ट होता है कि पिता की विचलनकारी आदतों का प्रभाव बच्चों के व्यवहार प्रतिमान पर पड़ता है। यहाँ हमारी इस प्राक्कल्पना की भी पुष्टि होती है कि सामाजिक संरचनाएं कुछ बालकों पर दबाव डालती हैं कि वे समंजनकारी व्यवहार न करके विचलनकारी व्यवहार अपना लेते हैं।

सारणी संख्या-8

माता-पिता का आपसी सम्बन्ध

सम्बन्धों के प्रकार	आवृत्ति	प्रतिशत
मधुर	55	27.5
द्वेषपूर्ण	58	29.0
तनावपूर्ण	19	9.5
मुझसे सम्बन्धित नहीं	68	34.0
योग	200	100.0

माता-पिता के पारस्परिक सम्बन्धों का बालक के व्यक्तित्व के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता हैं। सारणी संख्या 8 में सम्मिलित दत्तों से यह स्पष्ट होता है कि 29 प्रतिशत उत्तरदाताओं के माता-पिता का पारस्परिक सम्बन्ध द्वेषपूर्ण है। इन उत्तरदाताओं से ज्ञात हुआ कि उनके माता-पिता में अक्सर लड़ाई-झगड़ा होता रहता है। माता-पिता कई-कई दिनों तक गुस्से में बिना खाना खाये रह जाते हैं। आपसी संघर्षो के कारण अपना गुस्सा बालकों पर उतारते हैं। 9.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार उनके माता-पिता का आपसी सम्बन्ध तनावपूर्ण है। माता-पिता एक-दूसरे को देखना नहीं चाहते हैं। पिता द्वारा माता के ऊपर अनुचित रूप से अत्याचार किया जाता है अथवा माता द्वारा पिता पर कठोर नियंत्रण रखा जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि बालक को आवारागर्दी की ओर प्रोत्साहित करने में माता-पिता के सम्बन्धों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वास्तव में जहाँ माता-पिता के सम्बन्ध द्वेषपूर्ण या तनावपूर्ण होते हैं, वहाँ बच्चों की उपेक्षा होती है। परिवार में अनुशासन और निर्देशन नाम की कोई चीज नहीं रह जाती। ऐसे परिवार के बालक माता-पिता को एक-दूसरे के इच्छाओं के विपरीत आचरण करते हुए देखकर यह समझ नहीं पाते कि माता-पिता में से किसको आदर्श मानकर उनके व्यवहार का अनुकरण करना चाहिए। उनमें निराशा, घृणा तथा रोष की भावना जाग्रत हो जाती है। अतः हताशा की स्थिति में नियंत्रणहीन होकर ऐसे स्थलों की तलाश करने लगते हैं जहाँ उन्हें शारीरिक सुरक्षा और मनोवैज्ञानिक संतोष प्राप्त हो सके।

परिवार की आर्थिक पृष्ठभूमि : परिवार की आर्थिक पृष्ठभूमि का बाल-आवारागर्दी से प्रत्यक्ष और गहरा संबंध है। आर्थिक पृष्ठभूमि जीवन की आकांक्षाओं, आवश्यकताओं की पूर्ति, रहन-सहन, आधारभूत विचारों के विकास, सामाजिक प्रस्थिति के निर्धारण, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के निर्धारण में निश्चयात्मक भूमिका निभाती है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो आर्थिक पृष्ठभूमि एवं सामाजिक जीवन का साहचर्य अभिन्न और अविभाज्य है। यह परिवार के आकार, शिक्षा और व्यवसाय आदि की प्रकृति व संरचना को निर्धारित करती है। अतः प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत आवारा बालकों के पिता के मुख्य व्यवसाय, कुल मासिक आय तथा आर्थिक वर्ग संरचना को पर्यवेक्षित करने का प्रयास किया गया है।

आवारा बालकों के पिता का मुख्य व्यवसाय : चूँकि भारतीय परिवारों में पिता ही सर्वोच्च कर्ता होते हैं। अतः यहाँ केवल पिता के व्यवसाय को ही पर्यवेक्षित किया

गया है। सारणी संख्या 9 से स्पष्ट होता है कि अधिकांश अर्थात् 30 प्रतिशत पिता अकुशल श्रमिक हैं। इस श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले पिता मजदूरी, रिक्शा, ट्राली चलाने जैसे व्यवसायों से सम्बद्ध पाये गये। 18.5 प्रतिशत पिता कुशल श्रमिक हैं अर्थात् किसी दुकान पर नौकरी, टैक्सी ड्राइवर, नाई, दर्जी जैसे व्यवसायों में संलग्न पाये गये। 12.5 प्रतिशत पिता अपना स्वयं का व्यवसाय करते हैं। इस श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले पिता अधिकांशतः छोटे दुकानदार पाये गये। इसी प्रकार 11.5 प्रतिशत पिता कृषि कार्य तथा 6 प्रतिशत सरकारी सेवाओं अथवा प्रतिष्ठित संस्थाओं में सेवारत पाये गये। शेष 4.5 प्रतिशत पिता कोई व्यवसाय नहीं करते हैं जबकि 17 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पिता ही नहीं है।

सारणी संख्या-9

पिता का मुख्य व्यवसाय

व्यवसाय	आवृत्ति	प्रतिशत
अकुशल श्रमिक	60	30.0
कुशल श्रमिक	37	18.5
व्यापार	25	12.5
कृषि	23	11.5
नौकरी	12	6.0
कोई नहीं	9	4.5
पिता नहीं हैं	34	17.0
योग	200	100.0

आर्थिक वर्ग के आधार पर आवारा बालकों के परिवार का वर्गीकरण : सारणी संख्या 10 में अन्तर्विष्ट दत्तों के प्रेक्षण से ज्ञात होता है कि बहुसंख्यक उत्तरदाता निम्न आय वर्ग तथा निम्न मध्य आय वर्ग से सम्बद्ध हैं। अतः बाल-आवारागर्दी का प्रत्यक्ष सम्बन्ध निम्न आय वर्ग से है। अनेक शोध अध्ययनों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि अपचारी बालक अधिकांशतः निर्धन परिवार से आते हैं।[14] आर्थिक अरक्षा, कुंठित आकांक्षा, समुचित शिक्षा और चिकित्सा का अभाव बालकों में व्याधिकीय व विद्रोही भावनाएँ उत्पन्न करती हैं। निर्धन परिवार के बालक नकारात्मक आत्म-धारणा के कारण अक्सर अपने लक्ष्य पूर्ति के लिए अवैध साधनों का प्रयोग करते हैं। माता-पिता के उचित निर्देशन के अभाव में अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति के लिए गलियों में, सड़कों पर घूमना आरम्भ कर देते हैं। गाँव से शहर की ओर पलायित होने लगते हैं। ऐसे बालकों को सहज रूप से आवारा, विपथगामी बालकों का साहचर्य भी प्राप्त हो जाता है। अतः अपचार और गरीबी में प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।[15] प्रस्तुत अध्ययन के आँकड़े भी इसे प्रमाणित करते हैं। किन्तु यह नहीं मान लेना चाहिए कि आवारा व्यवहार के निर्धारण में निर्धनता ही एक मात्र निर्धारक कारक है। निर्धन होते हुए भी यदि परिवार का नैतिक और चारित्रिक स्तर ऊँचा है तो ऐसे परिवार के बालक आवारा नहीं होते। सिरिल बर्ट ने भी लिखा है कि निर्धनता अपराध का एकमात्र कारण नहीं है और मात्र निर्धन होने से ही कोई व्यक्ति अपराधी नहीं होता।[16] निर्धनता से कहीं अधिक प्रभाव व्याधिकीय पड़ोस, रहन-सहन तथा साहचर्य की दशाओं का पड़ता है जिनमें निर्धन परिवारों को रहने के लिए बाध्य होना पड़ता है। निर्धन परिवारों के बालक निर्धनता के कारण अपराधी नहीं बनते वरन् इस प्रकार के परिवारों के जीवन प्रतिमान के कारण अपराधी बनते हैं।[17] यहाँ हमारी इस प्राक्कल्पना की भी पुष्टि होती है कि उच्च आर्थिक स्तरीय परिवार की अपेक्षा निम्न आर्थिक स्तरीय परिवार के बालक अधिक आवारा होते हैं।

सारणी संख्या-10

आवारा बालकों के परिवार का आर्थिक वर्ग

वर्गीकरण	आवृत्ति	प्रतिशत
निम्न आय वर्ग	122	61.0
निम्न मध्य आय वर्ग	42	21.0
ऊँच मध्य आय वर्ग	21	10.5
ऊँच वर्ग	9	4.5
परिवार विहीन	6	3.0
योग	200	100.0

रूपये 10000 या इससे कम निम्न आय वर्ग, 10,001 से 30,000 निम्न मध्य आय वर्ग, 30,001 से 50,000 उच्च मध्य आय वर्ग, 50001 रू. या इससे अधिक उच्च वर्ग मानकर तथ्यों को प्रविष्ट किया गया है।

सारणी संख्या-11

निवास स्थान की सामान्य पारिस्थितिकी

सामान्य पारिस्थितिकी	आवृत्ति	प्रतिशत
गन्दी बस्तीय क्षेत्र	143	71.5
सामान्य क्षेत्र	57	28.5
योग	200	100.0

आवारापन की प्रवृत्ति के निर्माण में निवास स्थान की सामान्य पारिस्थितिकी का महत्वपूर्ण योगदान होता है। सारणी में प्रविष्ट दत्तों के प्रेक्षण से ज्ञात होता है कि

उत्तरदाताओं का वृहद दल अर्थात् 71.5 प्रतिशत उत्तरदाता गन्दी बस्तीय क्षेत्रों के उत्पाद हैं। यहाँ हमारी इस प्राक्कल्पना की भी पुष्टि होती है कि स्वच्छ बस्तियों की अपेक्षा गन्दी बस्तियाँ आवारागर्दी के जनन के लिए अधिक जिम्मेदार होती हैं। शोध-प्रपत्र की यह उपलब्धि पारिस्थितिकीय सिद्धांत में विश्वास रखने वाले विद्वानों के इस कथन से कि अपचार एक क्षेत्र विशेष में पाये जाने वाले साहचर्य के स्वरूप एवं सामान्य प्रभावों की उपज है,[18] की समर्थन करती हैं। गन्दी बस्तीय पारिस्थितिक क्षेत्रों को इसलिए भी महत्वपूर्ण माना जाता है कि यहाँ की गन्दगी एवं उजड़ती संस्कृति में विपथगमन के कीड़े उत्पन्न होते हैं। अभ्यस्त अपराधी इन क्षेत्रों में आकर शरण लेते हैं और प्रायः अपनी छाप छोटे बालकों पर छोड़कर चले जाते हैं। इन क्षेत्रों की एक विशेष उपसंस्कृति होती है जिससे बालकों का आवारागर्दी करना सरल हो जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि बाल-आवारागर्दी उन समुदायों से उत्पन्न होती है जिनका कि सामान्य परिस्थितियों में अपूर्ण समायोजन होता है।[19]

सारणी संख्या-12

आवारा बालकों की मित्र-मण्डली

मित्र-मण्डली से साहचर्य	आवृत्ति	प्रतिशत
घनिष्ठ मित्र-मण्डली	81	40.5
मित्र-मण्डली से अंशतः संबंध	66	33.0
कोई मित्र-मण्डली नहीं	53	26.5
योग	200	100.0

सारणी संख्या 12 के दत्तों के प्रेक्षण से ज्ञात होता है कि 40.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं की सक्रिय और घनिष्ट मित्रमण्डली है। ये उत्तरदाता बाल गिरोह के रुप में भ्रमण करते हैं। उदण्डता इनमें कूट-कूट कर भरी होती है। अपने गिरोह में जहाँ एकता की भावना होती है वहीं दूसरे बाल गिरोंहो के साथ द्वेषपूर्ण सम्बन्ध होता है। इन उत्तरदाताओं में जोड़तोड़ तथा दूसरे को मूर्ख बनाने की प्रवृत्ति अधिक पायी गयी। मित्रों के साथ कभी-कभी दूसरे शहर में भी चले जाते हैं। 33 प्रतिशत उत्तरदाताओं की मित्र-मण्डली तो है किन्तु मित्रों से अंशतः सम्बन्ध हैं। इन उत्तरदाताओं से ज्ञात हुआ कि कार्य निष्पादन के लिए मित्रों की आवश्यकता तो पड़ती है किन्तु कार्य निष्पादन के पश्चात् बाल-मण्डली को भंग कर दिया जाता है और अक्सर अकेला ही रहना पसन्द करते हैं। मित्र-मण्डली से सक्रिय सम्बन्ध तथा अंशतः सम्बन्ध रखने वाले उत्तरदाताओं में कुछेक उत्तरदाताओं का सम्बन्ध वयस्क अपराधिक गिरोहों से भी रहा है। 26.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं की कोई मित्र मण्डली नहीं है। इस सन्दर्भ में यह भी अवलोकित किया गया कि सक्रिय मित्र-मण्डली और परिवार के साथ सम्बन्धों में विपरीत सम्बन्ध है। जिन उत्तरदाताओं की सक्रिय मित्र-मण्डली है वे या तो परिवार को छोड़ चुके हैं या बहुत जल्द छोड़ने वाले हैं।

सारणी संख्या-13

आवारा बालकों के मित्रों के प्रकार

मित्रों के प्रकार	आवृत्ति	प्रतिशत
प्रधानतः आवारा	130	65.0
प्रधानतः विपथगामी	17	8.5
कोई मित्र नहीं	53	26.5
योग	200	100.0

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 65 प्रतिशत उत्तरदाताओं के मित्र भी मुख्य रुप से आवारा हैं जबकि 8.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया कि उनके मित्र विपथगामी प्रवृत्ति के हैं। इन उत्तरदाताओं से ज्ञात हुआ कि इनके मित्र उठाईगिरी, पाकेटमारी तथा गैरकानूनी वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाते हैं। शेष 26.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं के मित्र ही नहीं हैं।

सारणी संख्या-14
आवारा बालकों के मित्रों की सामान्य अभिरुचियाँ

अभिरुचियाँ	प्रत्युत्तर					
	हाँ		नहीं		योग	
	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत	आवृत्ति	प्रतिशत
जुआ खेलना	147	73.5	53	26.5	200	100.00
नशीले पदार्थों का सेवन करना	133	66.5	67	33.5	200	100.00
अनैतिक यौन क्रिया	121	60.5	79	39.5	200	100.00
उठाईगिरी तथा पाकेटमारी	10	5.0	190	95.0	200	100.00
भिक्षावृत्ति	7	3.5	193	96.5	200	100.00

उपर्युक्त सारणी में अन्तर्विष्ट दत्त-सामग्री से स्पष्ट होता है कि बहुसंख्यक आवारा बालकों के मित्रों की अभिरुचियाँ सामान्य नहीं प्रत्युत व्याधिकीय हैं। मित्रमण्डली एक घनिष्ठ प्राथमिक समूह है। अतः विभेदक साहचर्य सिद्धान्त की यह अवधारणा कि आवारागर्दी एक सीखा हुआ व्यवहार है, जो कि घनिष्ठ प्राथमिक समूहों में अंतःक्रिया द्वारा सीखा जाता है तथा अंतःक्रिया में सम्पर्कों की विभिन्नता, अवधि, तीव्रता, प्राथमिकता और पुनरावृत्ति का महत्वपूर्ण स्थान है,[20] की पुष्टि होती है। प्रस्तुत शोध-प्रपत्र की यह एक महत्वपूर्ण प्रस्थापना भी है कि शेष समाज से अलग होकर आवारा बालकों को अपने मित्रों के साथ आवारागर्दी किये जाने वाले स्थानों पर अधिक देर तक रहना पड़ता है। यहाँ पर वे अपने मित्रों के साथ न केवल अन्तःक्रिया करते हैं बल्कि उनके सामान्य अभिरूचियों से भी प्रभावित होते हैं। इस अंतः क्रिया में उनका परिचय अपने से अधिक आवारों से होता है। आवारागर्दी की निरंतरता को बनाये रखने में मित्रों की सामान्य अभिरूचियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

सारणी संख्या-15
आवारा बालकों द्वारा भ्रमण करने का प्रमुख क्षेत्र

भ्रमण का क्षेत्र	आवृत्ति	प्रतिशत
कैंट परिक्षेत्र	66	33.0
गोदौलिया परिक्षेत्र	41	20.5
गोलगड्डा परिक्षेत्र	19	9.5
मैदागिन परिक्षेत्र	15	7.5
संकटमोचन परिक्षेत्र	10	5.0
मंडुवाडीह परिक्षेत्र	6	3.0
राजघाट परिक्षेत्र	5	2.5
सारनाथ परिक्षेत्र	3	1.5
कोई निश्चित नहीं	35	17.5
योग	200	100.0

यद्यपि आवारा बालकों के भ्रमण का कोई निश्चित क्षेत्र नहीं होता तथापि यह पर्यवेक्षित करने का प्रयास किया गया है कि ये वाराणसी शहर के किन क्षेत्रों में अपना अधिकांश समय व्यतीत करते हैं। इस सन्दर्भ में एक तिहाई उत्तरदाताओं से ज्ञात हुआ कि वे वाराणसी कैंट अथवा इसके आस-पास के क्षेत्रों में अपना अधिकांश समय व्यतीत करते हैं। पुनः इन बालकों में यह अवलोकित किया गया कि अन्य क्षेत्रों में भ्रमण करने वाले आवारा बालकों की अपेक्षा विपथगमनात्मक कार्यों को सम्पादित करने में ये आवारा बालक अधिक कुशल तथा प्रवीण होते हैं। बाल गिरोहों के साथ-साथ वयस्क अपराधी गिरोहों से भी सम्बन्ध रखते हैं। आवारा बालिकाएँ अल्प आयु में ही यौन अनैतिकता में संलग्न हो गयी हैं। सारणी के अवलोकन से यह भी स्पष्ट होता है कि बालकों द्वारा आवारागर्दी करने का दूसरा प्रमुख क्षेत्र गोदौलिया तथा उसके आसपास का परिक्षेत्र है। गोदौलिया परिक्षेत्र में आवारागर्दी करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या 20.5 प्रतिशत है। 9.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा गोलगड्डा, वाराणसी सिटी परिक्षेत्र में दिन का अधिकांश समय व्यतीत किया जाता है। 7.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा मैदागिन, बुलानाला तथा विशेषकर गंज क्षेत्र में अधिकांश समय तक निरुद्देश्य भ्रमण किया जाता है। इसके अतिरिक्त 12.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा संकटमोचन, मंडुवाडीह, राजघाट तथा सारनाथ

आदि क्षेत्रों में अपना अधिकांश समय व्यतीत किया जाता है। 17.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं के भ्रमण का कोई निश्चित क्षेत्र नहीं है। सारणी के अवलोकन से यह भी स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक उत्तरदाताओं द्वारा आवारागर्दी की क्रियायें मुख्य रूप से नगर के केन्द्रीय भाग में घटित की जाती हैं। अतः बाल-आवारागर्दी नगर के हृदय प्रदेश में घटित होने वाली प्रघटना है।

आवारा बालकों द्वारा भ्रमण करने की समय-सीमाः यह सत्य है कि आवारा बालक अपना अधिकांश समय निरुद्देश्य भ्रमण करने में ही व्यतीत करते हैं। परन्तु उन्हें एक निश्चित समय-सीमा के अन्तर्गत समयबद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि अनिश्चय और अनियमितता इनके स्वभाव का एक विशेष अंग होता है। ये कब किस दिशा में, किस स्थान पर, किस समय में कहाँ रहेंगे, कुछ नहीं कहा जा सकता। ये कभी चक्रीय रूप से पूरे शहर को रौंद डालते हैं तो कभी त्रिभुजाकार रूप से किसी विशेष क्षेत्र को ही भ्रमण कर अपने अड्डे पर लौट जाते हैं। कभी किसी विशेष स्थान पर ही पूरा दिन व्यतीत कर डालते हैं। अतः उनके भ्रमण करने के समय-सीमा के सन्दर्भ में यही कहा जा सकता है कि भ्रमण करने का कोई निश्चित समय नहीं होता।

बाल-आवारागर्दी का कारणत्व उपागम : बाल-आवारागर्दी का निश्चित कारण चाहे जो भी हो परन्तु यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि बाल-आवारागर्दी किसी एकल कारक का उत्पाद नहीं है, प्रत्युत यह अनेक कारकों का परिणाम है। अतः आवारागर्दी के कारणों को ज्ञात करने के लिए ''पुश'' एण्ड ''पुल'' फैक्टर्स पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। ''पुश'' एण्ड ''पुल'' फैक्टर्स के अन्तर्गत सर्वप्रथम उन आकर्षक कारकों पर प्रकाश डाला गया है जिनसे प्रभावित होकर कोई बालक आवारागर्दी की ओर उन्मेषित होता है। तत्पश्चात् उन परिस्थितियों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है जिनसे बाध्य होकर बालक आवारागर्दी करने लगते हैं।

आकर्षक कारक जिनसे प्रभावित होकर बालक आवारागर्दी की ओर उन्मेषित होते हैं : बढ़ती हुई चाहत एक समीकरण की तरह असामाजिक आधार पर सैद्धान्तिक कहानी है जो प्रायः बच्चों में देखी जा सकती है। बच्चों का वैचारिक तरीका जो कि बिना जाने और कुछ जानबूझकर ऐसे कृत्यों में संलग्न हो जाते हैं जिनका उद्देश्य या लक्ष्य सामाजिक मानदण्डों को भंग करना नहीं होता किन्तु अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति करना अवश्य होता है। सारणी संख्या 16 से ज्ञात होता है कि 43.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं के आवारागर्दी की तरफ आकर्षण का मुख्य कारण वाराणसी महानगर में घूमने की तीव्र इच्छा रही है। चूँकि नगरीय जीवन भीड़ भरी तथा चहल-पहल युक्त होती है। यहाँ नाना प्रकार के आकर्षण केन्द्र होते हैं। जिन्हें देखने की बालकों में तीव्र जिज्ञासा होती है। यह जिज्ञासा जब धीरे-धीरे आदत के रूप में परिणीत हो जाती है तब इसका प्रभाव बालक के व्यवहार व विचारों पर निःसंदेह पड़ने लगता है। यहाँ बालकों में आवारागर्दी दो कारणों से प्रस्फुटित होती है। सर्वप्रथम तो बालक में आकर्षण केन्द्र पर बार-बार जाने की इच्छा होती है। इसलिए वे अपना सम्बन्ध ऐसे बालकों से जोड़ते हैं जो उन्हीं के समान निरुद्देश्य घूमते रहते हैं। दूसरा कारण जो उत्तरदायी है, वह है अपचारिक चरित्र के लोगों के साथ साहचर्य। अपचारिक चरित्र के लोग बहुधा ऐसे बालकों की तलाश में रहते हैं जो अपने मूलस्थ स्थान से पलायित होकर निरूद्देश्य भ्रमण करते हैं। ऐसे लोग बालकों को अपने मोहपाश में बांधकर गिरोह में सम्मिलित करने अथवा अपने वैयक्तिक हित साधने का यथाशक्ति प्रयास करते हैं।

सारणी के प्रेक्षण से यह भी स्पष्ट होता है कि 33.5 प्रतिशत उत्तरदाता देशाटन की इच्छा से प्रभावित होकर आवारागर्दी की ओर अग्रसर हुए हैं। देशाटन से व्यक्तित्व का विकास होता है। विभिन्न प्रकार के रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, सभ्यता एवं संस्कृति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। किन्तु अल्प आयु में देशाटन की प्रवृत्ति से व्यक्तित्व का विकास नहीं प्रयुक्त विनाश होता है। इनके देशाटन का स्वरूप सामान्य जनों की भाँति कुछ दिनों के लिए अथवा धार्मिक, सांस्कृतिक न होकर हफ्तों, महीनों के लिए और व्याधिकीय होता है। 16.5 प्रतिशत उत्तरदाता इसलिए आवारागर्दी की ओर आकर्षित हुए क्योंकि वे स्वतंत्र जीवन व्यतीत करना चाहते थे। इस श्रेणी के उत्तरदाता परिवार से मुक्त होकर बिना रोक-टोक के विपथगमनात्मक कार्यों को सम्पादित करने के लिए आवारागर्दी की ओर आकर्षित हुए हैं। शेष 6.5 प्रतिशत उत्तरदाता धनोपार्जन के प्रलोभन में आकर आवारागर्दी की ओर अग्रसर हुए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि अल्प आयु में अर्जनशीलता की प्रवृत्ति भी आवारागर्दी के लिए प्रेरित करती है।

सारणी संख्या-16
बाल-आवारागर्दी के आकर्षक कारक

आकर्षक कारक	आवृत्ति	प्रतिशत
नगर में घूमने की इच्छा	87	43.5
देशाटन की इच्छा	67	33.5
स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने की इच्छा	33	16.5
अर्थोपार्जन की इच्छा	13	6.5
योग	200	100.00

परिस्थितियाँ जिनसे बाध्य होकर बालक आवारागर्दी से आहत होते हैं : यहाँ हमारा प्राथमिक उद्देश्य यह पर्यवेक्षित करना है कि किस प्रकार कतिपय सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक संरचनाएँ समाज के कुछ बालकों पर इस प्रकार दबाव डालती हैं कि वे समंजनकारी व्यवहार न करके आवारागर्दी करने लगते हैं। इस सन्दर्भ में सारणी संख्या 17 में अन्तर्विष्ट दत्त-सामग्री के प्रेक्षण से ज्ञात होता है कि 44.5 प्रतिशत उत्तरदाता सामाजिक-पारिवारिक परिस्थितियों के कारण आवारागर्दी के लिए बाध्य हुए हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि बाल-आवारागर्दी का प्रमुख उद्‌गम स्रोत सामाजिक- पारिवारिक परिस्थितियाँ हैं। डब्ल्यू.सी. रैकलेस का भी मानना है कि अपचारिक व्यवहार दोषपूर्ण सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम हैं।[21] यदि परिवार के सदस्यों में अपचारिक आचरण की प्रवृत्ति है, माता-पिता का सम्बन्ध कटूपूर्ण है, पिता मदात्ययी है, परिवार में बच्चों के ऊपर नियंत्रण अत्यधिक कठोर अथवा अत्यधिक मृदुल है, परिवार संरचनात्मक रूप से अपूर्ण है अथवा निवास निम्न सामाजिक परिस्थितकी से सम्बन्धित है तब बच्चें कहीं अनुकरण से तो कहीं सुझाव से, कहीं अनुनय से तो कहीं भय से, कहीं विघटित पड़ोस से तो कहीं परिवार के विषाक्तपूर्ण वातावरण से आवारागर्दी के लिए बाध्य हो जाते हैं।

सारणी में प्रयुक्त दत्त सामग्री के अवलोकन से यह भी ज्ञात होता है 32.5 प्रतिशत उत्तरदाता आर्थिक परिस्थितियों के दबाव के कारण आवारागर्दी के लिए बाध्य हुए हैं। चूँकि अधिकांश आवारा बालक निर्धन परिवारों से सम्बद्ध होते हैं। परिवार में उनकी सामान्य आवश्यकताओं की समुचित रूप से पूर्ति नहीं हो पाती है। अतएव बालक को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्वयं प्रयत्न करना पड़ता है। जब वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हैं तब उनके सामने-एक साथ कई विकल्प उपस्थित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में वे अपने परिवेश के अनुरूप विकल्पों का चयन कर लेते हैं। यदि उनका परिवेश गन्दी बस्तीय पर्यावरण, कुंठित आकांक्षाओं, दूषित समाजीकरण तथा सफलता प्राप्त करने की अभिप्रेरणाओं से युक्त होता है तब वे आवारागर्दी की ओर अग्रसर हो जाते हैं। 9.5 प्रतिशत उत्तरदाता मनोवैज्ञानिक कारणों से बाध्य होकर आवारागर्दी की ओर अग्रसर हुए हैं। इस श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले उत्तरदाताओं में यह पर्यवेक्षित किया गया कि या तो ये मन्द बुद्धि के हैं अथवा मनोविक्षिप्त हैं। इनका आचरण भी अत्यंत उग्र होता है तथा अधिकांश अकेले रहना पसंद करते हैं। 7.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं में उपर्युक्त सभी कारक मौजूद पाये गये। शेष 6 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया।

सारणी संख्या-17
बाध्यतामूलक परिस्थितियाँ

परिस्थितियाँ	आवृत्ति	प्रतिशत
सामाजिक-पारिवारिक	89	44.5
आर्थिक	65	32.5
मनोवैज्ञानिक	19	9.5
मिश्रित कारक	15	7.5
कोई प्रत्युत्तर नहीं	12	6.0
योग	200	100.00

आवारागर्दी के प्रति आवारा बालकों का दृष्टिकोण: प्रधानतः इस प्रकार की दत्त सामग्री इस प्राक्कल्पना के आधार पर संकलित की गयी है कि एक वैध जीवन तरीके के रूप में आवारा बालकों द्वारा आवारागर्दी को स्वीकार अथवा अस्वीकार करना इस सम्पूर्णता के मापन का एक आधार होगा, जिससे उन्होंने सामाजिक मानदण्डों को भग्न किया है। यह अनुभव किया गया कि इस मापन के द्वारा हम आवारा बालकों के पुनर्वास की समस्या का हल खोजने में सफल होंगे। पुनः यह तर्क दिया गया है कि वे आवारा बालक जो कि आवारागर्दी को बुरा अथवा अनुपयुक्त समझते हैं, उन आवारा बालकों की अपेक्षा जो कि आवारागर्दी को अच्छा समझते हैं, प्रयास करने पर छोड़ सकते हैं। यह भी सम्भव है कि इस सम्बन्ध में जिन तथ्यों को संकलित किया गया है, वे इस बात में सहायक सिद्ध होंगे कि कितने आवारा बालक अपने मूल परिवार में जाने के इच्छुक अथवा अनिच्छुक हैं। दत्त सामग्री के संकलन के समय यह वैसा ही पाया गया है जैसा कि

किसी व्यक्ति को इसके प्रति आशा करनी चाहिए।

सारणी संख्या- 18

आवारागर्दी के प्रति आवारा बालकों का दृष्टिकोण

दृष्टिकोण	आवृत्ति	प्रतिशत
अच्छा	83	41.5
बुरा	106	53.0
अनुपयुक्त	11	5.5
योग	200	100.00

उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 58.5 प्रतिशत उत्तरदाता आवारागर्दी को बुरा अथवा अनुपयुक्त समझते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं को अपने विपथगामी व्यवहार का अवबोध है। क्षेत्रीय कार्य के दौरान गवेषक द्वारा यह अवलोकित किया गया कि अधिकांश उत्तरदाता आवारागर्दी को अनुचित तो मानते हैं किन्तु आवारागर्दी के लिए स्वयं को जिम्मेदार नहीं मानते हैं। प्रायः उत्तरदाताओं द्वारा यह तर्क दिया जा रहा था कि आवारागर्दी के लिए उनके अस्नेही माता-पिता, दोषपूर्ण मित्र-मण्डली, तथा पारिस्थितिक पर्यावरण जिम्मेंदार हैं। इसके विपरीत 41.5 प्रतिशत उत्तरदाता आवारागर्दी को अच्छा मानते हैं। इनका तर्क था कि आवारापन से आनन्द की अनुभूति होती है। हम कहीं भी भ्रमण करने के लिए तथा किसी भी क्रिया को बेहिचक सम्पादित करने के लिए स्वतंत्र होते हैं।

यद्यपि अधिकांश आवारा बालक आवारागर्दी को बुरा अथवा अनुपयुक्त मानते हैं तथापि इनको पुनर्वासित करने के दृष्टिकोण से यह कहना गलत होगा कि उन आवारा बालकों की अपेक्षा जो आवारागर्दी को एक वैध जीवन तरीका मानते हैं से इनको सरलतापूर्वक पुनर्वासित किया जा सकता है। क्योंकि आवारा बालकों को पुनर्वासित करना उनके मानसिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त अन्य कारकों पर भी निर्भर करता है। फिर भी यह कहना उपयुक्त होगा कि जो आवारा बालक आवारागर्दी को बुरा मानते हैं उन्हें अपेक्षाकृत सरलतापूर्वक पुनर्वासित किया जा सकता है।

सारणी संख्या- 19

क्या आप आवारापन छोड़ने के लिए तैयार है?

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ, किन्तु सशर्त	74	37.0
नहीं	126	63.0
योग	200	100.00

जहाँ तक उत्तरदाताओं द्वारा आवारागर्दी छोड़ने का प्रश्न है, सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि अधिकांश उत्तरदाता अनिच्छा प्रकट करते हैं। जबकि 37.0 प्रतिशत उत्तरदाता आवारागर्दी छोड़ने के लिए तैयार तो हैं किन्तु सशर्त। इस श्रेणी के उत्तरदाता आवारागर्दी छोड़ने के लिए किसी न किसी शर्त को रखते हैं। प्रस्तुत सारणी इस तथ्य पर विस्तृत रूप से प्रकाश डालती है।

सारणी संख्या-20

आवारागर्दी छोड़ने की शर्तें तथा न छोड़ने के कारण

आवारागर्दी छोड़ने की शर्तें	आवृत्ति	प्रतिशत
सामान्य व्यक्तियों की तरह प्रतिष्ठा प्रदान की जाय	43	21.5
सभी मित्र छोड़ेंगे तब	15	7.5
सरकार द्वारा रोजगार प्रदान करने पर	7	3.5
सरकार द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की जाय	4	2.0
अन्य शर्तें	5	2.5
योग	74	37.0
आवारागर्दी नहीं छोड़ने के कारण		
स्वभाववश	65	32.5
पारिवारिक कारण	31	15.5
जीवन-यापन का सरल तरीका	17	8.5
मानसिक अस्थिरता	7	3.5
परिवार विहीन होने के कारण	6	3.0
योग	126	63.0
कुल योग	200	100.0

जब आवारा बालकों से आवारागर्दी छोड़ने की शर्तों तथा न छोड़ने की परिस्थितियों के बारे में प्रश्न किया गया तब 21.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि यदि हमें समाज में सामान्य व्यक्तियों की तरह प्रतिष्ठा प्रदान की जाय तो हम निःसन्देह आवारागर्दी छोड़ देंगे। इन उत्तरदाताओं से ज्ञात हुआ कि वे आवारागर्दी छोड़ना चाहते हैं किन्तु इनके ऊपर आवारा का लेबल लग चुका है जिससे वे चाहकर भी नहीं छोड़ पा रहे हैं। 7.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार यदि उनके मित्रगण भी आवारागर्दी छोड़ देंगे तभी वे छोड़ेंगे। 5.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार यदि उन्हें शिक्षा की समुचित व्यवस्था कर दी जाय तो वे आवारागर्दी छोड़ देंगे।

पुनः जो बालक आवारागर्दी नहीं छोड़ना चाहते हैं उनमें से 32.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं से ज्ञात हुआ कि वे स्वभाववश आवारागर्दी नहीं छोड़ना चाहते हैं। वे सदैव भ्रमणशील जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। 15.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पारिवारिक कारणों का उल्लेख किया। 8.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार जीवन-यापन के लिए कोई साधन नहीं होने के कारण आवारागर्दी नहीं छोड़ सकते जबकि 3.5 प्रतिशत मानसिक अस्थिरता और 3 प्रतिशत परिवार विहीन होने के कारण आवारागर्दी नहीं छोड़ने के लिए बाध्य हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव

निष्कर्ष

1. आयु के आधार पर उत्तरदाताओं के वर्गीकरण से ज्ञात होता है कि अधिकांश उत्तरदाता 13-16 वर्षायु के मध्य हैं जिनका गणितीय माध्य 13.89 वर्ष है।
2. लैंगिक आधार पर सर्वाधिक उत्तरदाता ''पुरुष'' बालक हैं।
3. जातीय आधार पर है बहुसंख्यक उत्तरदाता पिछड़ी तथा अनुसूचित जाति से सम्बद्ध हैं।
4. पारिवारिक संरचना के सन्दर्भ में ज्ञात होता है कि 52.5 प्रतिशत उत्तरदाता भग्न परिवार तथा 47.5 प्रतिशत सामान्य परिवार से सम्बद्ध हैं।
5. पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर बहुसंख्यक उत्तरदाता परिवार से असम्बद्ध अथवा अंशतः सम्बन्ध रखते हैं।
6. अधिकांश उत्तरदाताओं का अपने माता-पिता के साथ सम्बन्ध सामान्य नहीं प्रत्युत कटुपूर्ण है।
7. बहुसंख्यक उत्तरदाताओं के पिता की आदतें व्याधिकीय एवं विचलनकारी हैं।
8. आवारा बालकों के अधिकांश माता-पिता का सम्बन्ध द्वेषपूर्ण या तनावपूर्ण है।
9. आर्थिक वर्ग के आधार पर सर्वाधिक आवारा बालकों का परिवार निम्न आय वर्ग तथा निम्न मध्य आय वर्ग से सम्बद्ध रहा है।
10. बहुसंख्यक उत्तरदाताओं के निवास स्थान की सामान्य पारिस्थिति की व्याधिकीय एवं गन्दी बस्तियाँ हैं।
11. अधिकांश उत्तरदाताओं के मित्रमण्डली से सम्बन्ध या तो सक्रिय और घनिष्ठ है या फिर मित्रमण्डली से अंशतः सम्बन्ध है।
12. अधिकांश उत्तरदाताओं के मित्र भी आवारा हैं।
13. अधिकांश आवारा बालकों के मित्रों की अभिरुचियाँ सामान्य नहीं प्रत्युत व्याधिकीय हैं।
14. आवारा बालकों के भ्रमण का कोई क्षेत्र निश्चित नहीं होता तथापि अधिकांश उत्तरदाता वाराणसी महानगर के केन्द्रीय भाग में परिभ्रमण करते हैं। अतः बाल-आवारागर्दी नगरों के हृदय प्रदेश में घटित होने वाली प्रघटना है।
15. आवारा बालकों द्वारा भ्रमण करने के लिए कोई निश्चित समय-सीमा नहीं होती।
16. अधिकांश बालकों के आवारागर्दी की तरफ आकर्षण का मुख्य कारण नगरों की चहल-पहल है।
17. अधिकांश उत्तरदाता सामाजिक-पारिवारिक परिस्थितियों के कारण आवारागर्दी के लिए बाध्य हुए हैं।
18. अधिकांश उत्तरदाता आवारागर्दी को बुरा व अनुपयुक्त मानते हैं। अतः विपथगामी व्यवहार के अवबोध के पश्चात् भी व्याधिकीय कृत्यों में संलग्न हैं।
19. बहुसंख्यक उत्तरदाता आवारागर्दी छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं।
20. अधिकांश उत्तरदाताओं का मानना है कि वे आवारागर्दी तभी छोड़ेंगे जब उन्हें सामान्य व्यक्तियों की तरह सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान की जाय।
21. अधिकांश आवारा बालक आवारापन नहीं छोड़ने का कारण स्वयं का स्वभाव मानते हैं।

सुझाव

1. यदि हम चाहते हैं कि बाल आवारागर्दी का बीज ही अंकुरित न होने पाये तो इसके लिए आवश्यक है कि परिवार की पर्यावरणात्मक स्थिति को विषाक्तपूर्ण होने से बचाया जाय। विघटित परिवारों के लिए परिवार सेवा केन्द्रों की स्थापना की जाय।
2. बाल आवारागर्दी की घटनाएं उन क्षेत्रों में अधिक होती हैं जहाँ गन्दी बस्तियाँ हैं। अतः गन्दी बस्तियों में संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक परिवर्तन लाया जाय।
3. बालक और विद्यालय का गहरा सम्बन्ध होता है। अतएव आवश्यकता इस बात की है विद्यालय अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करें और विद्यार्थियों को नैतिक शिक्षा प्रदान करें।
4. भारत में आवारा बालक और बाल अपराधियों को एक साथ रखा जाता है। अतः राज्य सरकार द्वारा इनके लिए अलग से वैगरेन्ट चिल्ड्रेन होमस् की

स्थापना की जाय। साथ ही व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय।

5. देश के सम्पूर्ण भाग में परामर्श एवं मार्गदर्शन व्यूरों की स्थापना की जाय जिससे आवारा बालकों की संख्या का पता लगाकर इनके उपचार के साधन ढूँढ़ा जा सके।

6. आवारा बालकों के पुनर्वास के लिए केन्द्र सरकार द्वारा समन्वित योजना सम्पूर्ण राज्यों के लिए बनायी जाय तथा आवारा बालकों का पुनर्वास राज्यों के आधार पर किया जाय।

7. ऐसे माता-पिता अथवा संरक्षक जो बालक को घर से भागने अथवा आवारागर्दी करने के लिए बाध्य करते हैं, उनके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की जाय।

8. यदि हम चाहते हैं कि बच्चों में आवारापन की प्रवृत्तियों का विकास ही न हो तो यह आवश्यक है कि हम उन समस्त आवारापन की विशेषताओं से भली-भाँति परिचित हों जिनसे कि आवारागर्दी का जन्म होता है।

9. बालक आवारा न बनें, इसके लिए आवश्यक है कि माता-पिता भी सदाचार के नियमों का पालन करें।

Reference

1. Cabel Foot, *'Vagarency Type and its Administration',* University of Pennsylvanis, Law Review , Vol. 104, No.5, March 1956, p.607.
2. Wait John B., *'Reveng Costs too Much',* Harper's, Vol. 292, No. 152 May, 1946, pp.466-472.
3. Sara Harris, *'For a Sevealing Analysis of the problem of the Indequate Metropolitan Bloater Skid Raw',* USA, New York, Doubleday, 1956.
4. Federal Probation, Vol. 21, No.2, June 1957, p. 74, Quoted by Barnes and Teeters, *'New Horizons in Criminology'*, Prentice Hall of India, Pvt Ltd. New Delhi, 1966, pp. 83-84.
5. Prison Journal, *'The Petty abbender, A Philadelphia, Study of the Homeless Man',* Vol. 36, N.1.
6. Turner C.J. Ribton, *'History of Vagarants and vagarancy',* London, 1887.
7. Lewis O.F., *'Vagrancy in the United States',* New York, 1907.
8. W.H. Dawson, *'The Vagrancy Problem',* London, 1910, Quoted by The Encyclopeadia of the Social Sciences, Vol. 15, Edwin R.A. Seling Man. Trade Unions Zulingle The Macmillan Company, New York, 1935, pp. 207-208.
9. Srivastava S.S., *'Juvenile Vagrancy'*, Asia Publishing House, New Delhi, 1963.
10. Davis Kingsley, *'Human Society'*, The Macmillan and Co. New York, 1959, p. 180.
11. Stern Richard S., *'Delinquent Conduct and Broken Home, A study of 1050 Boys',* Connecticutt, 1964, p. 61.
12. Healy William, *'The Individual Delinquent'*, Boston, 1915, pp. 456-60.
13. *'Needs of Neglected and Delinquent Children',* Connecticutt Hartbord, 1946, For a summary of the Findings see Reginald Robinson, *'Beneath the surface of juvenile delinquency and child neglect'*, Survey Midmonthly, Vol. 83, No.2, Feb. 1947, pp.41-52.
14. Shaw Clifford R.and Henry D. Makay, *'Juvenile Delinquency in Urban Areas',* University of Chicago Press, Chicago, 1942, p. 141.
15. Barnes H.E. and N.K. Teeters, *'New Horizons in Criminology'*, op. cit. p. 162.
16. Burt Cyril, *'The Young Delinquent'*, University of London Press, London, 1955, pp. 68-69.
17. Healy William and Augusta F. Bronner, *'Delinquents and Criminals'*, Macmillan, New York, 1926, p. 121.
18. Young Pauline V., *'Urbanisation as Factor in Juvenile Delinquency'*, Pub. Of American Sociological Society, 1930, pp. 162-66; Quoted by George Vold, *'The Theoretical Sociology'*, Oxford University Press, New York, 1958.
19. Thrasher Frederick W., *'The Gang'*, University of Chicago, 1960, p.22.
20. Sutherland Edwin H. and Donald R. Cressey, *'Principles of Criminology'*, The Times of India Press, Bombay, 1965, pp. 179-180.
21. Reckless Walter C., *'The Etiology of Delinquency and Criminal Behaviour'*, Social Science Research Bulletin, No. 50, 1943, pp. 549-589.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 20 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2018**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

"वायु प्रदूषण की समस्या के प्रति जन संचेतना-एक अध्ययन"

❑ **डॉ0 किरन बाला**

मनुष्य के बेहतर जीवन के लिए स्वस्थ पर्यावरणीय दशाओं का होना अति आवश्यक है। प्राचीन काल से ही मानव तथा पर्यावरण का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। प्रारम्भ में मनुष्य प्रकृति के उपभोग के साथ-साथ उसका संरक्षण भी करता था किन्तु समयातीत में मनुष्य की प्रवृति मात्र उपभोग तक ही सीमित रह गयी। यही प्रवृति मनुष्य जगत को एक ऐसे संकट की ओर धकेल रही है जहाँ उसे अपना अस्तित्व बचाए रखना भी कठिन हो गया है। 'पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ है पर्यावरण में प्रदूषकों का रहना' और 'पर्यावरण प्रदूषक वे ठोस, द्रव या गैसीय पदार्थ हैं' जो पर्यावरण को हांनि पहुंचाते हैं। पर्यावरण प्रदूषण का एक प्रमुख रूप है-वायु प्रदूषण। नैसर्गिक संरचना में विभिन्न गैसें, जलवाष्प, धूल कणों के निश्चित अनुपात में जब बाह्य स्रोतों द्वारा अवांछनीय तत्व एक सीमा से अधिक बढ़ जाते हैं तो वायु अपनी संतुलित रचना को खो देती है और इसे ही प्रदूषित वायु कहते हैं। आज निरन्तर बढ़ते औद्योगीकरण, उपभोगतावाद ने वायु प्रदूषण की समस्या को गम्भीर बना दिया है। प्रस्तुत अध्ययन वायु प्रदूषण की इस गंभीर समस्या के प्रति जन संचेतना का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मनुष्य के बेहतर जीवन के लिए स्वस्थ पर्यावरणीय दशाओं का होना अति आवश्यक है। पर्यावरणीय दशाओं में सामाजिक और कुछ प्राकृतिक शक्तियाँ सम्मिलित हैं। प्राचीन काल से ही मानव तथा पर्यावरण का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। मनुष्य जगत ही नहीं बल्कि इस धरती पर जीवन की उत्पत्ति से लेकर आज तक के सभ्य समाज में उपभोग की प्रवृति ने पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव डाला है। प्रारम्भ में मनुष्य प्रकृति के उपभोग के साथ-साथ उसका संरक्षण भी करता था किन्तु समयातीत में मनुष्य की प्रवृति मात्र उपभोग तक ही सीमित रह गयी। यही प्रवृति मनुष्य जगत को एक ऐसे संकट की ओर धकेल रही है जहाँ उसे अपना अस्तित्व बचाए रखना भी कठिन हो गया है। इसी कारण आज पर्यावरण संरक्षण सर्वाधिक चर्चित विषय है। विशेष तौर से इससे जुड़ी समस्याओं पर पिछले दो दशकों में इसके सामाजिक तथा प्राकृतिक पहलुओं पर विचार विमर्श और भी गहन हुए हैं। पर्यावरण पर वैश्विक चिन्तन ने अलग-अलग राष्ट्रों को एक मंच प्रस्तुत किया है। 1972 में स्टोकहॉम में मानव विकास सम्मेलन में पर्यावरण संरक्षण का गरीबी उन्मूलन तथा प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से दुनिया में पाई जाने वाली असमानताओं और पर्यावरण प्रदूषण के सम्बन्ध को रेखांकित किया गया है।[1] पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 की धारा 2 के अनुसार 'पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ है पर्यावरण में प्रदूषकों का रहना' और 'पर्यावरण प्रदूषक वे ठोस, द्रव या गैसीय पदार्थ हैं' जो पर्यावरण को हांनि पहुंचाते हैं[2]

पर्यावरण प्रदूषण का एक प्रमुख रूप है-वायु प्रदूषण। नैसर्गिक संरचना में विभिन्न गैसें, जलवाष्प, धूल कणों के निश्चित अनुपात में जब बाह्य स्रोतों द्वारा अवांछनीय तत्व एक सीमा से अधिक बढ़ जाते हैं तो वायु अपनी संतुलित रचना को खो देती है और इसे ही प्रदूषित वायु कहते हैं। आज निरन्तर बढ़ते औद्योगीकरण, उपभोगतावाद ने वायु प्रदूषण की समस्या को गम्भीर बना दिया है। बढ़ती जनसंख्या के प्रभाव से मानव जीवन की आवश्यकता में तीव्र प्रवृति ने प्रकृति का अंधाधुंध दोहन प्रारम्भ कर दिया जिसके नित नए दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं। जून 1988 में टोरंटो में हुए सम्मेलन में ग्रीन हाउस प्रभाव तथा उससे सम्बन्धित खतरों की ओर वैज्ञानिकों ने गहरे संकेत दिए हैं। ग्रीन हाउस प्रभाव को पैदा करने वाली गैसें कार्बन-डाइ-आक्साइड, मिथेन, क्लोरो- लोरो, कार्बन, नाइट्रोजन- आक्साइड व ओजोन हैं। इस प्रकार प्रदूषण से तापमान में वृद्धि हो रही है।[3] इसके अतिरिक्त वायु प्रदूषण से मौसम पर भी प्रभाव पड़ता है। ग्लोबल वार्मिग का सर्वाधिक प्रकोप एशिया तथा अफ्रीका की आबादी पर पड़ेगा, क्योकि उनकी अर्थव्यवस्था कृषि आधारित है अर्थात् उनकी सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था तथा योजनाएं मानसून पर निर्भर हैं।[4]

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, एस0एस0डी0पी0सी0 गर्ल्स (पी0जी0) कॉलेज, रूड़की (उत्तराखण्ड)

प्राणी जगत् ही नहीं बल्कि अजीवीय तत्वों पर भी वायु प्रदूषण का प्रभाव पड़ता है। मथुरा में लगे तेल शोधक कारखानें तथा अन्य कारखानों से निकलने वाले धुएँ में मिश्रित कार्बन डाई-आक्साइड वर्षा के जल से मिलकर सल्यूरिक एसिड बनने से ताजमहल के संगमरमर का क्षरण होना देशव्यापी चर्चा का विषय बना रहा।[5] 1984 में भोपाल गैस त्रासदी वायु प्रदूषण का भयावह उदाहरण है जिसका दंश आज तक वहाँ के लोग झेल रहे हैं। वर्तमान में वायु प्रदूषण एक गम्भीर समस्या है। भारत जलाऊ लकड़ी, कृषि अपशिष्ट और बायोमास का सबसे बड़ा उपभोक्ता है।[6] वायु में प्रदूषकों की उपस्थिति अनेक गम्भीर रोगों का कारण बन जाती है। 2013 की ई.पी. आई. की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत के कई शहरों का बी0एम0 स्तर सुरक्षा स्तर से 5 गुना अधिक है।[7] सी. एस.ई. के अध्ययन के अनुसार दिल्ली व बीजिंग में वायु प्रदूषण से निपटने के लिए एक साथ काम शुरू किया गया किन्तु दिल्ली अभी काफी पीछे है।[8] डब्ल्यू0एच0ओ0 की एक रिपोर्ट के अनुसार श्वास सम्बन्धी अनुवांशिक बीमारियों से होने वाली मौतों की दर भारत में सर्वाधिक है व अस्थमा से होने वाली मौतों के मामले में भी यह आगे है। दुनिया भर में जितने लोग टी0वी0, मलेरिया व एच0आई0वी0 के संक्रमण से नहीं मरते, उनसे कहीं ज्यादा लोग प्रदूषण से मरते हैं और इसकी सबसे बड़ी मार विकासशील और गरीब देशों पर पड़ती है। विश्व में 88 लाख मौतों का कारण प्रदूषण है और भारत में 40 करोड़ से ज्यादा लोग वायु प्रदूषण जनित रोगों का शिकार हैं।[9] वैश्विक स्तर पर आज पर्यावरण प्रदूषण की स्थिति अत्यधिक भयावह है। भारत के लिए यह स्थिति और भी चिन्ताजनक है क्योंकि दुनिया के 20 सबसे खराब जलवायु वाले शहरों में 10 शहर भारत के हैं। देश की हवा इतनी जहरीली हो गयी है कि हमारी औसत आयु 3 वर्ष तक घट रही है।[10] यद्यपि भारत में प्रति व्यक्ति ग्रीन हाऊस गैस उत्सर्जन कम है किन्तु ग्रीन हाऊस उर्त्सजन में भारत यूएस तथा चीन के बाद तीसरा सर्वाधिक उर्त्सजक देश है।[11]

भारत में वायु प्रदूषण को नियन्त्रित करने हेतु 1981 में वायु प्रदूषण निवारण तथा नियन्त्रण अधिनियम पारित किया गया। किन्तु इसके क्रियान्वयन में कई तरह की व्यवहारिक समस्याएँ दृष्टिगत हो रही हैं। 2016 में i;kZoj.k izn'kZu lwpdkad (Environmental performance Index) में 180 देशों में से भारत 141 स्थान पर है।[12] प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड द्वारा आर0टी0एम0एस0 (रियल टाइम मोनेटरिंग सिस्टम) लगने के कारण केन्द्र तथा राज्य सरकारें इस पर निगरानी रख सकेंगी। पर्यावरण मंत्रालय ने 24 घण्टे निगरानी कर लाइव डेटा के माध्यम से अब देश के ऐसे औद्योगिक सेक्टरों की पहचान की है जो अधिक प्रदूषण फैलाते हैं। यह वायु प्रदूषण को कम करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है। इस दिशा में ठोस रणनीति की आवश्यकता है। सौर ऊर्जा की लागत परम्परागत (कोयला, ईधन) से थोड़ी ज्यादा भी हो तो भी दीर्घकालिक दृष्टि से सस्ती पड़ेगी। दूर दराज के क्षेत्र में सौर ऊर्जा सस्ता विकल्प है। वितरण के खर्चे बच जाते हैं, पर्यावरण पर भी कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता। सौर ऊर्जा, पवन अन्य गैर परम्परागत ऊर्जा स्त्रोत को प्राथमिकता देकर भविष्य की आवश्यकताओं को पूर्ण किया जाए।[13] कार पुलिंग, नए वाहनों की सीमित खरीद, प्रदूषण फैलाने वाली कम्पनियों पर लगाम लगाने, ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोत जैसे कार्य बेहतर विकल्प हो सकते हैं। किन्तु इस दिशा में इतना ही पर्याप्त नहीं है और भी गम्भीर विचार, प्रयास तथा कार्यनीति की आवश्यकता है क्योंकि समस्या कम होती दिखाई नहीं दे रही है। किसी भी समस्या को दूर करने के लिए जन सामान्य की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। यह तभी सम्भव है जब लोग वायु प्रदूषण की समस्या के प्रति जागरूक हों। इस प्रयास का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू जनजागरूकता भी है जो इस समस्या को कम करने में सहायक सिद्ध होगी।

सम्बन्धित साहित्य का अवलोकन : इवान्स तथा स्टीफन वी° जैकेब[14] ने अपने शोध पत्र में बताया कि वायु प्रदूषण तथा मानव व्यवहार के सम्बन्धों के परीक्षण पर अत्यधिक कम शोध हुए हैं। इस शोध पत्र का उद्देश्य वायु प्रदूषण और मानव व्यवहार पर उपलब्ध वर्तमान साहित्य का अवलोकन करना है जिससे भावी शोध हेतु अवधारणात्मक प्रारूप तैयार किया जा सके। प्रस्तुत शोध पत्र में वायु प्रदूषण के स्वास्थ्य, संज्ञानात्मक, मार्मिक घटकों तथा मानव उत्तरदायित्व पर चर्चा की गई।

पीटर अहलविक तथा ब्रांडवर्ग[15] ने भारत में किए गए एक अध्ययन में स्पष्ट किया कि पेट्रोल, डीजल से चालित सवारी गाडियों में कैंसर रिस्क इन्डेक्स सी. एन. जी. की तुलना में अधिक है।

जियोंगलिया, होंगतूजे तथा अन्य[16] ने अपने शोध पत्र में वायु प्रदूषण के मुख्य स्त्रोतों के विषय में लोगों की समझ

का आकलन करने के लिए एक सर्वेक्षण किया जिसमें अस्पताल कर्मियों तथा स्कूलों के बच्चों के माता पिता ने भाग लिया। 69 प्रतिशत सूचनादाताओं ने कहा कि वर्तमान में वायु की गुणवत्ता तीन साल पहले से अत्यधिक खराब है। उच्च शिक्षित अभिभावक जो 40 वर्ष से कम आयु के थे तथा जो अन्तर्राष्ट्रीय यात्राएं कर चुके हैं, उनमें वायु प्रदूषण के बारे में उच्च स्तर की जागरूकता थी। महिलाओं की तुलना में पुरूषों को वायु प्रदूषण का कम ज्ञान था।

यूनिवर्सिटी आफ शिकागो, हावर्ड और येल के वैज्ञानिकों[17] द्वारा किए गए एक शोध में कहा गया कि भारत की आधे से अधिक (करीब 66 करोड़) जनसंख्या ऐसी जगहों पर रहने को विवश है, जहाँ वायुप्रदूषण देश के मानक स्तर से काफी अधिक है। शोधकर्ताओं का कहना है कि भारत यदि प्रदूषण पर लगाम लगाने में कामयाब रहा तो यहाँ के लोगों की जिन्दगी में 3.2 साल की वृद्धि हो सकती है यानि 2.1 अरब जीवन वर्ष बचाया जा सकेगा। रिपोर्ट में कहा गया कि दुनिया में साँस सम्बन्धी बीमारियों से सबसे ज्यादा मौतें भारत में होती हैं। इस स्थिति से बचने को निगरानी, नई तकनीक का फायदा उठाना और प्रदूषण निगरानी आवश्यक है।

अमेरिका के एक शोध[18] के अनुसार जलवायु परिवर्तन में लगातार आ रहे परिवर्तनों से धरती द्वारा सूरज की रोशनी को अंतरिक्ष में परावर्तित करने और उनकी सोखने की प्रक्रिया (अल्बीडो) पर काफी बुरा असर पड़ रहा है।

वैज्ञानिकों[19] ने ताइवान के दूसरे सबसे बड़े शहर काबाशीयूँग में 1997 से 2000 के बीच भर्ती हुए 23 हजार रोगियों पर किये गये अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि प्रदूषण के स्तर में वृद्धि वाले दिन सबसे ज्यादा रोगी अस्पताल में भर्ती हुए हैं, इनमें से कुछ के दिमाग की नसें फट गई थीं।

यूनाइटेड नेशन के अध्ययन[20] में कहा गया है कि भारत में इनडोर तथा आउटडोर प्रदूषण की स्थिति बहुत खराब है। जलाऊ लकड़ी, बायोगैस स्टोव को अधिक कुशल बनाया जा सकता है, जिसके लिए हमे बायोगैस प्लान्ट के लिए अधिक निवेश तथा अत्याधुनिक तकनीकी का प्रयोग करना होगा।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के एक अध्ययन[21] के अनुसार पर्यावरण प्रदूषण से भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिम में वायुमण्डल में 3 किमी. मोटी भूरे बादलों की एक परत जम गई है, उसे ही एशियन ब्राउन हेज का नाम दिया गया। इस प्रदूषित परत के दुष्प्रभावों से श्वास के रोगों से प्रतिवर्ष लाखों लोगों की असमय मृत्यु हो सकती है। प्रदूषित परत के कारण बरसात नहीं होती या एकाएक भारी बारिश, तेजाब वर्षा होती है जिनसे वनस्पति, फसलें, नदियाँ, झील इत्यादि प्रदूषित होते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने[22] 90 देशों के एक हजार शहरों के अध्ययन में बताया है कि वायु प्रदूषण के कारण भारत एवं चीन के शहरों में फेफड़ों के कैंसर के रोग बढ़े हैं। वायु प्रदूषण के कारण ही देश के नागरिकों की श्वसन क्षमता में यूरोपीय देशों की तुलना में 25 से 30 प्रतिशत की कमी देखी गई है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार[23] बच्चे घरों में पैसिव स्मोकिंग के सबसे ज्यादा शिकार होते हैं। बच्चों की रक्त नलिकाओं की दीवारें मोटी होने लगती हैं उन्हें दिल सम्बंधी बीमारी, मंदबुद्धि, विकलांगता इत्यादि हो सकते हैं।

डब्ल्यू. जेम्स. गाडरमेन तथा अन्य, 2004[24] के एक अध्ययन वायु प्रदूषण का 10 से 18 वर्ष के बच्चों के फेफड़ों के विकास पर प्रभाव'' के अनुसार स्वस्थ वातावरण में रहने वाले बच्चों के फेफड़ों का विकास सही समय पर होता है जबकि प्रदूषित वातावरण में रहने वाले बच्चों के फेफड़ों का विकास वायु प्रदूषण से प्रभावित होता है।

सुनीता नारायण एवं अनिल अग्रवाल[25] ने 'द यूनाइटेड नेशन्स फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेन्ज' में सुझाव दिये कि विकसित एवं विकासशील देशों को मिलाकर ग्लोबल वार्मिंग की समस्या को संयुक्त कार्यान्वयन प्रणाली के अन्तर्गत हल करने का प्रयत्न करना चाहिए।

मनीषा श्रीवास्तव[26] ने पर्यावरण असन्तुलन के लिए जनसंख्या वृद्धि को मुख्य समस्या के रूप में चिन्हित किया। जनसंख्या वृद्धि से सामाजिक आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक समस्याएँ भी उत्पन्न हो रही हैं तथा इन्होनें इस समस्या को दूर करने के लिए शिक्षित युवा वर्ग के सहयोग को अति आवश्यक बताया।

लता जोशी[27] ने पर्यावरण की बिगड़ती दशा को नियंत्रित करने के लिए सुनियोजित विकास की आवश्यकता पर बल दिया। यह भी स्पष्ट किया कि पर्यावरण प्रदूषण सम्बन्धी कार्यप्रणाली में प्रशासन के निर्णय होने से पर्यावरणीय स्थिति में सुधार सम्भव है।

जी. सी. पाण्डेय एवं संदीप कुमार[28] ने अपनी पुस्तक ''पर्यावरण चेतना एवं सामाजिक दायित्व'' में इसके

रचनात्मक आयामों का विश्लेषण किया, जिसमें जैव विविधता संरक्षण, जलवायु परिवर्तन, औषधीय वृक्षों को प्रोत्साहन, तम्बाकू सेवन का स्वास्थ्य पर प्रभाव, संस्कृति एवं प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाने पर बल दिया है। **उपर्युक्त** सम्बन्धित साहित्य के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि विषय से सम्बन्धित अनेकानेक अध्ययन हुए हैं, किन्तु इस विषय पर अध्ययन नहीं किया गया है। अतः इस दृष्टिकोण से अध्ययन विषय ''वायु प्रदूषण की समस्या के प्रति जन संचेतना-एक अध्ययन'' स्वभाविक रूप से नवीन, मौलिक व प्रासांगिक प्रतीत होता है।

शोध के उद्देश्य

1- वायु प्रदूषण के विषय में सूचनादाताओं के ज्ञान जागरूकता का अध्ययन करना।
2- वायु प्रदूषण के कारण के विषय में संचेतना का अध्ययन करना
3- वायु प्रदूषण के प्रभावों के प्रति जागरूकता का विश्लेषण करना।

शोध पद्धति : प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक शोध प्ररचना पर आधारित है। अध्ययन हरिद्वार जनपद के रूड़की शहर के सूचनादाताओं पर आधारित है। अध्ययन क्षेत्र रूड़की शहर की कुल जनसंख्या 116809 है। शहर के कुल वार्डो में से एक वार्ड का चयन दैव निदर्शन की कार्ड प्रणाली द्वारा किया गया, जिसमें से 100 सूचनादाताओं का चयन लॉटरी प्रणाली द्वारा किया गया जिसमें से 50 महिलायें तथा 50 पुरूष सूचनादाता हैं। तथ्यों के संकलन हेतु प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों में से साक्षात्कार अनुसूची, प्रत्यक्ष अवलोकन, सन्दर्भित साहित्य का प्रयोग किया गया तथा प्राप्त तथ्यों के आधार पर विश्लेषण किया गया है

विश्लेषण :

वायु प्रदूषण का मुख्य स्रोत एवं हानिकारक गैसों के विषय में जानकारी : उद्योगों से निकलने वाला धुँआ, मोटर वाहन, उपकरणों से उत्सर्जित क्लोरो फ्लोरो कार्बन इत्यादि वायु प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं। वायुमण्ड़ल में हानिकारक गैसों की मात्रा में वृद्धि होने से वायु में गैसों का सन्तुलन बिगड़ जाता है जिससे वायु प्रदूषण की स्थिति उत्पन्न होती है। ये हानिकारक गैसें कार्बन डाई-आक्साइड, कार्बन मोनो-आक्साइड, सल्फर डाई-आक्साइड, अमोनिया, क्लोरीन, मीथेन इत्यादि हैं।

सारिणी संख्या-01

वायु प्रदूषण का मुख्य स्रोत एवं हानिकारक गैसों के विषय में जानकारी

मुख्य स्रोत	प्रतिशत	जानकारी	प्रतिशत
मोटर वाहन	08	हाँ	49
कल कारखानें	08	नहीं	19
कूड़ा जलाना	03	आंशिक	32
उपरोक्त सभी	44		
अन्य कारण	37		
योग	100		100

उपर्युक्त सारणी संख्या 1 से स्पष्ट होता है कि 8 प्रतिशत सूचनदाता मोटन वाहन को वायु प्रदूषण का मुख्य स्रोत मानते हैं। 8 प्रतिशत कल कारखानों को, 3 प्रतिशत कूड़ा-करकट जलाने को, 44 प्रतिशत सूचनादाता उपर्युक्त सभी को वायु प्रदूषण का कारण मानते हैं। 37 प्रतिशत सूचनादाता मनुष्य द्वारा अतिरिक्त सुविधाओं के लिए ए. सी., फ्रिज इत्यादि से उत्सर्जित क्लोरो फ्लोरो कार्बन, स्मोकिंग, जंगलों की आग, पराली इत्यादि को वायु प्रदूषण का प्रमुख स्रोत मानते हैं। 49 प्रतिशत सूचनादाताओं को इन हानिकारक गैसों के विषय में जानकारी है तथा 19 प्रतिशत सूचनादाताओं को जानकारी नहीं है जबकि 32 प्रतिशत सूचनादाताओं को हानिकारक गैसों में से कार्बन डाई-आक्साइड की ही जानकारी है।

वायुप्रदूषण में वृद्धि एवं विकास हेतु स्वीकार्यता

निरन्तर बढ़ रही जनसंख्या, औद्योगीकरण, अत्यधिक ईंधन का उपयोग इत्यादि अनेक कारणों से वायु प्रदूषण में दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। आज मानव जितनी तीव्रता से विकास की ओर बढ़ा है विनाश भी उतनी ही तीव्र गति से बढ़ रहा है

सारिणी संख्या-02

वायुप्रदूषण में वृद्धि एवं विकास हेतु स्वीकार्यता

वायु प्रदूषण में वृद्धि	प्रतिशत	स्वीकार्यता	प्रतिशत
हॉं	93	हॉं	21
नहीं	01	नहीं	79
पता नहीं	06		
योग	100		100

सारणी संख्या 2 का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि 93 प्रतिशत सूचनादाता इससे सहमत हैं कि वायु प्रदूषण में निरन्तर वृद्धि हो रही है। 1 प्रतिशत असहमत

हैं, 6 प्रतिशत सूचनादाताओं को निश्चित जानकारी नही है। 'विकास के लिए विनाश आवश्यक' के विषय में 21 प्रतिशत सूचनादाताओं का मत है कि विकास चाहिए तो प्रदूषण झेलना होगा जबकि 79 प्रतिशत सूचनादाताओं का मानना है कि स्वच्छ वायु ही न मिले ऐसे विकास से कोई लाभ नही।

वायु प्रदूषण की समस्या एवं स्वच्छ वायु की महत्ता – भारत में वायु प्रदूषण मृत्यु के मुख्य कारणों में से एक है। भारत में प्रतिवर्ष 5 लाख के करीब मौतें वायु प्रदूषण से होती हैं।[29] वायु प्रदूषण एक गम्भीर समस्या है जिसका सर्वाधिक दुष्प्रभाव मनुष्य के स्वास्थ्य पर पड़ता है।

सारिणी संख्या-03

वायु प्रदूषण की समस्या एवं स्वच्छ वायु की महत्ता

गंभीर समस्या	महत्ता		प्रतिशत
हाँ	87	हाँ	100
नहीं	13	नहीं	
योग	100		100

सारणी संख्या 03 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 87 प्रतिशत सूचनादाता वायु प्रदूषण को गम्भीर समस्या के रूप में देखते हैं जबकि 13 प्रतिशत इसे गम्भीर समस्या नही मानते। शत-प्रतिशत सूचनादाता स्वच्छ वायु की महत्ता को समझते हुए मानते हैं कि वायु व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है।

वायु प्रदूषण से उत्पन्न बीमारी एवं प्रकार : दुनिया भर में हर वर्ष 84 लाख बच्चों की मृत्यु प्रदूषण से होती है। भारत में 46 करोड़ से ज्यादा लोग वायु प्रदूषण से उत्पन्न बीमारियों के कारण हृदय रोग, फेफडों का केंसर, सांस की बीमारी, निमोनिया आदि रोगों के शिकार हैं।[30]

सारिणी संख्या-04

वायु प्रदूषण से उत्पन्न बीमारियों की जानकारी

जानकारी	प्रतिशत	उत्पन्न बीमारियाँ	प्रतिशत
हाँ	81	कैंसर	08
नहीं	19	दमा	11
		फेफड़े सांस सम्बन्धी	21
		उपरोक्त सभी	38
		नामों की जानकारी नही	22
		योग	100

उपर्युक्त सारणी 4 के विवेचन से स्पष्ट है कि 81 प्रतिशत सूचनादाताओं को यह जानकारी है कि वायु प्रदूषण से बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं जबकि 19 प्रतिशत ऐसे सूचनादाता हैं जिन्हें यह जानकारी ही नही है कि वायु प्रदूषण से बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं।

11 प्रतिशत सूचनादाताओं के अनुसार वायु प्रदूषण से दमा की बीमारी उत्पन्न होती है। 8 प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि वायु प्रदूषण के कारण फेफड़े के कैंसर की सम्भावना बढ़ जाती है, जबकि 21 प्रतिशत सांस की बीमारी को वायु प्रदूषण का कारण मानते हैं। 38 प्रतिशत उपर्युक्त सभी बीमारियों को वायु प्रदूषण का कारण मानते हैं 22 प्रतिशत सूचनादाताओं को इस विषय में जानकारी नहीं है कि दमा, कैंसर, सांस सम्बन्धी बीमारियाँ वायु प्रदूषण का परिणाम होती हैं।

वायु प्रदूषण निषेध हेतु संवैधानिक प्रावधान :- देश में प्रदूषित वायु को नियंत्रित करने के उद्देश्य से वायु प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 1981 में लागू हुआ जिसके अन्तर्गत प्रदूषणकर्ता के विरूद्ध कानूनी कार्यवाही का प्रावधान है जिसमें प्रदूषणकर्ता पर एक लाख रूपये दण्ड या पाँच वर्ष की कैद या दोनों तथा सजा के बाद भी यदि प्रदूषण जारी रखता है जो पाँच हजार रूपये प्रतिदिन के हिसाब से आर्थिक दण्ड की व्यवस्था है।

सारिणी संख्या-05

वायु प्रदूषण निषेध हेतु संवैधानिक प्रावधान

अधिनियम	प्रतिशत	प्रावधान	प्रतिशत
हाँ	76	हाँ	86
नहीं	24	नहीं	14
योग	100		100

सारणी सं. 5 से ज्ञात होता है कि 76 प्रतिशत सूचनादाताओं को यह जानकारी है कि वायु प्रदूषण निवारण हेतु अधिनियम बना है 24 प्रतिशत को अधिनियम की जानकारी नही है। जिन्हें अधिनियम की जानकारी है उनमें से 86 प्रतिशत को इस अधिनियम के अन्तर्गत दण्ड दिये जाने के प्रावधानों की भी जानकारी है। 14 प्रतिशत सूचनादाताओं ने मात्र इस अधिनियम का नाम सुना है, प्रावधानों की जानकारी नही है।

औद्योगीकरण एवं बढ़ती जनसंख्या वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण : विकास की गति के साथ-साथ औद्योगीकरण, नगरीकरण, जनसंख्या वृद्धि, उपभोगवादी संस्कृति आदि वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं। अतः इस सन्दर्भ में सूचनादाताओं के विचारों को जानने का प्रयास किया गया।

सारिणी संख्या-06
औद्योगीकरण एवं बढ़ती जनसंख्या वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण

औद्योगीकरण	प्रतिशत	बढ़ती जनसंख्या	प्रतिशत
हाँ	88	हाँ	98
नहीं	12	नहीं	02
योग	100		100

इस सम्बन्ध में प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण तथा सारणी संख्या 06 से स्पष्ट होता है कि 88 प्रतिशत सूचनादाता औद्योगीकरण को वायु प्रदूषण का मुख्य कारण मानते हैं। जबकि 12 प्रतिशत सूचनादाताओं के अनुसार औद्योगीकरण वायु प्रदूषण का मुख्य स्रोत नहीं है। 98 प्रतिशत सूचनादाता बढ़ती जनसंख्या को वायु प्रदूषण का कारण मानते हैं तथा 2 प्रतिशत सूचनादाता बढ़ती जनसंख्या को वायु प्रदूषण का कारण नहीं मानते हैं।

वायु प्रदूषण के अन्य प्रमुख कारण : मनुष्य द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का दोहन भोगवादी प्रवृति का द्योतक है जिससे प्रकृति के प्रति आत्मीय भाव समाप्त हो रहा है। भारत के बड़े शहरों में जहाँ सामान्य दिनों में ही वायु प्रदूषण का स्तर उच्च रहता है,वहाँ पर त्यौहारों, उत्सवों के अवसर पर आतिशबाजी के कारण प्रदूषण अधिकतम स्तर को पार कर जाता है।

सारिणी संख्या-07
वायु प्रदूषण के अन्य प्रमुख कारण

उपभोक्तावादी संस्कृति	प्रतिशत	आतिशबाजी	प्रतिशत
हाँ	96	हाँ	88
नहीं	04	नहीं	12
योग	100		100

सारणी संख्या 07 से स्पष्ट होता है कि 96 प्रतिशत सूचनादाताओं के अनुसार उपभोक्तावादी संस्कृति ही वायु प्रदूषण का प्रमुख कारण है तथा 4 प्रतिशत सूचनादाता उपभोक्तावादी संस्कृति को वायु प्रदूषण का कारण नहीं मानते हैं।88 प्रतिशत सूचनादाता आतिशबाजी को वायु प्रदूषण का कारण मानते हैं 12 प्रतिशत सूचनादाता इसे वायु प्रदूषण का कारण नहीं मानते हैं

आबादी के आसपास के क्षेत्रों में उद्योग/ फैक्ट्रियों का स्वास्थ्य तथा बच्चों वृद्धजनों पर प्रभाव : शहरों में आबादी के आसपास के क्षेत्रों में फैक्ट्रियाँ होने पर लोग जहरीले धुएँ के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आते हैं जिसके कारण नागरिकों को श्वांस सम्बन्धी कई समस्याओं का सामना करना पड़ा है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती है, वृद्धावस्था में आते-आते रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। अध्ययनों से यह बात सिद्ध हुई है कि वायु प्रदूषण का सर्वाधिक प्रभाव बच्चों तथा वृद्धजनों पर पड़ता है।[31]अतः फैक्ट्रियों के आसपास रहने वाले सूचनादाताओं से इस सम्बन्ध में जानकारी एकत्र की गई जिससे निम्नवत् तथ्य स्पष्ट हुए।

सारिणी संख्या-08
आबादी के पास के क्षेत्रों में उद्योग/ फैक्ट्रियों का स्वास्थ्य तथा बच्चों वृद्धजनों पर प्रभाव

स्वस्थ पर प्रभाव	प्रतिशत	बच्चों तथा वृद्धजनों पर प्रभाव	प्रतिशत
हाँ	98	हाँ	76
नहीं	02	नहीं	24
योग	100		100

सारणी संख्या 8 से स्पष्ट है कि 98 प्रतिशत सूचनादाता कहते हैं कि आबादी के आसपास के क्षेत्र में फैक्ट्रियाँ लगने से उनके स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ा है, उन्हें श्वांस सम्बन्धी कई बीमारियाँ हुई हैं, वहीं 2 प्रतिशत सूचनादाता इससे सहमत नहीं हैं। 76 प्रतिशत सूचनादाताओं को यह जानकारी है कि वायु प्रदूषण का सबसे अधिक प्रभाव बाल्यावस्था तथा वृद्धावस्था में पड़ता है तथा 24 प्रतिशत सूचनादाताओं को वायु प्रदूषण के विभिन्न आयु वर्ग पर प्रभाव के विषय में जानकारी नहीं है

अम्लीय वर्षा तथा एशियन ब्राउन हेज के विषय में जानकारी : वायुमण्डल में विषैली गैसें जलवाष्प के साथ मिलकर विषैले अम्ल का रूप ले लेती हैं जो वर्षा के साथ मिलकर फसलों को नुकसान पहुँचाती हैं। दूसरी ओर भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिम में वायुमण्डल में 3 कि0मी0 की भूरे बादलों की एक परत जम गयी है जिसे एशियन ब्राउन हेज कहा जाता है।[32] इसके कई दुष्परिणाम हो सकते हैं।

सारिणी संख्या-09
अम्लीय वर्षा तथा एशियन ब्राउन हेज के विषय में जानकारी

अम्लीय वर्षा	प्रतिशत	एशियन ब्राउन हेज	प्रतिशत
हाँ	54	हाँ	08
नहीं	46	नहीं	92
योग	100		100

इस विषय में प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण तथा सारणी संख्या 09 से ज्ञात होता है कि 54 प्रतिशत सूचनादाताओं को अम्लीय वर्षा के विषय में जानकारी है जबकि 46 प्रतिशत सूचनादाताओं को इस विषय में जानकारी नहीं है। 08 प्रतिशत सूचनादाताओं को एशियन ब्राउन हेज के विषय में जानकारी है तथा 92 प्रतिशत सूचनादाताओं को इस विषय में जानकारी नहीं है।

निष्कर्ष : प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत अधिकतर सूचनादाता शिक्षित हैं। अधिकतम 44 प्रतिशत सूचनादाताओं को वायु प्रदूषण के मुख्य स्रोतों की जानकारी है। 49 प्रतिशत सूचनादाताओं को हानिकारक गैसों के विषय में जानकारी है। 93 प्रतिशत सूचनादाताओं के अनुसार वर्तमान में वायु प्रदूषण में वृद्धि हो रही है। अधिकतम 79 प्रतिशत सूचनादाता इस तथ्य से सहमत नही हैं विकास के लिए विनाश जरूरी है। विकास के लिए हमें हवा में घुल रहे जहर को झेलना ही पड़ेगा। अधिकतम 87 प्रतिशत सूचनादाता वायु प्रदूषण को गम्भीर समस्या मानते हैं तथा शत-प्रतिशत सूचनादाताओं को स्वच्छ वायु के महत्व का ज्ञान है। अधिकतम 81 प्रतिशत सूचनादाताओं को यह जानकारी है कि वायु प्रदूषण से बीमारियाँ उत्पन्न हो रही हैं जिसमें से 38 प्रतिशत सूचनादाताओं को यह जानकारी है कि वायु प्रदूषण से दमा, कैंसर, सांस सम्बन्धी बीमारियों की समस्या उत्पन्न होती है। 86 प्रतिशत सूचनादाताओं को यह जानकारी है कि वायु प्रदूषण को रोकने के लिए अधिनियम बना है जिसमें से 76 प्रतिशत सूचनादाताओं को इसके अन्तर्गत के दण्ड विधानों की भी जानकारी है। अधिकांश 88 प्रतिशत सूचनादाताओं को यह जानकारी है कि औद्योगीकरण वायु प्रदूषण का प्रमुख कारण है

बढ़ती जनसंख्या तथा 96 प्रतिशत सूचनादाता उपभोक्तावादी संस्कृति को वायु प्रदूषण का कारण मानते हैं। अधिकतम 88 प्रतिशत सूचनादाता आतिशबाजी को भी प्रदूषण का कारण मानते हैं। 98 प्रतिशत सूचनादाता इससे सहमत हैं कि आबादी के आस-पास फैक्ट्रियाँ लगने से लोगों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अधिकतर (76 प्रतिशत) सूचनादाता बच्चों तथा वृद्धजनों के स्वास्थ्य पर वायु प्रदूषण के प्रतिकूल प्रभाव के प्रति जागरूक हैं। अधिकतर (54 प्रतिशत) सूचनादाताओं के अम्लीय वर्षा की जानकारी है तथा 92 प्रतिशत सूचनादाताओं को एशियन ब्राउन हेज की जानकारी नहीं है।

शिक्षा तथा जागरूकता में सकारात्मक सम्बन्ध है। इसलिए वे अम्लीय वर्षा परिघटनाओं के विषय में जागरूक हैं, एशियन ब्राउन हेज की अधिकाश लोगों को जानकारी नहीं है क्योंकि उच्च शिक्षित सूचनादाताओं का प्रतिशत कम है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सूचनादाता वायु प्रदूषण के कारण तथा प्रभाव के विषय में जागरूक हैं किन्तु जागरूकता का स्तर मध्यम ही है क्योंकि वायु प्रदूषण के कारण तथा प्रभाव सम्बन्धी गहरी समझ, तकनीकी शब्दों की पूर्ण व स्पष्ट जानकारी का अभाव है। अतः अधिकतम सूचनादाता ऊपरी एवं मध्यम स्तर पर ही वायु प्रदूषण की समस्या के प्रति जागरूक हैं।

सन्दर्भ

1. शर्मा, शंकर दयाल, *'मानवता की हमारी विरासत'*, पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1997, पृ. 117
2. चातक, गोविन्द, *'पर्यावरण और संस्कृति का संकट नई सदियों की चुनौतियाँ'*, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 84
3. कुमार मनोज, *'पर्यावरणः संरक्षण'*, कुनाल प्रकाशन, दिल्ली, 2006, पृ. 158
4. पाण्डेय, जी. सी. एवं संदीप कुमार, *'पर्यावरण चेतना एवं सामाजिक दायित्व'* भारती पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स फैजाबाद, 2013 पृ.29
5. कुमार मनोज, पूर्वोक्त, पृ. 158
6. PandeyDevendra, *'Felwood studies in India: Myth And Reality'*, Center for International Forestry Research, 2002
7. ई.पी.आई. (एनवायरमेन्टल परफार्मेन्स इन्डेक्स रिपोर्ट) 2013-14, अमर उजाला देहरादून, 20 फरवरी 2014, पृ. 12
8. वही पृ. 12
9. GlobalAlliance of HealthAnd Pollution, WHO
10. मिश्र हेमेन्द्र, *'हवा में बढ़ता जहर और घटती हमारी उम्र'*, अमर उजाला, देहरादून, 14 मार्च 2015, पृ. 12
11. Co2 Emission from Fuel, Combustion Highlights International Energy,Agency, France, Edition 2011
12. Data:India-Environmental Performance Index-development, Yale University, 2016, Retrived 8April 2016
13. महाराज अश्विनी, *'कोयला नहीं, सौर ऊर्जा है भविष्य'*, लेख,

अमर उजाला, देहरादून, 18 दिसम्बर, 2014, पृ.12
14. Gary W. Evans, Stephen V. Jacobs, *'Air PollutionAnd human Behavior'*, Environment International Winter, 1981, pp. 95-125
15. Brandberg Ahlvik Pand, *'Cancer Risk Index for Passenger cars in India'*, Ecotraffic R&DAB, Stockholm Sweden, 1999 p. 44
16. Xionglia, HongTu, Jay et all *'Residents Perception ofAir Quality Pollution Sources And Air Pollution Control in Nanchang, China'*, Atmosphere Pollution Research vol-6, issue 5, sept. 2015 pp. 835-841
17. 'दूषित हवा से घटे तीन साल', अमर उजाला,देहरादून, 22 फरवरी, 2015 पृ.14
18. वही पृ. 14
19. आयशा, *'महाविद्यालय की छात्राओं में पर्यावरण प्रदूषण के प्रति जागरूकता एवं सहभागिता का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'*, हे0न0ब0ग0 विश्वविद्यालय में प्रस्तुत लघुशोध प्रबंध, 2013-14, पृ. 11
20. Oleg Dzioubineski And Ralph Chipman, *'Trends in Consumpion And Production'*, Household Energy Consumption, The United Nations,1999
21. आयशा, पूर्वोक्त, पृ. 13
22. पाण्डेय जी.सी. एवं संदीप कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 2
23. https//ww.onlymyhealth.com/health-Slideshow/seven-surprising-sources-of-indoor-air-Pollution-in-hindi-1429511398.html
24. htpp// www.ncbi.nim.nih.gov/pubmed/7601236
25. Narayan, Sunita And Aggrawal Anil, *'Wither Joint Implementation?'* Joint Implimentation Needs to Consider Need of Developing Countries, Oct. 1997
26. Jhokro euh"k] *'पर्यावरण एवं जनसंख्या नीति'*, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, कामर्शियल, कॉम्पलैक्स, नई दिल्ली, 2002
27. जोशी लता, *'पर्यावरण व राजनीति'*, अनामिका पब्लिकेशन एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 1992
28. पाण्डेय, जी. सी. एवं संदीप कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 29
29. अमर उजाला, देहरादून, 2 फरवरी 2015, पृ. 12
30. अमर उजाला, देहरादून, 2 फरवरी 2015, पृ. 12
31. Ghosh Deboshree, Pratap Parida, *'Air Pollution And India:Current Ceenerio'*, International Journal of Curent Research,vol.7,issue11,nov.2015,p.p.22194-22196
32. आयशा, पूर्वोक्त, पृ. 13

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 20 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2018
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

गण्डक समादेश क्षेत्र, उत्तर प्रदेश में सिंचाई गहनता प्रतिरूप

❑ अनिल भास्कर

कृषिगत उत्पादकता में अभिवृद्धि, जो ग्रामीण विकास का मर्म है, के लिए सिंचाई जीवन रेखा सदृश है। आधुनिक कृषि के सन्दर्भ में कृषित क्षेत्र का शुद्ध सिंचित भाग अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। शुद्ध सिंचित का वह भाग, जिस पर वर्ष में एक से अधिक बार सिंचाई होती है, एक बार से अधिक सिंचित क्षेत्र कहा जाता है। शुद्ध सिंचित और एक से अधिक बार सिंचित क्षेत्र के योग को सकल सिंचित क्षेत्र कहा जाता है। शुद्ध सिंचित क्षेत्र के सापेक्ष सकल सिंचित क्षेत्र की प्रतिशत मात्रा को ही सिंचाई गहनता कहते हैं। सिंचाई गहनता के क्षेत्रीय वितरण में काफी विषमता परिलक्षित होती है। औसत सिंचाई गहनता 141.78 प्रतिशत है, जिसका क्षेत्रीय अन्तराल 101.31 से 200.86 प्रतिशत तक है। क्षेत्र के मध्य उत्तरी-पूर्वी, मध्य-पूर्वी तथा दक्षिणी भाग में सिंचाई गहनता का स्तर अपेक्षाकृत उच्च है, जबकि उत्तरी एवं उत्तरी-पश्चिमी भागों में कम है। सिंचाई गहनता का यह वितरण प्रतिरूप यद्यपि कई कारकों से प्रभावित है, तथापि सारांश यह है कि अध्ययन क्षेत्र में सिंचाई गहनता का वितरण एवं परिवर्तन सिंचाई साधनों की प्रकृति, सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता, सिंचाई-लागत एवं कृषकों की आर्थिक स्थिति से अधिक प्रभावित है। नहर सिंचित क्षेत्र एवं नलकूप सिंचित क्षेत्रों में सिंचाई गहनता में भारी अन्तर का मूल कारण यही है।

भूमिका-कृषिगत उत्पादकता में अभिवृद्धि ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली जनसंख्या के जीवन स्तर में गुणात्मक उन्नयन का आधार है। कृष्येत्तर उत्पादक क्रिया-कलापों के अभाव में कृषिगत उत्पादकता में अभिवृद्धि ही ग्राणीण विकास की कुंजी है। कृषिगत उत्पादकता में अभिवृद्धि का अनिवार्य उपागम उसकी गहनता एवं विविधता में अभिवृद्धि है। वर्षा की ऋत्विक विषमता वाले क्षेत्रों में वर्षा के अभाव में कृषि सिंचाई पर ही अवलम्बित होती है। अध्ययन क्षेत्र एक ऐसा ही क्षेत्र है। भारत में विशेषतया उच्च जनघनत्व वाले गंगा मैदान में, जहाँ कुल क्षेत्रफल में कृषिगत क्षेत्र तीन चौथाई से अधिक है, अब कृषि भूमि में विस्तार की गुंजाइश नहीं के बराबर है। कृषिगत भूमि वृद्धि की उच्चतम सीमा प्राप्त करने के पश्चात अब ह्रास की ओर प्रवृत्त है, अतः खाद्यान्न उत्पादन तथा अन्य भावी वृद्धिमान आवश्यकताओं की आपूर्ति के सन्दर्भ में नाजुक स्थिति को देखते हुए सिकुड़ती कृषिगत भूमि की उत्पादकता में वृद्धि अपरिहार्य है।[1] विगत दशकों के अनुभव इस तथ्य को पुष्ट करते हैं कि देश में रोजगार सृजन तथा निर्धनता उन्मूलन में जो भी यत्किंचित प्रगति हुई है, उसका श्रेय प्रधानतया कृषि उत्पादकता में अभिवृद्धि को है।[2] कृषिगत उत्पादकता में अभिवृद्धि कृषि की गहनता एवं विविधता में वृद्धि द्वारा ही सम्भव है।

कृषि की गहनता व विविधता बेहतर सिंचाई के बिना सम्भव नहीं है। कृषि भूमि पर सिंचाई सुविधाओं का होना या न होना, उत्पादकता की दृष्टि से उस समय काफी महत्वपूर्ण होता है, जब वर्षा अनिश्चित और अपर्याप्त होती है। किसी क्षेत्र में कृषि उत्पादकता का स्तर विविध अवस्थापना तत्वों से प्रभावित एवं निर्धारित होता है, तथापि उनमें सिंचाई की आधारभूत भूमिका होती है, क्योंकि बिना सिंचाई के आधुनिक तकनीक और निवेश प्रयोज्य नहीं होते। सिंचाई अपनी लाभदायक भूमिका निभाने के साथ-साथ गहन कृषि हेतु अन्य निवेशों को भी आकर्षित एवं उत्प्रेरित करती है। अधिक उपजदायी व लाभकर फसलों, रासायनिक उर्वरकों, उन्नत कृषि यंत्रों आदि की सुविधा एवं वैज्ञानिक फसल चक्र, कृषि ज्ञान और अनेक तकनीकी ज्ञान आदि सिंचाई के बिना लाभकर नहीं हो पाते, फलतः कृषि की गहनता व विविधता में वृद्धि द्वारा उत्पादकता में वृद्धि नहीं हो पाती। कृषि उत्पादकता में अभिवृद्धि का कोई भी उपागम सिंचाई के बिना कारगर नहीं हो सकता। इस प्रकार सिंचाई सर्वाधिक महत्वपूर्ण और निर्णायक कृषि निवेश है। सिंचाई की सुनिश्चितता होने पर ही कृषक लाभदायक फसल योजना बना सकता है और उसे कार्यान्वित कर सकता है। सिंचाई कृषि जीवन के लिए श्वास है, प्राण-वायु है।[3] सिंचाई पूरी शास्यावधि में मिट्टी में आर्द्रता की कमी को पूरा करके समुचित रूप से शास्य के अविच्छिन्न विकास

❑ असिस्टेण्ट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, दिग्विजय नाथ पी0जी0 कालेज, गोरखपुर (उ.प्र.)

को सुनिश्चित करती है।[4] सिंचाई दीर्घकालीन सफल कृषि हेतु आधार रेखा स्वरूप होती है। सिंचित कृषि ही अतिरिक्त अन्नोत्पादन की एक आधुनिक विधि है।[5] कृषि उत्पादकता हेतु सिंचाई निर्णायक होती है।[6] सिंचाई देश के दुख भोग को कम करती है, जीवन का परिरक्षण करती है, दुर्भिक्ष को परिवर्तित कर देती है तथा भौतिक सम्पन्नता को आगे बढ़ाती है।[7] चार्ल्स त्रिवेल्यन ने सिंचाई को भूमि से भी मूल्यवान बताते हुए कहा कि ''भारत में सिंचाई सब कुछ है''। जल, भूमि से भी अधिक मूल्यवान है, क्योंकि जब भूमि में जल का प्रयोग होता है तो उसकी उत्पादकता कम से कम छः गुना बढ़ा देता है तथा उत्पादनकारी भूमि को महान विस्तार प्रदान करता है, जिसके बिना उत्पादन अत्यल्प अथवा नगण्य होता है।[8] अतः किसी भी देश की आर्थिक व्यवस्था को सुधारने और उसे प्रगति के पथ पर लाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वहाँ की सिंचाई सुविधाओं में अधिकाधिक वृद्धि कर कृषि उत्पादकता को बढ़ाया जाये। किसी भी स्तर की उत्पादकता तत्सम्बन्धित विभिन्न कृषि निवेशों का सामुच्चयिक प्रतिफल होता है, परन्तु ऐसे परिणाम तभी सम्भव होते हैं जब पर्याप्त और बेहतर सिंचाई सुलभ हो।[9]

उद्देश्य-प्रस्तुत अध्ययन का केन्द्रीय उद्देश्य उत्तर प्रदेश के गण्डक नहर समादेश क्षेत्र में सिंचाई गहनता के क्षेत्रीय वितरण प्रतिरूप का विवेचन करना और उसमें हुए कालिक परिवर्तन की व्याख्या करना है। सिंचाई गहनता के विश्लेषण से न सिर्फ उसकी गहनता में क्षेत्रीय भिन्नता का बोध होता है अपितु उन भौतिक, सामाजिक, आर्थिक कारकों का ज्ञान होता है, जो सिंचाई गहनता व उसके क्षेत्रीय स्वरूप को प्रभावित करते हैं। परिवर्तनशील प्रतिरूप के अध्ययन से शास्य प्रतिरूप में होने वाले परिवर्तन के साथ ही साथ सिंचाई साधनों के विकास व विस्तार की भी जानकारी होती है। इन सभी तथ्यों की जानकारी का होना किसी क्षेत्र के कृषि नियोजन की पूर्वपिक्षा है। इसी उद्देश्य से प्रस्तुत प्रपत्र में उत्तर प्रदेश के गण्डक समादेश क्षेत्र की सिंचाई गहनता का क्षेत्रीय एवं कालिक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। सिंचाई परियोजना क्षेत्र होते हुए भी इस क्षेत्र में उत्थित सिंचाई साधनों में काफी विस्तार हुआ है।

सिंचाई गहनता का तात्पर्य - जहाँ तक सिंचाई गहनता का प्रश्न है, कुछ विद्वानों ने शुद्ध बोये गये क्षेत्र के सन्दर्भ में सिंचित भूमि के प्रतिशत को ही सिंचाई गहनता का नाम दिया है।[10] वस्तुतः यह शुद्ध सिंचित भूमि होती है, जिसका तात्पर्य सिंचाई सुविधा से युक्त भूमि से है, जबकि सिंचाई गहनता का तात्पर्य भूमि की सींची गयी मात्रा व उसकी आवृत्तियों से है। सही अर्थों में सिंचाई गहनता का तात्पर्य एक फसली वर्ष में किसी सिंचित इकाई क्षेत्र में सिंचाई की आवृत्ति से है। फसल काल में जितनी बार सिंचाई की आवश्यकता होती है, उसे सिंचाई आवृत्ति कहते हैं। कम आवृत्ति वाली फसलों में सिंचाई आवश्यकता कम तथा अधिक आवृत्ति वाली फसलों की सिंचाई आवश्यकता अधिक होती है।[11] यही आवृत्ति सिंचाई गहनता का द्योतक है। दूसरे शब्दों में शुद्ध सिंचित क्षेत्र तथा सकल सिंचित क्षेत्र के अनुपात को सिंचाई गहनता कहा जाना चाहिये। शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल कृषि क्षेत्र का वह भाग है जिसकी सिंचाई वर्तमान वर्ष में कम से कम एक बार की गयी हो। वर्ष में यदि एक से अधिक फसलें बोयी जाती हैं और उनमें भी सिंचाई की जाती है, तो ऐसे सिंचित क्षेत्र को एक बार से अधिक सींचा गया क्षेत्र कहते हैं। शुद्ध सिंचित क्षेत्र तथा एक बार से अधिक सिंचित क्षेत्र के योग को ही सकल सिंचित क्षेत्र कहा जाता है। शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल की तुलना में सकल सिंचित क्षेत्रफल का अधिक होना सिंचाई गहनता का परिचायक है। इसे प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है, जो सदैव 100 प्रतिशत या इससे अधिक ही होती है। यदि शुद्ध सिंचित क्षेत्र 200 हे0 है, जिसका 100 हे0 भाग एक बार से अधिक सींचा गया है तो सकल सिंचित क्षेत्र की मात्रा 300 हे0 होगी और सिंचाई गहनता 150 प्रतिशत होगी। इस प्रकार शुद्ध सिंचित क्षेत्र के सापेक्ष सकल सिंचित क्षेत्र जितना ही अधिक होगा, सिंचाई गहनता उतनी ही अधिक होगी।

सिंचाई आवृत्ति या गहनता कई कारकों पर निर्भर होती है, जैसे फसलों की भिन्न-भिन्न जातियों में पानी की भिन्न-भिन्न स्वीकार्यता होती है। इसलिए फसलों के अनुसार सिंचाई की आवृत्ति घटती-बढ़ती रहती है। मिट्टी की जलधारण क्षमता कम होने पर सिंचाई की आवृत्ति अधिक हो जाती है। जलवायु की दशाओं विशेषकर तापमान एवं वर्षा का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए शुष्क ग्रीष्म ऋतु में उगायी जाने वाली जायद फसलों में थोड़े-थोड़े अन्तर पर बार-बार सिंचाई के कारण सिंचाई की आवृत्ति अधिक होती है। सिंचित भूमि में विस्तार और सिंचाई गहनता में वृद्धि दोनों भिन्न-भिन्न चीजे हैं। सिंचित भूमि में वृद्धि का तात्पर्य असिंचित भूमि पर सिंचाई सुविधा प्रदान कर सिंचित क्षेत्र में विस्तार से

है, जबकि सिंचाई गहनता की वृद्धि का तात्पर्य एक बार से अधिक सिंचित भूमि में वृद्धि अर्थात किसी खेत में वर्ष में सिंचाई की आवृत्ति के बढ़ने से है। सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता व सिंचाई लागत एवं कृषकों की आर्थिक स्थिति का भी सिंचाई गहनता पर प्रभाव देखा जाता है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है, जो गोरखपुर मण्डल के जिला अर्थ एवं संख्याधिकारी कार्यालयों से प्रकाशित जिला सांख्यिकीय पत्रिकाओं तथा उत्तर प्रदेश-सांख्यिकी डायरी से प्राप्त किये गये हैं। विकासखण्ड को अध्ययन की इकाई माना गया है, जिनकी कुल संख्या 34 है। विकासखण्ड स्तर पर ही आंकड़ों का परिकलन, सारणीयन, प्रस्तुतीकरण, तथ्यों का विवेचन-विश्लेषण व मानचित्रण किया गया है। यहाँ प्रथमतः शुद्ध सिंचित क्षेत्र और एक बार से अधिक सिंचित क्षेत्र को जोड़कर सकल सिंचित क्षेत्र की गणना की गयी है। यह योगफल वर्ष में उगायी जानी वाली सभी फसलों के सिंचित क्षेत्रफल का योग होता है। दूसरे चरण में शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल के सन्दर्भ में सकल सिंचित क्षेत्र के प्रतिशत की गणना निम्न सूत्र से करते हुए प्रत्येक विकासखण्ड की सिंचाई गहना की गणना की गयी है।

$$Ii = \frac{TIA}{NIA} \times 100$$

यहाँ Ii = सिंचाई गहनता, TIA = सकल सिंचित क्षेत्रफल तथा NIA = शुद्ध सिंचित क्षेत्रफल

अध्ययन क्षेत्र के विभिन्न भागों में सिंचाई गहनता के वितरण प्रतिरूप के विवेचन के साथ ही सिंचाई गहनता का कालिक विवेचन भी किया गया है। इससे विगत चालीस वर्षों में सिंचाई गहनता में हुए परिवर्तन और उसके क्षेत्रीय प्रतिरूप की जानकारी हो सकी है। इसके लिए 1975, 1995 और 2015 जैसे तीन सन्दर्भ वर्षों में सिंचाई गहनता का विवेचन किया गया है। सिंचाई गहनता के क्षेत्रीय वितरण को सहज व बोधगम्य और सुस्पष्ट बनाने हेतु वितरण मानचित्र का उपयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र-देश की मध्योत्तर सीमा से संलग्न उत्तर प्रदेश के धुर पूर्वोत्तर अंचल में स्थित गण्डक नहर क्षेत्र एक मध्यम सिंचाई परियोजना क्षेत्र है, जिसके अन्तर्गत गोरखपुर जनपद के उत्तरी 5 विकासखण्ड, महराजगंज जनपद के पूर्वी 7 विकासखण्ड, देवरिया जनपद के उत्तरी 8 विकासखण्ड तथा कुशीनगर जनपद के सभी 14 विकासखण्ड सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र में पश्चिमी गण्डक नहरों का जाल बिछा हुआ है। इसका विस्तार 26020‘ उत्तर से 27025‘ उत्तरी अक्षांश तथा 83013‘ पूर्व से 84025‘ पूर्वी देशान्तर तक तथा कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 6732.36 वर्ग कि0 मी0 (उ0प्र0 का 2.28 प्रतिशत) है। यह क्षेत्र विशाल सिन्धु-गंगा द्रोणी के जलोढ़ क्षेत्र का ही एक लघु खण्ड है, जिसका सामान्य ढाल उत्तर से दक्षिण की ओर परन्तु पूर्वी एवं पश्चिमी भाग का ढाल क्रमशः दक्षिण-पूर्व व दक्षिण-पश्चिम को है। उष्ण कटिबन्धीय मानसूनी जलवायु के इस क्षेत्र में वर्षा की ऋत्विक विषमता, अनिश्चितता और अनियमितता के कारण कृषि के लिये सिंचाई अपरिहार्य है। उत्तरी-पूर्वी भाग के विशाल क्षेत्र पर भाट मिट्टी, पश्चिमी और दक्षिणी सीमावर्ती भागों में दोमट और यत्र-तत्र छिटपुट रूप में बलुई दोमट और चीका दोमट मिट्टियाँ भी पायी जाती है। भू-आकृतिक दृष्टि से यहाँ बांगर, भाट और खादर क्षेत्र मिलते हैं। यहाँ की कुल जनसंख्या 8037187, जनघनत्व 1145 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी. तथा साक्षरता 65.62 प्रतिशत है। कृषि प्रधान इस क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या का 86.98 प्रतिशत भाग कृषि में ही संलग्न है। कुल प्रतिवेदित क्षेत्र का 76.38 प्रतिशत भूमि कृषिगत है, जिसका 83.14 प्रतिशत भाग सिंचित है।

सिंचाई गहनता का क्षेत्रीय वितरण – अध्ययन क्षेत्र में औसत सिंचाई गहनता 141.78 प्रतिशत है, जो गोरखपुर मण्डल की सिंचाई गहनता 137.6 प्रतिशत से अधिक परन्तु भारत 142.0 प्रतिशत और उत्तर प्रदेश की सिंचाई गहनता 145.5 प्रतिशत से कम है। अध्ययन क्षेत्र की सिंचाई गहनता के क्षेत्रीय वितरण में काफी विषमता परिलक्षित होती है। उदाहरण के लिए एक ओर परतावल विकासखण्ड में सिंचाई गहनता केवल 101.31 प्रतिशत ही है, तो दूसरी ओर सेवरही विकासखण्ड की सिंचाई गहनता 200.86 प्रतिशत है। कुल 13 विकासखण्डों की सिंचाई गहनता इसके औसत (141.78 प्रतिशत) से कम तथा शेष 21 विकासखण्डों में अधिक है। अतिन्यून स्तर की सिंचाई गहनता (120 प्रतिशत से कम) कुल 29.41 प्रतिशत विकासखण्डों में मिलती है, जिसका वितरण क्षेत्र के उत्तरी-पश्चिमी व पश्चिमी भूभाग पर मिलता है। इसमें महराजगंज जनपद का सम्पूर्ण भाग तथा गोरखपुर जनपद के उत्तरवर्ती जंगल कौड़िया, चरगाँवा, भटहट विकासखण्ड समाहित हैं। इस श्रेणी में परतावल, घुघली, महराजगंज,

सिसवा व मिठौरा ऐसे विकासखण्ड हैं, जहाँ सिंचाई गहनता 110 प्रतिशत से भी कम है। न्यून स्तर (120 से 135 प्रतिशत) की सिंचाई गहनता का विस्तार 5.88 प्रतिशत भाग पर है। मध्य पश्चिमी भाग में पिपराईच एवं उत्तरी-पूर्वी भाग में नेबुआ नौरंगिया इस श्रेणी के विकासखण्ड है। मध्यम स्तर (135 से 150 प्रतिशत) की सिंचाई गहनता भी केवल दो विकासखण्डों में ही मिलती है। पहला उत्तरी-पूर्वी सीमावर्ती भाग में विशुनपुरा तथा दूसरा पूर्वी सीमावर्ती भाग में दुदही। उच्च स्तर (150 से 165 प्रतिशत) की सिंचाई गहनता का विस्तार अपेक्षाकृत सर्वाधिक अर्थात् 41.18 प्रतिशत विकासखण्डों में है। सरदारनगर (160.7 प्रतिशत), कसया (158.5 प्रतिशत), कप्तानगंज (158.2 प्रतिशत), खड्डा (157.7 प्रतिशत) और मोतीचक (156.9 प्रतिशत) इस श्रेणी के महत्वपूर्ण विकासखण्ड है। तरकुलवा, रामपुर कारखाना, बैतालपुर, पथरदेवा, गौरी बाजार, देवरिया, भटनी, देसही देवरिया, और तमकुही अन्य उल्लेखनीय विकासखण्ड हैं। कुल 34 विकासखण्डों में से 6 विकासखण्ड ऐसे हैं, जिनमें सिंचाई गहनता अति उच्च स्तर (165 प्रतिशत से अधिक) की पायी जाती है। इस श्रेणी के विकासखण्ड अध्ययन क्षेत्र के मध्यवर्ती भाग में पश्चिम से पूरब तक विस्तीर्ण हैं। इनमें सर्वोच्च सिंचाई गहनता (200.86 प्रतिशत) पूर्वी सीमान्त भाग में स्थित सेवरही विकासखण्ड में मिलती है। हाटा (194 प्रतिशत), फाजिलनगर (191.4 प्रतिशत), रामकोला (184.4 प्रतिशत), पडरौना (169.9 प्रतिशत) तथा सुकरौली (168.7 प्रतिशत) विकासखण्ड अति उच्च सिंचाई गहनता वाले विकासखण्ड हैं।

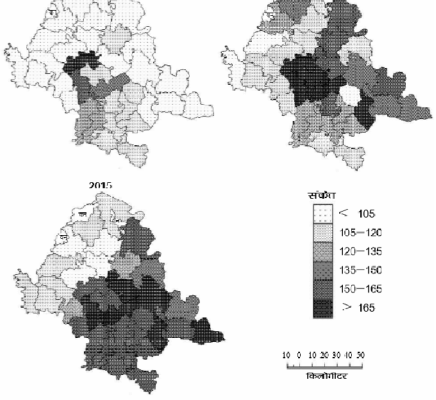

चित्र से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र के मध्य उत्तरी-पूर्वी, मध्य-पूर्वी तथा दक्षिणी भाग में सिंचाई गहनता का स्तर अपेक्षाकृत उच्च है, जबकि उत्तरी एवं उत्तरी-पश्चिमी भागों में सिंचाई गहनता कम है। सिंचाई गहनता का यह वितरण प्रतिरूप कई कारकों से प्रभावित है। तापमान एवं वर्षा जैसे कारकों में इतनी क्षेत्रीय भिन्नता नहीं है जिसके कारण सिंचाई गहनता के वितरण प्रतिरूप प्रभावित है। मिट्टी के प्रकार में भी भारी भिन्नता नहीं है। उत्तरी-पूर्वी भाग में भाट मिट्टी का विस्तार है, जिसमें नमी धारण की क्षमता तो होती है पर धरातल पर देर तक पानी नहीं रुकता। इसलिए वर्षा की अपर्याप्ता में धान की सिंचाई की जाती है। यहाँ नहरों के विस्तार से इसकी सुविधा उपलब्ध है। राप्ती नदी के किनारे खादर क्षेत्र जहाँ बलुई दोमट की प्रधानता है, वहाँ भी वर्षा जल धरातल पर कम समय तक रुकता है, अतः धान की सिंचाई आवश्यक हो जाती है। तीसरा कारक सिंचाई की सुलभता है। उत्तरी-पश्चिमी व पश्चिमी भाग में जहाँ सिंचाई गहनता का स्तर कम है। वहाँ नहर सिंचाई की सुविधा नहीं है। इन भागों में सिंचाई के प्रमुख स्रोत नलकूप ही हैं, जिनकी सिंचाई अधिक महंगी पड़ती है। प्रति सिंचाई के अनुसार लागत बढ़ती जाती है। ऐसा देखा गया है कि धान की खेती के समय जब कभी वर्षा नहीं होती है तो यहाँ के किसान वर्षा का इन्तजार करते हैं, जबकि नहर सम्पन्न क्षेत्र में बिना बिलम्ब के सिंचाई की जाती है। व्ययसाध्य होने के कारण नहर रहित क्षेत्रों में गेहूँ में भी कम ही किसान तीन सिंचाई करते हैं, इसलिए यहाँ सिंचाई गहनता बहुत कम है। जिन भागों में सिंचाई गहनता अधिक है, वह मुख्यतः नहर प्रधान क्षेत्र हैं। नहरों द्वारा सिंचाई की लागत (आबपाशी) प्रति सिंचाई या प्रति घण्टा की दर से नहीं, अपितु प्रति हेक्टेयर की दर से निर्धारित होती है। 27 दिसम्बर 2012 से तो सिंचाई निःशुल्क हो गयी है। दूसरा तथ्य यह है कि सिंचाई गहनता वहीं अधिक है, जहाँ धान फसल का सिंचित क्षेत्र अधिक है, क्योंकि अन्य फसलों के सिंचित क्षेत्र में इतनी विषमता नहीं मिलती। नहर सिंचित भागों में धान की रोपाई प्रमुखतः सिंचाई करके की जाती है, क्योंकि सिंचाई सस्ती है, परन्तु डीजल चालित नलकूपों/बोरिंग पम्पसेट की सिंचाई लागत अधिक होने से ऐसा नहीं हो पाता।

सिंचाई गहनता का परिवर्तनशील प्रतिरूप : सिंचाई गहनता के कालिक विश्लेषण से प्रकट है कि अध्ययन क्षेत्र

की सिंचाई गहनता में अनवरत अभिवृद्धि की प्रवृत्ति रही है। चालीस वर्ष पूर्व 109.17 प्रतिशत की सिंचाई गहनता बीस वर्षों में बढ़कर 132.71 तथा अगले बीस वर्षों में बढ़कर 141.78 प्रतिशत हो गयी, अर्थात् विगत चार दशकों में 32.61 प्रतिशत बढ़ी। सिंचाई गहनता में अभिवृद्धि का ही परिणाम रहा कि वर्तमान औसत (141.78 प्रतिशत) से अधिक सिंचाई गहनता 1975 में केवल 03 विकासखण्डों में ही थी, जबकि वर्तमान समय में 21 विकासखण्डों में इससे अधिक हो गयी। वर्तमान में 21 विकासखण्डों में इस औसत वृद्धि (141.78 प्रतिशत) से अधिक तथा शेष 13 विकासखण्डों में औसत से कम वृद्धि हुई है। 13 विकासखण्डों में 40 प्रतिशत से अधिक एवं 6 विकासखण्डों में 60 प्रतिशत से भी अधिक की वृद्धि हुई है। वृद्धि की दृष्टि से सेवरही (100.86 प्रतिशत), हाटा (94.02 प्रतिशत), फाजिलनगर (91.35 प्रतिशत), रामकोला (84.44 प्रतिशत), पडरौना (69.92 प्रतिशत), सरदारनगर (60.72 प्रतिशत), खड्डा (57.68 प्रतिशत), मोतीचक (56.88 प्रतिशत), कसया (56.49 प्रतिशत), तमकुही (53.34 प्रतिशत), विशुनपुरा (43.74 प्रतिशत) उल्लेखनीय विकासखण्ड हैं। ज्ञातव्य है कि जिन विकासखण्डों की सिंचाई गहनता में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हुई है, वे सभी नहर सिंचित हैं। परतावल, घुघली, महराजगंज, सिसवा तथा मिठौरा (प्रत्यके में 10 प्रतिशत से कम) व जंगल कौड़िया, भटहट, चरगाँवा, निचलौल, पनियरा (प्रत्येक में 10 से 20 प्रतिशत) जैसे विकासखण्डों में नाममात्र की वृद्धि हुई हैं। इसका प्रमुख कारण इन भागों में उत्थित/लघु सिंचाई साधनों की ही व्यवस्था है। इनसे सिंचाई गहनता कम होने के कारणों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

सिंचाई गहनता में वृद्धि का एक सर्वप्रमुख कारण फसल गहनता में अभिवृद्धि का होना है। 1975 में शस्य गहनता 151.50 प्रतिशत थी, जो 2015 में 161.32 प्रतिशत हो गयी। शस्य गहनता बढ़ने का तात्पर्य एक ही खेत में वर्ष में उगायी जाने वाली फसलों की संख्या/आवृत्ति में वृद्धि से हैं। उगायी जाने वाली ऐसी अतिरिक्त फसलों की सिंचाई होने से सिंचाई की आवृत्ति अथवा सिंचाई गहनता में अभिवृद्धि हुई है। सिंचाई गहनता की अभिवृद्धि में सिंचाई के आधुनिक साधनों के विकास-विस्तार की बड़ी भूमिका है। पहले कूप, तालाब ही सिंचाई के प्रमुख स्रोत थे, जिनसे गेहूँ/रबी फसलों की पर्याप्त सिंचाई नहीं हो पाती थी, परन्तु क्षेत्र की गणना सिंचित क्षेत्र में होती थी। अर्थात सिंचित क्षेत्र तो था परन्तु परम्परागत साधनों से हल्की सिंचाई ही हो पाती थी। जब उसी सिंचित भूमि पर सिंचाई के आधुनिक साधनों का विस्तार हुआ, तो सिंचित भूमि तो वही रही परन्तु उस पर एकाधिक फसलें उगायी जाने लगी और उसकी गहन सिंचाई भी होने लगी। परिणाम यह हुआ है कि एक ही वर्ष में सिंचाई की आवृत्ति बढ़ गयी, जो सिंचाई गहनता में वृद्धि का महत्वपूर्ण कारण है।

तालिका-01 में सिंचाई गहनता का श्रेणीगत कालिक स्वरूप प्रदर्शित हैं, जो सिंचाई गहनता में अभिवृद्धि की प्रवृत्ति को आलोकित करता है। अध्ययन क्षेत्र के सभी भागों में सिंचाई गहनता में न्यूनाधिक वृद्धि हुई है। इसी का परिणाम है कि 105 प्रतिशत से कम सिंचाई गहनता जहाँ 1975 में 60.6 प्रतिशत विकासखण्डों थी, वहीं 2015 में इस गहनता वर्ग में केवल 11.7 प्रतिशत विकासखण्ड ही रह गये। इसी प्रकार 120 प्रतिशत से कम गहनता 1975 में 84.5 प्रतिशत विकासखण्डों में थी, परन्तु गहनता वृद्धि के परिणामस्वरूप 2015 में केवल 29.41 प्रतिशत विकासखण्डों में ही गहनता 120 प्रतिशत से कम रह गयी। इसके विपरीत 150 प्रतिशत से अधिक सिंचाई गहनता 1975 में मात्र 6.06 प्रतिशत विकासखण्डों में थी, जबकि चालीस वर्षो बाद 2015 में 58.03 प्रतिशत विकासखण्डों में सिंचाई गहनता का स्तर 150 प्रतिशत से अधिक हो गया। 1975 में 110 प्रतिशत से अधिक सिंचाई गहनता 11 विकासखण्डों में तथा 150 प्रतिशत से अधिक 2 विकासखडों में थी, वृद्धि के परिणास्वरूप 2015 में 110 प्रतिशत से अधिक गहनता 29 विकासखण्डो में और 150 प्रतिशत से अधिक गहनता 20 विकासखण्डों में स्थापित हो गयी। 170 प्रतिशत सिंचाई गहनता 1975 में एक भी विकासखण्ड में नहीं थी जबकि 2015 में 4 विकासखण्ड इस श्रेणी में आ गये।

तालिका-01

सिंचाई गहनता का श्रेणीगत कालिक वितरण

गहनता (प्रतिशत में)	विकासखण्डों की संख्या 1975	1995	2015
< 105	20	3	4
105-120	8	11	6
120-135	2	5	2
135-150	1	4	2
150-165	1	5	14

> 165	1	5	6
औसत	33	33	34
गहनता	विकासखण्डों का प्रतिशत		
(प्रतिशत में)	1975	1995	2015
< 105	60.61	9.09	11.76
105-120	24.24	33.33	17.65
120-135	6.06	15.15	5.88
135-150	3.03	12.12	5.88
150-165	3.03	15.15	41.18
> 165	3.03	15.15	17.65
औसत	109.17	132.71	141.78

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जिस रूप में सिंचाई साधनों एवं सिंचित भूमि में वृद्धि हुई, उसके अनुरूप सिंचाई गहनता में वृद्धि नहीं हुई है। इसका प्रधान कारण यह है कि खरीफ ऋतु में वर्षा होने के कारण सिंचाई की आवश्यकता कम ही पड़ती है। प्रमुखतः रबी एवं जायद फसलों में ही सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। चूँकि जायद फसलों की खेती अत्यन्त ही कम होती है, इसलिए सिंचाई का सीधा सम्बन्ध रबी फसलों से ही है। इतना अवश्य है कि अब धान की नई प्रजातियों की खेती हो रही है, जिसकी बुआई नहीं अपितु रोपाई होती है। अतः पहले की अपेक्षा अब धान क्षेत्र का आधे से अधिक (54.7 प्रतिशत) भाग की भी सिंचाई होती है। सिंचाई गहनता में वृद्धि का एक कारण यह भी है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि अध्ययन क्षेत्र में 83.14 प्रतिशत भूमि सिंचित है, परन्तु सिंचाई गहनता मात्र 141.78 प्रतिशत ही है। इसका तात्पर्य यह है कि जितनी भूमि सिंचित है, उसके केवल 41.78 प्रतिशत भाग पर ही अगली फसलों में सिंचाई होती है। ज्ञातव्य है कि 58.22 प्रतिशत कृषि भूमि में वर्ष में एक ही बार (मुख्यतः रबी फसल में) सिंचाई की जाती है। खरीफ काल में अरहर, मूँगफली, चारा, ज्वार-बाजरा, तिल जैसी फसलों में सिंचाई नहीं के बराबर होती है। जायद फसलों का क्षेत्र लगभग शत-प्रतिशत सिंचित है, परन्तु इनका आच्छादन नगण्य (सकल बोये गये क्षेत्र का 1.87 प्रतिशत) है। इस प्रकार रबी ऋतु में जिन खेतों में सिंचाई होती है, उन्हीं खेतों में खरीफ फसलों में सिंचाई की आवश्यकता ही नही होती और जायद में फसलों का आच्छादन ही नहीं रहता है।

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अध्ययन क्षेत्र की सिंचाई गहनता, फसलों के प्रकार, मिट्टी की जलधारण क्षमता, जलवायु विशेषकर ऋत्विक प्रकृति का प्रभाव परिलक्षित होता है, परन्तु अध्ययन क्षेत्र में इन तत्वों के वितरण में इतनी विषमता नहीं है कि इनके कारण सिंचाई गहनता के वितरण में ऐसी असमानता उत्पन्न हो। अध्ययन क्षेत्र में सिंचाई गहनता का वितरण एवं परिवर्तन, सिंचाई साधनों की प्रकृति, सिंचाई सुविधाओं की उपलब्धता, सिंचाई-लागत एवं कृषको की आर्थिक स्थिति से अधिक प्रभावित है। नहर सिंचित क्षेत्र एवं नलकूप सिंचित क्षेत्रों में सिंचाई गहनता में अन्तर का मूल कारण यही है। इसलिए यदि नहर जैसी सस्ती और सर्वसुलभ सिंचाई सुविधा उपलब्ध करायी जाय तो सिंचाई गहनता में अभिवृद्धि के फलस्वरूप फसल गहनता के साथ ही साथ उत्पादकता में भी अभिवृद्धि होगी।

सन्दर्भ

1. पटेल, रमेश चन्द, *'गोरखपुर मण्डल में शस्यगत विविधता'*, भारतीय सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, सरयूपार सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, 2004, अंक 8, संख्या 1, पृ0 105.
2. सिंह, जगदीश, *'भारत : भौगोलिक आधार एवं आयाम'*, ज्ञानोदय प्रकाशन, गोरखपुर, 2004 पृ0 251.
3. Mitra, C. A, *'Feed Back Analysis of Agriculture in India'* Progressive Press, Culcutta, 1992, p.27
4. Mamoria, C.B., *'Geography of India (Agricultural Geography)'* First. Ed. Concept Publishing Company, New Delhi, 1975 p.18.
5. Singh, M.L., *'Extension of Irrigation facility in Sidhi'*, Kurukshetra , Vol. 26, No.11, 1981, p.33.
6. Sharma, D.P. and V.V. Sesai, *'Rural Economy of India'*, Vikas Publishing House New Delhi, 1980 p.123.
7. Mamoria, C.B., *'A Impact of Irrigation on Rural Development–a Case Study'*, in Geography of India, op. cit p.218.
8. Barnard Darley, *'They Have banished the grimspectre of famine and peace prosperity and higher standerd of living to the hole country'*, in Economic problems of modern India Ed. by R.K.Mukherjee, 1939 Vol. 1, P.167.
9. Mamoria, C.B. op. cit p.218
10. Khullar, D.R., *'India A Comperehensive Geography'*, Kalyani Publishers, Ludhiyana. 2000, p.290.
11. मिश्र, विश्वनाथ एवं अन्य, *'भूमि एवं जल संरक्षण के सिद्धान्त'*, सिंघल बुक डिपो, बड़ौत, मेरठ, 2000, पृ. 31.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

सहकारी आंदोलन एवं महिला सशक्तीकरण

❑ श्रीमती हेमा जोशी
❖ प्रोफेसर इला साह

सहकारी आन्दोलन एक प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन है। भिन्न-भिन्न देशों में इसके अलग-अलग स्वरूप हैं, लेकिन विश्व के सहकारिता रूपी सबसे बड़े जनतंत्र में एकरूपता अवश्य रखी गयी है। सहकारिता मुख्यरूप से एक आन्दोलन है जिसमें सहअस्तित्व, सहकर्म, सहयोग, सहभाग, सामूहिक जिम्मेदारी, सामूहिक बहुमुखी विकास, गरीबी तथा बेरोजगारी उन्मूलन के मुख्य तत्व सम्मिलित हैं। वर्तमान में सहकारी समितियों से जुड़कर महिलाएँ काफी हद तक उपर्युक्त आधार को पूर्ण करने में सक्षम भी दिखायी पड़ रही हैं। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से इस सत्यता को जानने का प्रयास किया गया है कि सहकारी समितियां महिलाओं के सशक्तीकरण में किस प्रकार की भूमिका का निर्वहन करती हैं।

मिलजुल कर कार्य करने की प्रणाली को 'सहकारिता' कहा जाता हैं। One man is no man यानि कि अकेला आदमी कुछ नही होता इसकी पुष्टि सहकारिता के माध्यम से की जा सकती है अर्थात जो काम अकेले नही हो सकता उसे सामूहिक रूप से करना लाभदायक होता है। स्वराज के प्रारंभिक काल में देश के विकास की गति अत्यधिक मन्द थी जिसमें तीव्रता लाने के लिए देश के कर्णधारों ने आर्थिक नीति को समाजवादी रूप दिया और सभी पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारिता को शीर्ष पर रखा गया।

सन् 1950 में सहकारिता के अध्ययन करने वाले एक कमीशन की अध्यक्षता करते हुए पं0 जवाहर लाल नेहरू ने कहा था-''सहकारी समितियां अपने दायित्व निर्वहन में असफल रही हैं, लेकिन सहकारी आन्दोलन को अवश्य सफल बनाना है। इससे मनुष्य संघर्ष से मुक्त रहता है तथा मध्यस्थों के हाथों से उसके शोषण की कोई संभावना नहीं रहती।''[1]

सहकारिता एक प्रकार का संगठन है, जिसमें मनुष्य स्वेच्छा से मानव प्राणी होने के कारण समानता के आधार पर, आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति हेतु परस्पर सहयोग करता है।[2]

सहकारी आन्दोलन एक प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन है। भिन्न-भिन्न देशों में इसके अलग-अलग स्वरूप हैं, लेकिन विश्व के सहकारिता रूपी सबसे बड़े जनतंत्र में एकरूपता अवश्य रखी गयी है। सहकारिता मुख्यरूप से एक आन्दोलन है जिसमें सहअस्तित्व, सहकर्म, सहयोग, सहभाग, सामूहिक जिम्मेदारी, सामूहिक बहुमुखी विकास, गरीबी तथा बेरोजगारी उन्मूलन के मुख्य तत्व सम्मिलित हैं।''[3]

''**सहकारिता** व्यक्ति के लिए जीवन जीने हेतु जीवन शैली है, जीने की रीति एवं नीति है। इसे जीवन प्रबंध भी कह सकते हैं। सब एक के लिए तथा एक सब के लिए अर्थात् समष्टि-व्यष्टि के लिए एवं व्यष्टि समष्टि के लिए इसका मौलिक आधार है। इससे एक होकर साथ-साथ चलने एवं जीने की भावना का विकास होता है।''[4]

भारत का सहकारिता आन्दोलन अन्य देशों की तुलना में अत्यधिक मजबूत सशक्त है, यहां लगभग पॉच लाख सहकारी समितियों का सक्रिय होना इसकी प्रामाणिकता को सिद्ध करता है। 1963 में केन्द्रीय आपूर्ति एवं सहकारिता आन्दोलन को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय विकास निगम का गठन कर इसको गति देने के प्रयास भी किये गये। सहकारिता यूँ तो सभी के लिए महत्वपूर्ण है लेकिन देहातों के लिए इसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है ।

Eassy on co-coperetive movment in India में भी स्पष्ट किया गया है कि, ''सहकारिता के लिए सबसे उपयुक्त क्षेत्र देहात है, जहां के लोग प्रायः गरीब होते हैं और अपने साधनों का समुचित प्रयोग नहीं कर पाते हैं। वे छोटे-छोटे काम-धंधे कर सकते हैं। लेकिन पूंजी उनके पास नहीं होती। अतः उन्हें ऋण दिलाने की व्यवस्था हो, उनके पास जमीन तो है मगर छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखरी

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र विभाग, एस0एस0जे0परिसर अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)
❖ विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र, एस0एस0जे0परिसर अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

पड़ी है। अतः उसे सबकी भूमि बनाकर सहकारी खेती की tk, A**[5]

वर्गीज कुरियन जिन्हें श्वेत क्रान्ति के जनक के रूप में जाना जाता है की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक ग्रामीण महिलाओं को जोड़कर उन्हें सशक्त बनाना था। सहकारिता को अपनाकर ही भारत में दुग्ध क्रांति को सफल बनाया जा सका। इसलिए दुग्ध एकत्रित करने के लिए गांव स्तर पर सहकारी समितियां गठित की गयीं। इससे किसानों व दुग्ध उत्पादकों को भारी लाभ हुआ, क्योंकि इसमें बिचौलियों का कोई स्थान न रहा। इसमें होने वाले सामूहिक लाभ को अंशधारियों में बांट दिया जाता है।''[6]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सहकारी समितियां ऐसी स्वैच्छिक संगठन हैं जो सभी के लिए हैं, अर्थात् जिसमें लैंगिक, जातीय, सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक भेदभाव नहीं किया जाता। सहकारी आन्दोलनों में महिलाओं की विशेष भूमिका का ध्यान उन्हें सशक्त करने हेतु किया गया।

किसी भी समाज एवं देश यहां तक कि परिवार व व्यक्ति के विकास में भी महिलाओं की भूमिका हमेशा से महत्वपूर्ण मानी जाती रही है। इनकी सूझबूझ, कर्तव्य परायणता, कठोर परिश्रम, ईमानदारी, त्याग, बलिदान, बहादुरी, प्रशासनिक क्षमता, संगठनात्मक क्षमता इनकी प्रामाणिकता को प्रत्येक क्षेत्र में सिद्ध कर चुकी हैं। विद्वानों व विश्लेषकों ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि भारत में सहकारिता असफलता का प्रमुख कारण इनमें महिलाओं की सक्रिय भूमिका का अभाव है क्योंकि भारत मे निर्मित विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियों में महिलाओं की सहभागिता का प्रतिशत लगभग 2 प्रतिशत ही है। यही कारण है कि महिला सशक्तिकरण की आज नितान्त आवश्कता उनकी विभिन्न प्रकार की प्रस्थितियों के सुधार के लिए आवश्यक है।

परिवार समाज एवं वैश्विक संदर्भ में स्वतन्त्रतापूर्वक महत्वपूर्ण निर्णय लेने का अधिकार महिलाओं को प्राप्त होना महिला सशक्तीकरण है अर्थात अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वेच्छा से निर्णय लेने के अधिकार को सशक्तीकरण की परिधि में रखा जा सकता है जिससे सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन, स्वयं की स्थिति में सुधार, जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण, अंधविश्वास, रूढ़िवादी प्रथाओं में कमी व उनको अधिकारों की स्वतन्त्रता प्राप्त हो सके।

वर्तमान में सहकारी समितियों से जुड़कर महिलाएँ काफी हद तक उपर्युक्त आधार को पूर्ण करने में सक्षम भी दिखायी पड़ रही हैं। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से इस सत्यता को जानने का प्रयास किया गया है कि सहकारी समितियां महिलाओं के सशक्तीकरण में किस प्रकार की भूमिका का निर्वहन करती हैं।

साहित्य पुनरावलोकन : शोध से संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण या साहित्य का पुनरावलोकन करना अत्यंत आवश्यक व महत्वपूर्ण होता है। यह शोधकर्ता को शोध कार्य में सफलता हेतु मार्ग निर्देशन के साथ-साथ अनुसंधान के क्षेत्र में सामान्य प्रवृत्तियों का भी ज्ञान प्रदान करता है जिससे अनुसंधनकर्ता को बहुमूल्य विचार, व्याख्या सिद्धांत साक्ष्य एवं अनुभव उपलब्ध होते हैं तथा नवीन ज्ञान एवं पुरानी खोज का आपस में जुड़ाव होता है। सहकारी आन्दोलन व महिला सशक्तीकरण के संबंध में भिन्न विद्वानों ने इस विषय में किए गऐ अध्ययन को निम्नवत् स्पष्ट किया है-

रामचंद्र मिश्र ने आनन्द पद्धति में संगठन एवं दुग्ध उपार्जन (2002) में सहकारी आन्दोलन को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, सहकारी आन्दोलन एक प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन है। भिन्न-भिन्न देशों में इसके अलग-अलग स्वरूप हैं, लेकिन विश्व के सहकारिता रूपी सबसे बड़े जनतंत्र में एकरूपता अवश्य रखी गयी है। सहकारिता मुख्यरूप से एक आन्दोलन है जिसमें सहअस्तित्व सहकर्म, सहयोग, सहभाग, सामूहिक जिम्मेदारी, सामूहिक बहुमुखी विकास, गरीबी तथा बेरोजगारी उन्मूलन के मुख्य तत्व सम्मिलित हैं। सहकारिता व्यक्ति के लिए जीवन जीने हेतु जीवन शैली है, जीने की रीति एवं नीति है। इसे जीवन प्रबंध भी कह सकते हैं। सब एक के लिए तथा एक सब के लिए अर्थात् समष्टि-व्यष्टि के लिए एवं व्यष्टि समष्टि के लिए इसका मौलिक आधार है। इससे एक होकर साथ-साथ चलने एवं जीने की भावना का विकास होता है। भारतीय अर्थव्यवस्था के उतार चढ़ाव में मिश्र द्वारा लिखा गया है कि, ''दुनिया का कोई ऐसा देश नहीं है जिसका सहकारिता आंदोलन भारत जितना मजबूत होगा। भारत में लगभग पांच लाख सहकारी समितियां सक्रिय हैं। भारत में अनेक क्षेत्रों में सहकारिता आंदोलन चल रहा है, लेकिन इनकी कृषि उर्वरक और दूध उत्पादन में अधिक भागीदारी है। सन् 1963 में केन्द्रिय आपूर्ति एवं सहकारिता मंत्रालय ने राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम

का गठन किया ताकि वह सहकारिता आन्दोलन को बढ़ाये।[7]

2002 में Eassy on co-operetive movement in India में सहकारिता के लिए सबसे उपयुक्त क्षेत्र देहात को माना गया है। जहाँ के लोग प्रायः गरीब होते हैं और अपने साधनों का समुचित प्रयोग नहीं कर पाते हैं। वे छोटे-छोटे काम-धंधे कर सकते हैं। लेकिन पूंजी उनके पास नहीं होती। अतः उन्हें ऋण दिलाने की व्यवस्था हो, उनके पास जमीन तो है मगर छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखरी पड़ी है। अतः उसे सबकी भूमि बनाकर सहकारी खेती की जाय।[8]

वर्गीज कुरियन ने 'दुग्ध उत्पादन ग्रामीण विकास का एक सघन योजना (अगस्त 2004) में अपने अध्ययन में बताया है कि डेयरी सहकारी संघ आन्दोलन ने देश के गांवों में रहने वाली महिलाओं की जिंदगी ही बदल दी है, क्योंकि इस आन्दोलन से उन्हें एक सीमा तक आर्थिक स्वतंत्रता मिली है। आज के भारत में महिलाओं के लिए डेयरी सहकारी संघ रोजगार का सबसे बड़े साधन सिद्ध हुए हैं। देशभर के 110 लाख परिवारों के पुरूष खेतों में मेहनत करते हैं, जबकि उनकी स्त्रियां घर पर पशुपालन का कार्य करती हैं, परिवार की कुल आमदनी में महिलाएं दुग्ध व्यवसाय से होने वाली आमदनी के रूप में योगदान करती हैं।[9]

गजवीर सिंह एवं श्वेतासिंह ने अपने अध्ययन 'डेरी उद्योग ग्रामीण महिलाओं के स्वरोजगार का एक सशक्त साधन - एक समाजशास्त्रीय अध्ययन' (2015) में इस बात की पुष्टि की है कि अधिकांश ग्रामीण महिलाओं के द्वारा डेरी उद्योग संचालित किये जा रहे हैं, जिससे ग्रामीण शिक्षित एवं अशिक्षित महिलाओं के लिए दुग्ध उत्पादन स्वरोजगार का एक सशक्त माध्यम सिद्ध हो रहा है। उनकी आय में वृद्धि हो रही है और ये सामाजिक आर्थिक रूप से सशक्त हो रही हैं।[10]

महिला सशक्तिकरण का आत्मावलोकन (अगस्त 2013) में कणिका तिवारी द्वारा लिखा गया है कि 'देश की खुशहाली व समृद्धि का रास्ता ग्रामों से होकर गुजरता है। जिसमें ग्रामीण महिलाओं के सहयोग के बिना ग्रामीण विकास एवं दुग्ध उत्पादन जैसे कार्यक्रमों की सफलता की कल्पना करना असंभव है।[11]

वूमन इन इण्डियन सोसाइटी (2003) में नीरा देसाई और ऊषा ठक्कर ने लिखा है कि भारत की सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था ने महिलाओं के साथ कभी भी पूर्ण न्याय नहीं किया। वर्तमान में महिलाओं के देह शोषण का बाजार अत्यधिक विस्तृत हो चुका है।[12]

राकेश कुमार तिवारी ने उ.प्र. के गोरखपुर जनपद के चरगांवा विकासखण्ड के अंतर्गत स्वयं सहायता समूहों में सक्रिय 280 स्वरोजगारियों का महिला सशक्तीकरण के संदर्भ में अध्ययन किया और पाया कि स्वयं सहायता समूह ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक पक्ष को दृढ़ करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।[13]

मधुसूदन त्रिपाठी द्वारा (2008) में 'महिला विकास एवं मूल्यांकन में स्पष्ट किया गया है कि महिलाओं के पिछड़ने का मूल कारण पितृसत्तात्मक सोच व रूढ़िवादी विचार है।[14]

गैर सरकारी संस्थाओं में कार्यरत् महिलाओं के लिए इसे एक चुनौती माना है, क्योंकि जब भी किसी कार्य की पहल किसी महिला द्वारा की जाती है तो पुरूष उसे स्वीकार करने में स्वयं को असहज महसूस करता है। इसके लिए हमारे समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक सोच को बदलने की नितान्त आवश्यकता है।

अतः महिला डेरी विकास परियोजना अल्मोड़ा शीर्षक के माध्यम से महिला डेयरी परियोजना से जुड़ी उन ग्रामीण कषि व पशुपालन पर आधारित महिलाओं की विभिन्न स्थितियों को जानने का प्रयास शोधार्थिनी द्वारा किया गया, सत्यता को परखने के लिए वैज्ञानिकता के आधार पर समितियों से जुड़ने के पश्चात क्या महिलाएँ अपने से जुड़ी स्थितियों से संतुष्ट होकर स्वयं को सशक्त मान रही हैं या ये केवल मिथक मात्र हैं? को भी जानने का पारदर्शी प्रयास किया गया।

शोध का उद्देश्य : प्रस्तुत शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य महिला डेरी परियोजना की दुग्ध समिति से जुड़ने के पश्चात् महिलाओं के जीवन में आये परिवर्तनों को जानना।

शोध प्रचना एवं पद्धतिशास्त्र : प्रस्तुत शोधपत्र में वर्णनात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है तथा यह निर्दशन पद्धति पर आधारित है। सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में 1183 महिला दुग्ध समितियां गठित की गई हैं। इसके दो मण्डल गढ़वाल एवं कुमाऊँ में 614 एवं गढ़वाल में 569 महिला समितियां हैं। जनपद अल्मोड़ा में कुल 89 महिला दुग्ध समितियां गठित हैं जिनमें विभिन्न जाति, धर्म की ग्रामीण महिलाएं दुग्ध व्यवसाय से जुड़कर अपनी पारिवारिक,

सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक स्थिति को मजबूत करने हेतु प्रयासरत हैं।

प्रत्येक समिति में परियोजना नियमानुसार कम से कम सदस्य संख्या का 30 होना अनिवार्य है जबकि 30 से ऊपर सदस्यों की संख्या के कोई मानक नहीं हैं अर्थात ये संख्या 30 से ऊपर कितनी भी हो सकती है। अतः सर्वप्रथम 89 ऐसी समितियों में से जिनकी सदस्य संख्या 30 अथवा अधिक थी को चुना गया जो कुल 53पायी गई जिनमें से 10 महिला दुग्ध समितियों का चुनाव निदर्शन की लॉटरी पद्धति के माध्यम से किया गया और इन 10 समितियों से चुनी गयी उत्तरदाता महिलाओं की कुल संख्या 300 हो गयी जिन्हें अध्ययन के लिए उत्तरदाता के रूप में चुना गया।

महिला डेरी विकास परियोजना उत्तराखण्ड के जनपद अल्मोड़ा की 10 चयनित समितियाँ

जनपद अल्मोड़ा

समिति का नाम	विकासखण्ड	संख्या
टिकर	लमगड़ा	30
धटेधार	धौलादेवी	30
चल्थी	धौलादेवी	30
लधौली	धौलादेवी	30
नया संग्रौली	लमगड़ा	30
नींबूगेर	द्वाराहाट	30
कुरूटिया	धौलादेवी	30
थली	धौलादेवी	30
बगूना	ताड़ीखेत	30
नायला	धौलादेवी	30
कुल योग		300

इस प्रकार कुल 300 महिलाओं को अध्ययन इकाई के रूप में चुना गया है।

तथ्यों का संकलन,वर्गीकरण एवं सारणीयन : तथ्य संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोत्र के अन्तर्गत स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची के साथ व्यक्तिगत अवलोकन को भी लिया गया है। जबकि द्वितीयक स्रोत के रूप में संबंधित साहित्य,संदर्भ ग्रन्थ,समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, नैट एवं संबंधित कार्यालयों से प्राप्त आकड़ों को लिया गया है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों तथ्यों को सम्मिलित किया गया है।

विश्लेषण एवं निष्कर्ष

प्रथम सारणी के अन्तर्गत यह जानने का प्रयास किया गया है कि उत्तरदाता की आयु व जाति क्या है। इसमें प्राप्त तथ्यों का विवरण निम्न प्रकार है।

सामाजिक स्तरीकरण के प्रमुख साधन के रूप में आयु व्यक्ति की मानसिक परिपक्वता का द्योतक होता है। जिसके माध्यम से व्यक्तियों के सोचने समझने व व्यवहार करने के प्रभाव को परिलक्षित किया जा सकता है। अतः शोधकर्ता द्वारा प्राप्त आकड़ों में चयनित उत्तरदाता महिलाओं के आयु वर्गीकरण को निम्नवत दशार्या गया है।

सारणी संख्या-1

सूचनादात्रियों की आयु

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
18-28	48	16
28-38	104	34.7
38-48	89	29.7
48-ऊपर	59	19.6
कुल योग	300	100

उपर्युक्त सारणी के आधार पर महिला दुग्ध समितियों से जुड़ी महिलाएँ सर्वाधिक 28 से 38 वर्ष आयु की पायी गई जिनका प्रतिशत 34.7 है इसके पश्चात 18 से 28 वर्ष की आयु की 16 प्रतिशत 38 से 48 आयु की 29.7 प्रतिशत तथा 48 से ऊपर आयु की 19.6 प्रतिशत महिलाएँ उत्तरदाता के रूप में चयनित हैं।

जाति एक आनुवांशिक सामाजिक समूह है जिसमें जन्म के आधार पर प्रस्थिति व श्रेणी निर्धारित होती है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में जाति महत्वपूर्ण अवधारणा है जो पवित्रता-अपवित्रता की धारणा के आधार पर विकसित होने वाला सामाजिक संस्तरण का एक विशेष रूप है । अतः जाति के आधार पर भी उत्तरदाताओं के पार्श्वचित्र को प्रस्तुत किया गया हैं।

सारणी संख्या- 2

सूचनादात्रियों का जातीय विवरण

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृति	प्रतिशत
ब्राह्मण	65	21.7
क्षत्रिय	153	51
अनु0 जाति	80	26.7
अनु0 जन जाति	-	-
अन्य पिछड़ा वर्ग	2	0.6
योग	300	100

उपर्युक्त सारणी द्वारा स्प्ष्ट होता है कि चयनित उत्तरदाताओं में ब्राह्मण 21.7 प्रतिशत,क्षत्रिय सर्वाधिक 51 प्रतिशत,

अनुसूचित जाति 26.7 प्रतिशत एवं 0.6 प्रतिशत पिछड़ी जाति की महिलाएँ हैं।

सर्वप्रथम दुग्ध परियोजना से जुड़ी महिलाओं से जानने का प्रयास किया गया कि वे परियोजना से जुड़ने के बाद कैसा अनुभव करती हैं तो सभी उत्तरदाताओं से शत-प्रतिशत उत्तर प्राप्त हुए कि वे सुखद अनुभव करती हैं।

दुग्ध परियोजना से जुड़ी महिलाओं से यह पूछने पर कि क्या अन्य महिलाओं को भी महिला डेरी परियोजना की समिति से जुड़ने के लिए प्रेरित करेंगी के उत्तर में भी उत्तरदाता महिलाओं द्वारा शत-प्रतिशत सकारात्मक उत्तरों की प्राप्ति हुई जो उनकी जागरूकता, आत्मनिर्भरता व बदले दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती हैं।

उत्तरदाता महिलाओं से पूछने पर कि क्या परियोजना से जुड़ने के पश्चात घरेलू महिलाएं उनसे ईर्ष्या करती हैं के उत्तर में 40 प्रतिशत महिलाओं ने हां तथा 27 प्रतिशत ने नहीं और 33 प्रतिशत महिलाओं ने पता नहीं में उत्तर दिया, जिसे निम्म सारणी द्वारा दर्शाया गया है।

सारणी संख्या- 3

परियोजना से जुड़ने के पश्चात घरेलू महिलाओं में ईर्ष्या

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृति	प्रतिशत
हाँ	120	40
नहीं	81	27
पता नहीं	99	33
योग	300	100

किसी भी ऐसे कार्य से जुड़ना जिसके द्वारा अर्थाजन होता है निश्चित रूप से किसी व्यक्ति या परिवार की आर्थिक स्थिति को मजबूत करने में सक्षम अवश्य होता है। परियोजना से जुड़ने के पश्चात चयनित उत्तरदाता अपनी स्थिति को मजबूत व उसमें सुधार आने को स्वीकार करती हैं को जानने के लिए उत्तरदाताओं से प्राप्त तथ्य निम्नवत् हैं।

सारणी संख्या- 4

आर्थिक स्थिति में सुधार से संबंधित प्रत्युत्तर

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृति	प्रतिशत
हाँ	122	40.7
नहीं	10	3.3
थोड़ा बहुत	168	56
बहुत अधिक	–	–
योग	300	100

अधिकांश उत्तरदाताओं ने परियोजना से जुड़ने के बाद अपनी आर्थिक स्थिति को काफी मजबूत बतलाया है जिनका प्रतिशत 40.7 है। 56 प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं ने थोड़ा-बहुत आर्थिक स्थिति में सुधार को स्वीकारा है लेकिन 3.3 प्रतिशत महिलाओं ने अभी अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार की बात को अस्वीकार किया है। अतः प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक स्थिति को मजबूती प्रदान होती है को स्वीकार करना महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन का द्योतक एक सकारात्मक परिणाम है।

परियोजना का उद्देश्य मात्र महिलाओं की आर्थिक स्थिति को मजबूत करना ही नहीं बल्कि जगह-जगह की स्थितियों /परिस्थितियों से उन्हें अवगत कराने हेतु समय-समय पर दूसरे स्थानों में महिलाओं को ले जाकर उन्हें आत्मनिर्भरता की वृद्धि कराना भी है। बाहरी भ्रमण से संबंधित प्रत्युत्तर में 100 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि उन्हें परियोजना द्वारा जागरूकता संबंधी कार्यक्रमों में परियोजना की ओर से बाहर भ्रमण में जाने का अवसर मिलता है जिससे उनके आत्मविश्वास में वृद्धि हुई।

पर्वतीय समाज में विकास की गति धीमी है। ग्रामीण समाज में प्रचलित प्रथा परम्पराएँ आज भी अपने पूर्ववत रूप में काफी हद तक प्रभावित है यद्यपि महिलाएँ जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं लेकिन कहीं न कहीं रूढ़वादी मानसिकता आज भी उनमें विद्यमान है क्योंकि निम्न सारणी में पुत्र अनिवार्यता संबंधी प्रश्न के उत्तर में सर्वाधिक 88.3 प्रतिशत हां में प्रत्युत्तर का होना इस बात की प्रमाणिकता को सिद्व करता है कि अभी उनकी परम्परागत मानसिकता में परिवर्तन की नितान्त आवश्यकता है। पुत्र अनिवार्यता संबंधित सारणी निम्नवत स्पष्ट है।

सारणी संख्या- 5

बेटा होने की अनिवार्यता

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	265	88.3
नहीं	14	4.7
अनिश्चितता	21	7
योग	300	100

इसी आधार पर लगभग 83.7 प्रतिशत महिलाओं ने परियोजना से जुड़ने पश्चात, महिलाओं से संबंधित अधिकार व कानून की जानकारी होना स्वीकार किया है। (महिला आयोग, हैल्पलाइन, घरेलू हिंसा, दहेज संबंधी नियम, महिला सुरक्षा से संबंधित जानकारी का होना

स्वीकार किया है) और सिर्फ 16.3 प्रतिशत महिलाओं ने इस संबंध में अपनी जानकारी का अभाव बताया है जिसे निम्न सारणी द्वारा स्पष्ट किया गया है। अतः परिणाम सकारात्मक पाये गये।

सारणी संख्या- 6

महिलाओं से संबंधित अधिकार व कानून की जानकारी

जानकारी	आवृति	प्रतिशत
हॉ	251	83.7
नहीं	49	16.3
योग	300	100

जहां तक संतुलित आहार का प्रश्न है यहां ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएँ इससे अनभिज्ञ लगती हैं लेकिन दुग्ध परियोजना से जुड़ी महिलाओं द्वारा दिये गये प्रत्युत्तर सकारात्मक हैं जैसा कि निम्न सारणी से स्पष्ट होता है।

सारणी संख्या - 7

संतुलित आहार के बारे में जानकारी

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृति	प्रतिशत
हॉ	218	72.7
नहीं	82	27.3
योग	300	100

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि 72.7 प्रतिशत महिला उत्तरदाता ने संतुलित आहार के बारे में जानकारी होने की बात को स्वीकार किया है। इन महिलाओं को संतुलित आहार की पूर्ण जानकारी है। शेष 27.3 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि उन्हें संतुलित आहार नही मिलता है। हालांकि वास्तविकता यह है कि इन महिलाओं को संतुलित आहार की जानकारी अभी तक नहीं है जो उनसे बातचीत के दौरान मालूम हुआ। समय -समय पर परियोजना द्वारा महिलाओं के स्वास्थ्य से संबंधित जानकरियों हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में कई कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं जिससे महिलाएँ अपने स्वास्थ्य के प्रति सजग हो सके।

निष्कर्ष : - प्रस्तुत शोध पत्र सहकारी आंदोलन एवं महिला सशक्तिकरण (महिला डेरी विकास परियोजना अल्मोड़ा के विशेष संदर्भ में) में उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्षतः यह देखा गया कि सर्वाधिक चयनित महिलाएँ (34.7 प्रतिशत) 28 से 38 वर्ष की आयु की हैं। जाति के आधार पर (37.5 प्रतिशत) क्षत्रिय महिलाएँ सर्वाधिक हैं। 100 प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकार किया है कि परियोजना से जुड़ कर सुखद अनुभव महसूस करती हैं इसके साथ-साथ शत-प्रतिशत महिलाओं का कहना है कि वे अपने साथी अन्य महिलाओं को भी परियोजना में जुड़ने के लिए प्रोत्साहित करेंगी। ये दोनों तथ्य स्पष्ट करते हैं कि महिलाएं जागरूक होने की ओर अग्रसर हैं। परियोजना से जुड़ने के पश्चात अन्य महिलाएँ आपसे ईर्ष्या करती हैं के उत्तर में भी सर्वाधिक (40 प्रतिशत) महिलाओं ने हाँ में उत्तर दिया। चयनित उत्तरदाताओं से प्राप्त उत्तरों से ज्ञात होता है कि 40.7 प्रतिशत महिलाएं परियोजना से जुड़ने के पश्चात अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार महसूस करती हैं जिसे आर्थिक सशक्तीकरण कहा जा सकता है। इसी प्रकार शत-प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने बताया कि उन्हें परियोजना द्वारा जागरूकता संबंधी कार्यक्रमों में परियोजना की ओर से बाहर भ्रमण में जाने का अवसर मिलता है जिससे उनके आत्मविश्वास में वृद्धि हुई। अधिकांशतः (88.3 प्रतिशत) महिलाएं अपनी रूढ़िवादी मानसिकता प्रदर्शित करते हुए बेटे होने की अनिवार्यता को आज के समय में भी स्वीकार करती हैं। इसी आधार पर लगभग 83.7 प्रतिशत महिलाओं ने परियोजना से जुड़ने पश्चात, महिलाओं से संबंधित अधिकार व कानून की जानकारी होना स्वीकार किया है। 72.7 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने संतुलित आहार के बारे में जानकारी होने की बात को स्वीकार किया है। अतः उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि महिला डेरी परियोजना से जुड़ने के पश्चात महिलाओं में काफी बदलाव आया है और वे सशक्त हुई हैं।

संदर्भ

1. मिश्र, रामचंद्र, *'सहकारिता क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका',* आनंद पद्धति में समिति संगठन एवं दुग्ध उपार्जन, रामा पुस्तक प्रतिष्ठान, लखनऊ, 2002, पृ. 3
2. वही, पृ. 3
3. वही, पृ. 3-5
4. वही, पृ. 305
5. मिश्र रामचंद्र, पूर्वोक्त, पृ. 3-5
6. Eassay on co-operetive movement in india-Rajendra prasad speech in hindi –google play -4.3** 266
7. महिला सशक्तिकरण, मनु ज्ञानकोश विकिपीडिया, http:hi:Wikipedia.org
8. कटियार, विनीत, *'भारत में महिला सशक्तीकरण एक लैंगिक समानता',* लेख 'ए जर्नल ऑफ एशिया फॉर डेमोक्रेसी एण्ड डेवलपमैंट', वाल्युम-11(4), 2011, पृ. 176
9. कुरियन वर्गीज, *'दुग्ध उत्पादन ग्रामीण विकास का एक सघन योजना',* अगस्त 2004, पृ. 13
10. सिंह, गजवीर, श्वेता सिंह, *'डेरी उद्योग ग्रामीण महिलाओं के स्वरोजगार का एक सशक्त साधन - एक समाजशास्त्रीय अध्ययन',* राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, जनवरी-जून 2015, वर्ष17, अंक 9, पृ. 69
11. तिवारी कणिका, *'महिला सशक्तिकरण का आत्मावलोकन',* कुरूक्षेत्र, अगस्त 2013, पृ. 29
12. देसाई नीरा, ऊषा ठक्कर, *'वुमन इन इण्यिन सोसाइटी',* नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली 2011, पृ. 166-167
13. तिवारी राकेश कुमार, *'महिला सशक्तीकरण एवं स्वयं सहायता समूह : एक समाजशास्त्रीय विमर्श',* राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 20 अंक 1, जनवरी-जून 2018, पृ. 58-67
14. त्रिपाठी मधुसूदन, *'महिला विकास एक मूल्यांकन',* ओमैगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

सेवानिवृत्ति तथा सामाजिक -पारिवारिक समायोजन

❑ डॉ0 कविता वर्मा

वृद्धावस्था एक प्राकृतिक अवधारणा है। यह व्यक्तियों की जैविकीय व शारीरिक क्षति को दर्शाती है। कमजोर शरीर के कारण वृद्धों को सामान्य व्यक्तियों से अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सेवानिवृत्ति, धन की कमी व वृद्धावस्था के साथ शारीरिक शिथिलता के कारण उनके जीवन के इस पड़ाव में समस्याएँ और भी बढ़ जाती हैं। सेवानिवृत्ति उनके जीवन में गहन परिवर्तन लेकर आती है, क्योंकि उनकी जीवन शैली व दिनचर्या में परिवर्तन आने लगते हैं। आर्थिक रूप से सक्षम व्यक्ति अब वृद्ध होकर अपने बच्चों व परिवार पर निर्भर हो जाता है। इसी कारण समय-समय पर विद्वानों ने वृद्धावस्था का वैज्ञानिक अध्ययन किया तथा 'वृद्धावस्था का समाजशास्त्र नामक ज्ञान की नयी शाखा का विकास हुआ।

वृद्धावस्था एक प्राकृतिक अवधारणा के साथ ही व्यक्तियों की जैवकीय व शारीरिक क्षति को प्रदर्शित करती है। वृद्धों पर अध्ययन के लिए समाजशास्त्र की नवीन शाखा 'जरायुशास्त्र ' के अस्तित्व में आने का मुख्य कारण यही है कि वृद्धों की अवस्था, प्रक्रिया तथा वृद्धों की विशिष्ट समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन हो सके ताकि वृद्धों की स्थिति की सटीक जानकारी के साथ उनके कल्याण के प्रयत्न हो सकें। जरायुशास्त्र वृद्धावस्था की सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक व जैवकीय पक्षों का अध्ययन करता है। सेवानिवृत्ति, वृद्धावस्था का एक पक्ष है जिसमें व्यक्ति को उसके आर्थिक कार्यशील जीवन से मुक्त कर दिया जाता है। साधारणतृः सेवानिवृत्ति 60 वर्ष पर मानी जाती है। सेवानिवृत्ति की अवस्था वृद्धों की नियमित दिनचर्या, सामाजिक, आर्थिक व पारिवारिक जीवन में अनेक परिवर्तन लेकर आती है। धन की कमी, कमजोर स्वास्थ्य, सामाजिक क्रियाशीलता में कमी व जीवन साथी की अनुपस्थिति में वृद्धों को नये रूप से परिवार में समायोजन करना होता है। अतः प्रस्तुत अध्ययन सेवानिवृत्ति के बाद वृद्धों के सामाजिक व पारिवारिक समायोजन को दर्शाता है।

वृद्धावस्था की कोई भी परिभाषा निर्धारित नहीं है किन्तु यह सर्वविदित है कि यह मानव जीवन के चक्र का अन्तिम पड़ाव है। सभी व्यक्तियों की आयु की गणना उनके द्वारा पूरे किये गये वर्षो से करते हैं। किन्तु कहीं भी ये नहीं देखा गया कि वृद्धावस्था के चिन्हों व पूरे किये गये वर्षो का सभी व्यक्तियों पर शारीरिक व जैवकीय प्रभाव एक समान रहा हो। वृद्धावस्था को एक जैवकीय, मनोसामाजिक व व्यवहारात्मक पहलू कहा जा सकता है। साधारणतः देखा गया है कि बालों का सफेद होना, त्वचा में झुर्रियाँ पड़ना, शारीरिक रूप से कमजोर होना, याददाश्त में कमी, दृष्टि बाधित होना, बच्चों का गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश तथा पौत्र-पौत्रियों का आगमन वृद्धावस्था का प्रारम्भ माना जाता है। चन्द्रपाल सिंह[1] के अनुसार वृद्धावस्था का प्रारम्भ किसी भी व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक स्थितियों पर आधारित होता है न कि आयु के अनुसार। वे मानते हैं कि वृद्धावस्था एक व्यक्तिगत प्रक्रिया है तथा यह अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग गति से होती है। यदि यह कहा जाय कि वृद्धावस्था कब प्रारम्भ होती है तो कालक्रमानुसार आयु निर्धारण को हमारे समाज में बहुत महत्व दिया गया है। जैसे भारत में 60 वर्ष की आयु को वृद्धावस्था का प्रारम्भ माना जाता है, अमेरिका व कनाडा में 65 वर्ष, नार्वे, स्वीडन, डेनमाक्र में 67 वर्ष और रूस में पुरूषों की 60 वर्ष और महिलाओं को 55 वर्ष की आयु में वृद्धावस्था के लाभ मिलने आरम्भ होते हैं। इसी प्रकार दक्षिणी अफ्रीका में पुरूष की स्थिति में 65 वर्ष महिला के लिए 55 वर्ष की आयु निर्धारित की गयी है।[2]

मेडोक्स[3] ने सेवानिवृत्ति को उत्पादक जीवन व अनुत्पादक जीवन के मध्य की एक महत्वपूर्ण घटना माना है। राबर्ट सी0 अचले[4] ने सेवानिवृत्ति को एक सामाजिक संस्था के रूप मे देखा तथा इसे एक सामाजिक आविष्कार माना, जिसमें एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में व्यक्ति अपने कामकाजी जीवन से मुक्त हो जाता है। अतः सेवानिवृत्ति एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति निर्धारित आयु के बाद प्रवेश करता है, जो

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर : समाजशास्त्र राजकीय महाविद्यालय बी0बी0 नगर, बुलन्दशहर (उ.प्र.)

कि उसके क्रियाशील जीवन की प्रकृति से बिल्कुल अलग होती है। यह औद्योगिक समाजों का एक सामाजिक आविष्कार है, जो कि सर्वप्रथम 1888 मे जर्मनी में प्रकाश में आया। साधारणता 58 या 60 तथा कुछ शैक्षिक संस्थाओं में 62 या 65 वर्ष की आयु के बाद व्यक्ति को उसकी आर्थिक सेवाओं से मुक्त कर दिया जाता है, इस अवस्था में उन्हें अपने क्रियाशील जीवन, लगातार मिलने वाले वेतन व सामाजिक -आर्थिक प्रस्थिति को त्यागना पड़ता है तथा बदले में कुछ संस्थानों से उसे सामाजिक सुरक्षा के रूप में एक छोटी मासिक आय 'पेन्शन' प्राप्त होती है। परम्परागत भारतीय समाज में भी गृहस्थ आश्रम से वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करने की प्रक्रिया क्रियाशील सामाजिक व आर्थिक जीवन से स्वयं को अलग करने की ही प्रक्रिया है।

21वीं सदी के साथ ही पूरे विश्व में वृद्ध जनसंख्या में बढ़ोत्तरी होती जा रही है। दुनिया के विभिन्न देशों में वृद्धों की जनसख्या बढ़ रही है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। भारत की 1951 की जनगणना में वृद्धों का प्रतिशत 5.48 था जो कि 2001 में 7.5 तथा 2011 की जनगणना में 8.6 प्रतिशत हो गया। 2011 की जनगणना के अनुसार हमारे यहाँ वृद्धों की जनसंख्या 10.4 करोड़ थी जिसके 2022 तक बढ़कर 17.7 करोड़ और 2050 तक 32.4 करोड़ हो जाने का अनुमान है। एक ओर बदलती जनसंख्यात्मक संरचना तथा दूसरी ओर औद्योगीकरण, नगरीकरण, बढ़ती औपचारिक व तकनीकी शिक्षा, शहरों व दूसरे देशों में रोजगार के कारण हमारा समाज व परिवार व्यापक परिवर्तनों से गुजर रहा है। हमारे समाज की बुनियाद 'संयुक्त परिवार' एकाकी परिवारों में परिवर्तित होते जा रहे है। आधुनिकता के आवगमन के साथ ही परिवार पहले की भांति उतना अधिक देखभाल करने वाला नहीं रहा, जो कि अपने सदस्यों के लालन-पालन से लेकर मृत्यु होने तक उनकी देखभाल में जुटा रहता था। अब परिवार में वृद्ध अकेले रहने को मजबूर हैं। उनकी देखभाल न होने के कारण उनमें एकाकीपन व अलगाव की भावना पनपने लगती है, जो कि उनके सामाजिक व पारिवारिक समायोजन में कमी लाती है।

जे0 एस0 राठौर[5] ने भी माना है कि संयुक्त परिवार व्यवस्था में परिवार के असहाय, अनाथ, विधवा, विधुर, परित्यक्त, सेवानिवृत्त व वृद्ध लोगों के लिए आर्थिक मनोवैज्ञानिक व सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाती है। संयुक्त परिवार को इसी कारण एक 'बहुमुखी' कल्याणकारी योजना' माना है। आधुनिक भारत में औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण, धर्म के महत्व में कमी, तीव्र सामाजिक गतिशीलता तथा व्यक्तिवादी व भौतिकतावादी मूल्यों के प्रसार से संयुक्त परिवार तेजी से विघटित होते जा रहे हैं। संयुक्त परिवारों के विघटन से परिवारों पर आश्रित व्यक्तियों का जीवन समस्याग्रस्त होता जा रहा है। इसी कड़ी मे आगे लिखा है कि समाज का वृद्ध वर्ग जो एक ओर समाज की पुरातन व्यवस्थाओं एवं परम्पराओं का पोषण करता है वो दूसरी ओर अपने जीवन में अर्जित व्यापक आनुभविक ज्ञान से नवीन पीढ़ी का मार्ग दर्शन करते हुए उन्हें प्रगति की दिशा मे अग्रसारित करता है। इस प्रकार वृद्ध वर्ग समाज के अतीत व भविष्य के बीच एक सशक्त सेतु के रूप में कार्य करता है।

श्रीनाथ सहाय[6] के अनुसार माता-पिता अपने जीवन की बचत को अपने बच्चों की पढ़ाई लिखाई, उनके रहने के लिए घर के निर्माण, शादी-विवाह पर और अंततः उन्हें बसाने पर खर्च कर डालते हैं और इस तरह वह धन से विहीन हो जाते हैं और उनके पास पेन्शन (बड़ी संख्या में सेवानिवृत्त व्यक्तियों के लिए पेन्शन नहीं होती) अथवा अन्य संसाधन नहीं बच पाते और वे जीवित रहने के लिए संघर्ष ही कर रहे होते हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की रिपोर्ट (1995-96) में उल्लेख किया गया है कि करीब 31 प्रतिशत वृद्ध पुरूष और 71-76 प्रतिशत वृद्ध महिलाएँ पूरी तरह दूसरों पर निर्भर पायी गयीं।

देसाई व नाईक[7] ने ग्रेटर मुम्बई में सेवानिवृत्त वृद्धों पर हुए अध्ययनों में देखा कि उनके बच्चे उनकी देखभाल करते हैं साथ ही नियमित आय की कमी के कारण वह आर्थिक समस्याओं का भी सामना कर रहे हैं।

सुमंगला[8] ने अपने अध्ययन मे खोजा कि सेवानिवृत्ति के पश्चात वृद्ध अपने सामाजिक व पारिवारिक समायोजन के लिए स्वयं को परिवार व आसपास की विभिन्न क्रियाओं में व्यस्त रखते हैं, जिससे उनके जीवन में सकारात्मक सोच बढ़ी है व मानसिक स्वास्थ्य में लाभ हुआ। इस क्रियाशीलता के कारण परिवार के साथ अन्तक्रियाएँ बढ़ी तथा आसपास के लोगों के साथ स्वयं को जुड़ा रखने की प्रवृत्ति बढ़ी, जिससे उनके सेवानिवृत्ति के बाद के सुसमायोजन करने में मदद मिली।

विजय कुमार व राजा रेड्डी[9] ने सेवानिवृत्त वृद्धों पर अध्ययन मे निष्कर्ष दिया कि परिवार में सुसमायोजन के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी कुछ बचतें वृद्धावस्था

के लिए बचायें ताकि आवश्यकता पडने पर उससे लाभ ले सकें। अध्ययन के दौरान यह भी देखा गया जो पेंशन प्राप्तकर्ता थे वह अपने बच्चों को आर्थिक सहायता तथा समय-समय पर उपहार भी देते थे, इससे वह परिवार में स्वयं को क्रियाशील व समायोजित महसूस करते थे। इसके साथ ही संयुक्त परिवार मे रहने वाले वृद्ध स्वयं को सामाजिक रूप से सुरक्षित महसूस करते हैं।

अनिल कुमार तथा अन्य[10] द्वारा उत्तर प्रदेश के रायबरेली जनपद में स्थित सरेनी विकास खण्ड के इन्टर कॉलिजों से सेवानिवृत्त शिक्षकों पर किये गये अध्ययन मे प्रकाश मे आया कि 45 प्रतिशत सूचनादाताओं की पारिवारिक निर्णयों में निर्णयात्मक भूमिका होती है जबकि 10 प्रतिशत की कोई भूमिका नहीं थी। सेवानिवृत्त व्यक्ति, 45 प्रतिशत अपने खाली समय में घरेलू कार्य करते हैं तथा बहुत कम अर्थात 5 प्रतिशत ही अपने रिश्तेदारों के यहॉ जाना पसन्द करते हैं। अपने अध्ययन मे इन्होने आगे बताया कि 40 प्रतिशत सूचनादाताओं के सामाजिक समायोजन मे बाधक तत्व खराब स्वास्थ्य है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था 20 प्रतिशत सूचनादाताओं के लिए असमायोजन का कारण है। इसके अतिरिक्त नयी पीढ़ी का व्यवहार तथा बदलते मूल्य भी उनके समायोजन में कठिनाई लाते हैं। वृद्धों में बढ़ते तनाव का कारण समाज में विभिन्न परिवर्तन, मूल्यों का संक्रमण, तथा नई पीढ़ी का व्यवहार भी जिम्मेदार है। युवा लोग अपने बुर्जुगों के प्रति संवेदनशील होकर साथ ही वृद्ध लोग भी वर्तमान बदलावों के अनुसार स्वयं में अनुकूलन करके ही जीवन के अंतिम पड़ाव में समायोजन संभव कर सकते हैं।

अग्रवाल रमेश चन्द्र[11] के अनुसार वर्तमान में वृद्धों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है जिसका कारण पोषण व भोजन की सुधरती स्थिति, चिकित्सा विज्ञान की प्रगति, विभिन्न क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार तथा स्वास्थ्य के प्रति बढ़ते ज्ञान व जाग्रति से मृत्यु दर में कमी तथा जीवन प्रत्याशा में वृद्धि हुई है। ऐसी स्थिति में जनसंख्या मे वृद्धों का प्रतिशत बढ़ता जा रहा है। **इकडैंट**[12] ने बताया कि व्यक्तिगत स्तर पर अवकाश प्राप्ति आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन, कामकाजी जीवन से वापसी तथा एक भूमिका से दूसरी भूमिका में संक्रमण है जो कि अनुकूलन की प्रक्रिया को आसान बनाता है। वे आगे कहते हैं सेवानिवृत्ति एक ऐसी घटना है जो कि व्यक्ति के जीवन में अचानक आती है, हालांकि वे पहले से ही सेवानिवृत्ति की घटना से विदित होते हैं किन्तु वे जीवन की बाद की घटनाओं व समस्याओं का सामना करने के लिए मानसिक व आर्थिक रूप से तैयार नहीं होते हैं।

सेवानिवृत्ति वृद्धों के लिए एक ऐसी अवस्था है जिसमे उनके सामाजिक, आर्थिक व पारिवारिक जीवन में अनेक परिवर्तन आते हैं। एक नियमित दिनचर्या, जिसका वर्षो से पालन किया गया, मे आमूल बदलाव आता है। नियमित आय से वंचित हो जाते हैं, हालांकि जो पेन्शन प्राप्तकर्ता है उन्हें आर्थिक कमी इतनी नहीं रहती, जितनी कि पेन्शन से वंचित व्यक्तियों को रहती है। अक्सर सेवानिवृत्ति पर मिलने वाले विभिन्न फंड कई बार घर बनवाने, बच्चों की शिक्षा, व्यवसाय, विवाह तथा कभी-कभी स्वास्थ्य समस्याओं पर भी खर्च हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में वह पूरी तरह अपने परिवार पर निर्भर हो जाते हैं और परिवर्तित सामाजिक प्रस्थिति में उन्हें अनुकूलन करने में परेशानी होती है और स्वयं को असहज पाते हैं। विभिन्न अध्ययनों में देखा गया कि स्वयं को अलग -अलग तरह के कार्यो मे व्यस्त रखने, जीवन के प्रति सकारात्मक सोच, स्वास्थ्य के प्रति सचेत तथा बच्चों से अधिक अपेक्षा न रखने वाले स्वयं को अधिक समायोजित महसूस करते हैं।

रेवती, गोनका व खादी[13] ने अपने अध्ययनों में माना कि वृद्धों के आयु तथा सामाजिक व पारिवारिक समायोजन में सहसम्बन्ध होता है। जो हाल ही में सेवानिवृत्त हुए उनके पास पर्याप्त धन व आर्थिक संसाधन होते हैं, स्वास्थ्य भी तुलनात्मक रूप से अच्छा होता है व अपने सामाजिक-पारिवारिक जीवन में क्रियाशील होने के कारण उनका जीवन के प्रति सकारात्मक अभिविन्यास होता है। किन्तु 75 व 80 वर्ष से अधिक होने के साथ-साथ वृद्धों का जीवन पहले की तरह उतना क्रियाशील नहीं हो पाता तथा वह अकेलापन महसूस करते हैं।

जयश्री[14] ने कर्नाटक में अपने अध्ययन के दौरान निष्कर्ष दिया कि वह सेवानिवृत्त वृद्ध जो कि स्वयं को किसी न किसी कार्य में व्यस्त रखते तथा आवश्यकतानुसार अपने बच्चों को उनके कार्यो में उन्हें सहयोग देते और किसी संगठन से जुड़े थे, उनका जीवन के प्रति अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण रहा। सेवानिवृत्ति के बाद भी स्वयं को एक नियमित दिनचर्या में बांधना, अपने सुसमायोजन के लिए आवश्यक मानते थे।

सुशील अरोड़ा[15] ने इस बात पर बल दिया कि सेवानिवृत्ति व वृद्धावस्था की समस्याओं व आवश्यकताओं

को समझने व सामना करने के लिए जन जागरूकता कार्यक्रमों द्वारा लोगों को पहले से ही अवगत कराया जाये ताकि वे अपने जीवन के अवकाश के समय में स्वयं को Hkyh Hkkfr lek;kstr dj ldsA **माथुर व सेन**[16] ने निष्कर्ष दिया कि वृद्धावस्था मे सामाजिक-पारिवारिक सुसमायोजन व व्यक्ति की अच्छी आर्थिक स्थिति मे सहसम्बन्ध होता है। निम्न आय बढ़ती आयु के साथ परिवार में सुसमायोजन को कम करती है।

राजीव कुमार[17] ने अपने वाराणसी के अध्ययन में निष्कर्ष दिया कि अधिकांश वृद्ध सेवानिवृत्ति के बाद अपने परिवार मे पूर्व की भांति ही आदर व सम्मान प्राप्त करते हैं, उनके अपने बच्चों के साथ पहले जैसे ही संबंध हैं, उन्हीं उनकी रूचि व स्वाद के अनुसार भोजन प्राप्त होता है, परिवार में आगन्तुकों के समक्ष उनकी उपस्थिति को पसन्द करते हैं, परिवार के सदस्यों के साथ बैठकर रेडियों सुनते एवं टी0वी0 देखते हैं, पारिवारिक समस्याओं को सुलझाने मे उनसे परामर्श किया जाता है। वे अपने खाली समय को प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत करते हैं तथा उनका घर हर तरह से सम्पन्न एवं खुशहाल हैं।

पचौरी, जे0पी0 एवं अन्य[18] ने उत्तराखण्ड के जनपद पौड़ी में स्थित श्रीनगर शहर में वृद्धों पर एक अध्ययन किया। इसमें निष्कर्ष स्वरूप बताया कि वृद्ध किस प्रकार की समस्याऐं अपने जीवन के अन्तिम पड़ाव में महसूस करते हैं। इसमें पारिवारिक सामंजस्य, कमजोर आर्थिक स्थिति तथा सर्वाधिक वृद्ध शारीरिक शिथिलता व स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से ग्रस्त पाये गये। इसमें वृद्धों ने यह भी स्वीकार किया कि समय के साथ समस्याऐं बढ़ती हैं तथा परिवार वालों की उपेक्षा मानसिक तनाव में वृद्धि करती है। **नसरीन असिया**[19] का मानना है कि परिवार की संरचना व कार्यो में परिवर्तन हुआ है। महिलाओं की नवीन भूमिका कि वह घर के बाहर भी अपने कार्यो को संभालती हैं, युवा अधिक धन कमाने की लालसा मे स्वार्थ केन्द्रित हो रहे हैं तथा व्यक्तिवादिता बढ़ती जा रही है। इन सभी का प्रभाव यह हुआ कि परिवार में जो युवा व बच्चे एक-दूसरे व बुजर्गो का ध्यान रखते थे, में कमी आयी है। इस परिवर्तन के कारण बुजुर्गो को घर में समायोजन मे प्रतिकूलन का सामना करना पड़ रहा है। **हमारा देश** व्यापक सामाजिक परिवर्तनों से गुजर रहा है क्योंकि वर्तमान मे देखा जा रहा है कि संयुक्त परिवार जो कि हमारे समाज की बुनियाद होते हैं, वे परिवर्तित होकर एकाकी परिवार बनते जा रहे हैं, क्योंकि युवा औपचारिक शिक्षा प्राप्त करके रोजगार व अधिक धन को कमाने की चाह में अपने पैतृक परिवार को छोड़कर दूसरे शहरों व देशों मे पलायन कर जाते हैं। इस स्थिति में वृद्धों को अपनी देखभाल व एकाकीपन की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। निम्न स्वास्थ्य व निम्न आर्थिक स्तर उनकी समस्याओं को और बढ़ाता है। भारत में वृद्धो ंके लिए 'सांविधिक कल्याण' की अवधारणा नवीन है क्योकि अभी तक संयुक्त परिवार ही अपने सभी आयु के सदस्यों के लिए आवश्यक सुरक्षा, देखभाल, मानसिक संतुष्टि व सामाजिक प्रस्थिति प्रदान कराते रहे हैं। किन्तु संयुक्त परिवारो ंकी संरचना में परिवर्तन तथा मूल्य संरचना, जो कि समूह केन्द्रित से व्यक्ति केन्द्रित होती जा रही है, में परिवर्तन से वर्तमान में वृद्धों के समायोजन की समस्या बढ़ती जा रही है। इन्हीं सभी कारणों से राज्य को वृद्धों के कल्याण व सुरक्षा के वैधानिक उपचार करने पड़ रहे है। 2007 में 'माता-पिता व वरिष्ठ नागरिकों की देखभाल व कल्याण अधिनियम' अस्तित्व मे आया। इसके माध्यम से वृद्धों की देखभाल व सुरक्षा के लिए कानूनी प्रावधानों को लागू किया गया जो कि वृद्धों के उत्तराधिकारियों को उनकी देखभाल व भरण-पोषण के लिए बाध्य करता है तथा प्रत्येक जिले में निराश्रित वृद्धों के कल्याण के लिए 'आश्रय स्थल' खोलने को राज्य को निर्देशित करता है।

अध्ययन का औचित्य - समाज के साथ अंतःक्रिया की प्रक्रिया में वृद्ध बहुत ही महत्वपूर्ण कड़ी होते हैं। क्रियाशील जीवन काल में उनके द्वारा किये गये कार्यो को नकारा नहीं जा सकता। आज के समाज का अस्तित्व व स्वरूप उन्हीं के अथक प्रयासों का परिणाम है। अपने जीवन के बहुमूल्य वर्ष तथा समय देकर वह अपने परिवार का लालन-पालन करते हैं तथा नवीन पीढ़ी को समाज में स्थापित करवाते व जोड़ते हैं। अतः यह समाज का बहुत सम्मानीय वर्ग है जो कि समाज की संस्कृति का संरक्षण कर उसे युवाओं में हस्तान्तरित करता है तथा नवीन पीढ़ी को समाज व परिवार में समायोजित करवाता है। उनके द्वारा अर्जित की गयी धन व सम्पत्ति परिवार व समाज दोनों की निरन्तरता तथा प्रगति के लिए बहुत ही आवश्यक होती है। इसी कारण मनुस्मृति में लिखा गया है कि -

अभिवादयेद् वृद्धांश्च दयाच्चैवासनं स्वकम्।
कृतांजलिरूपासीत गच्छतः पृष्ठवोघन्वियात्।। [20]

अर्थात वृद्धों का सदा सम्मान करना चाहिए, यदि वे

हमारे समीप खड़े हैं तो उठकर पूर्ण सम्मान के साथ उन्हें अपना आसन दें तथा हाथ जोड़कर उनके समीप बैठकर उनके पूछे गये प्रश्नों का उत्तर दें तथा उनके जाते समय पूर्ण सम्मान के साथ उन्हे प्रणाम कर विदा करें। जीवन के अंतिम चरण में जबकि उनकी शारीरिक शक्ति क्षीण होने लगती है तथा वह अपने द्वारा किये गये बहुमूल्य योगदान के कारण एक सम्मानीय जीवन पूर्ण करने के अधिकारी होते हैं। किन्तु वर्तमान में उनकी स्थिति दयनीय होती जा रही है। उन्हें बोझ समझा जा रहा है समाज में उनकी सम्मानीय स्थिति दिलवाने मे समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। वृद्धा आश्रमों की बढ़ती संख्या तथा वृद्धों के लिए बनते नवीन कानूनी प्रावधान इसी ओर संकेत दे रहे हैं कि परिवार में उनकी उपेक्षा हो रही है। इसी कारण पिछले कुछ दशकों से वृद्धों की समस्याओं के अध्ययन के लिए ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में शोध हो रहे हैं। प्रस्तुत अध्ययन भी वृद्धों के एक समूह, जो कि सेवानिवृत्त है, के वर्तमान जटिल समाज में सामाजिक तथा पारिवारिक समायोजन को जानने का एक प्रयास है। सेवानिवृत्त वृद्धों पर पहले भी बहुत से अध्ययन हो चुके हैं तथा वे महानगरों व छोटे शहरों पर ही केन्द्रित हैं। प्रस्तुत शोध में गाजियाबाद शहर के सेवानिवृत्त वृद्ध पुरूषों का अध्ययन किया गया है। गाजियाबाद शहर को एक औद्योगिक नगर के रूप में भी देखा जाता है, वहीं ये शहर राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र होने के साथ-साथ अपने आसपास के बहुत से गांवों से भी जुड़ा है, जिसके कारण यहाँ के सामाजिक व्यवहार में नगरीय व स्थानीय परिवेश का मिश्रण देखने को मिलता है। इसी परिपेक्ष्य में इस शोध पत्र में सेवा निवृत्त वृद्ध पुरूषों के सामाजिक-पारिवारिक समायोजन को उनके परिपेक्ष्य में जानने का एक प्रयास है।

उद्देश्य - प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देंश्य गाजियाबाद शहर में विभिन्न प्रकार की सेवाओं से निवृत्ति के बाद वृद्ध पुरूष के पारिवारिक समायोजन तथा उनके पास उपलब्ध रिक्त समय को व्यतीत करने के तरीकों की जानकारी लेना है, जो कि उनके परिवार में समायोजन को दर्शाता है।

शोध प्रारूप - प्रस्तुत शोध गाजियाबाद शहर मे सेवानिवृत्त (वृद्ध पुरूषों) के पारिवारिक समायोजन से सम्बन्धित तथ्यों पर आधारित है। इसमे अन्वेषणात्मक अनुसंधान प्रारूप का चयन किया गया। प्रस्तुत अध्ययन में गाजियाबाद में सेवानिवृत्त वृद्धों की संख्या व उनके निवास की सही स्थिति की जानकारी की कोई सूची न होने के कारण गैर सम्भावना प्रतिदर्शन के अन्तर्गत सौद्देश्य प्रतिदर्शन तकनीक का प्रयोग करते हुए 200 वृद्धों का अध्ययन हेतु चयन किया गया है। इसमें अनुसूची प्रणाली का प्रयोग करते हुए कुछ प्रश्न पूछे गये तथा प्रश्न करने से पहले उनसे सामान्य बातें करते हुए एक आत्मिक वार्तालाप का वातावरण बनाया गया, ताकि परिवार से सम्बन्धित प्रश्न करने पर वह असहज महसूस न करें।

तालिका संख्या - 1

सूचनादाताओं की आयु संरचना

आयु समूह	आवृत्ति	प्रतिशत
58-63 वर्ष	73	36.5
64- 68 वर्ष	62	31.0
69- 74 वर्ष	35	17.5
75-80 वर्ष	20	10.0
80 वर्ष से अधिक	10	5.0
योग	200	100

58 वर्ष को आयु समूह संरचना की निम्न सीमा रखने का कारण है कि बहुत से संगठनों से सेवा निवृत्ति 58 वर्ष पूर्ण करने पर हो जाती है। अध्ययन के दौरान सर्वाधिक सेवानिवृत्त 36.5 प्रतिशत 58 वर्ष से 63 वर्ष तक की आयु के सूचनादाता थे। सबसे कम (5.0 प्रतिशत) सूचनादाता 80 वर्ष से अधिक आयु के थे। 75 से 80 वर्ष तक की आयु के 10 प्रतिशत, 69 से 74 वर्ष तक की आयु समूह के 17.5 प्रतिशत तथा 64 से 68 वर्ष तक की आयु समूह के 31 प्रतिशत सूचनादाता उपलब्ध रहे। यह सूचना प्रदर्शित करती है कि आयु वृद्धि के साथ-साथ सूचनादाताओं की उपलब्धता कम होती गयी।

तालिका संख्या - 2

परिवार का स्वरूप

परिवार	आवृत्ति	प्रतिशत
संयुक्त परिवार	148	74.0
एकाकी परिवार	52	26.0
योग	200	100

सर्वाधिक सूचनादाता 74 प्रतिशत संयुक्त परिवार के साथ निवास कर रहे थे तथा वे स्वयं को सुरक्षित महसूस करते हैं। जबकि 26 प्रतिशत सूचनादाता एकाकी परिवार में रहे थे जिसका कारण उनके बच्चों का दूसरे शहरों व

देशों में कार्य करना था। बढ़ती आयु के साथ अकेले रहने के कारण इन सूचनादाताओं में असुरक्षा व अकेलेपन की भावना विकसित हो रही थी।

तालिका संख्या – 3

सूचनादाताओं की आय के स्रोत

आय के स्रोत	आवृत्ति	प्रतिशत
पेन्शन	147	60.74
पुनः रोजगार	06	4.47
बचतें	21	8.67
सम्पत्ति	22	9.09
अन्य	22	9.09
कोई आय नहीं	24	9.91
योग	242	99.97

बहुविकल्पीय उत्तर

उपर्युक्त सूचना बहुविकल्पीय उत्तरों पर आधारित है क्योंकि बहुत से सूचनादाताओं द्वारा एक से अधिक आय के स्रोत बताये गये। सर्वाधिक, 60.74 प्रतिशत सूचनादाता पेन्शन प्राप्तकर्ता थे। वे एक नियमित आय प्राप्त कर रहे थे तथा इसे वे अपनी वृद्धावस्था के लिए बहुत आवश्यक भी मानते हैं, जो कि उनके वित्तीय आत्मनिर्भरता का एक अच्छा साधन है। 2.47 प्रतिशत सूचनादाता पुनः रोजगार में थे और वहाँ से आय प्राप्त कर रहे थे। 8.67 प्रतिशत सूचनादाता अपनी विभिन्न वित्तीय योजनाओं में बचतों से प्राप्त आय को भी प्राप्त कर रहे थे। 9.09 प्रतिशत अपनी सम्पत्ति से नियमित आय प्राप्त कर रहे थे तथा 9.09 प्रतिशत ही सूचनादाताओं के पास आय के अन्य स्रोत जैसे बच्चों या निकट रिश्तेदारों के साथ किसी व्यवसाय से आय प्राप्त कर रहे थे। किन्तु 9.91 प्रतिशत सूचनादाताओं के पास आय का कोई भी नियमित साधन नहीं था तथा वे अपनी जरूरतों के लिए अपने बच्चों पर ही आश्रित थे।

तालिका संख्या – 4

परिवार के मुखिया के रूप में प्रस्थिति

प्रस्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
मुखिया है	150	75
मुखिया नहीं है	50	25
योग	200	100

परिवार के सभी तथा महत्वपूर्ण निर्णय लेने में सर्वाधिक, 75 प्रतिशत सूचनादाता अभी भी परिवार में मुखिया के रूप में अपनी प्रस्थिति स्वीकार करते हैं। बच्चे उनके अनुभवों से सीख लेना पसन्द करते हैं। सूचनादाता स्वयं को सम्मानजनक स्थिति मे मानते हैं। वे ये भी मानते हैं कि घर व परिवार की सभी जिम्मेदारियाँ वे ही पूरी करते हैं तथा नातेदारी को निभाने के तरीके भी उनकी सलाह से परिवार में माने जाते हैं। इसके लिए सूचनादाता अपनी मजबूत आर्थिक स्थिति व अच्छे स्वास्थ्य को भी जिम्मेदार मानते हैं तथा घर के महत्वपूर्ण कार्यो की पहल भी वे ही करते हैं। किन्तु इसके विपरीत 25 प्रतिशत सूचनादाता स्वयं को परिवार के मुखिया की स्थिति में नही मानते तथा उनके अनुसार परिवार के कुछ मामलों में उनसे सलाह ली जाती है। कभी –कभी वे मानते हैं कि मात्र महत्वपूर्ण निर्णय व कार्यो की केवल सूचना ही उन्हें दी जाती है। जिसका कारण वे वृद्ध व कमजोर होना तथा खराब स्वास्थ्य व बच्चों पर आश्रित होना बताते हैं।

तालिका संख्या – 5

निर्णय लेने की प्रक्रिया में बुजुर्गो की भूमिका

भूमिका	आवृत्ति	प्रतिशत
सदैव	97	48.5
अकसर	53	26.5
कभी–कभी	44	22.0
कभी नहीं	06	3.0
योग	200	100

महत्वपूर्ण निर्णय लेने की प्रक्रिया में सर्वाधिक 48.5 प्रतिशत सूचनादाता परिवार के सभी महत्वपूर्ण निर्णय लेने की भूमिका मे अग्रणी हैं। बच्चों की शिक्षा, व्यवसायिक कार्य, महत्वपूर्ण आर्थिक निर्णय, विवाह सम्बन्धित निर्णय, घरेलू खर्चे, धार्मिक व सामाजिक कार्य तथा नातेदारी सम्बन्धों को निभाने में उन्हीं की भूमिका मुख्य है, जो प्रदर्शित करती है कि सेवानिवृत्ति का उनके निर्णय लेने की शक्ति पर कोई भी नकारात्मक प्रभाव नहीं है। 26.5 प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि अक्सर महत्वपूर्ण निर्णयों में उनकी राय ही सर्वोच्च होती है तथा कुछ निर्णय परिवार के सदस्य अपनी सुविधानुसार लेते हैं। 22 प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि परिवार के निर्णयों में उन्हें कभी–कभी महत्व दिया जाता है। 3 प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि महत्वपूर्ण निर्णयों मे उनसे सलाह नहीं ली जाती, जिसके लिए वे आर्थिक निर्भरता, बच्चों का अधिक शिक्षित व उच्च पदों पर होना तथा अत्याधुनिक जटिल समाज मे वह अपनी समझ को कम ऑकते हैं।

तालिका संख्या- 6
स्वास्थ्य की स्थिति

स्वास्थ्य	आवृत्ति	प्रतिशत
अच्छा	57	28.5
साधारण	92	46
खराब	51	25.5
योग	200	100

तालिका से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक, 46 प्रतिशत, सूचनादाताओं का स्वास्थ्य साधारण है। वे किसी लम्बी बीमारी से ग्रसित नहीं है तथा खानपान में ध्यान व समय पर दवाईयों के सेवन से वे सामान्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं। 25.5 प्रतिशत सूचनादाताओं का स्वास्थ्य खराब पाया गया तथा वे किसी न किसी लम्बी बीमारी जैसे अस्थमा, मधुमेह, गठिया, शारीरिक कमजोरी तथा श्रवण में कमी तथा साधारण ह्रदय रोग से पीड़ित थे तथा उन्हे समय -समय पर चिकित्सीय परामर्श व नियमित दवाईयों का सेवन करना पड़ रहा था। 28.5 प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि उनका स्वास्थ्य अच्छा है तथा वे किसी बीमारी से पीड़ित नहीं हैं। इनके अनुसार वे एक नियमित दिनचर्या, समय पर व पोषक भोजन तथा क्रियाशील जीवन द्वारा स्वयं को स्वस्थ रख रहे थे। ये सूचनादाता मानते हैं कि अच्छा स्वास्थ्य होने से वे स्वयं को परिवार में सुमायोजित कर पा रहे हैं तथा अपने कार्यो के लिए किसी पर आश्रित नहीं हैं।

तालिका -7
विभिन्न क्रियाओं में वृद्धों की व्यस्तता

क्रियाएँ	आवृत्ति	प्रतिशत
सामाजिक	22	10.83
धार्मिक	08	3.94
राजनैतिक	01	0.49
किसी मे नहीं	172	42.72
योग	203	99.97

बहुविकल्पीय उत्तर

स्वयं को विभिन्न संस्थाओं से जुड़ा होने की स्थिति जानने पर ज्ञात हुआ अधिकतर 84.72 प्रतिशत सूचनादाता अपने रिक्त समय को व्यतीत करने के लिए किसी भी संगठन या संस्था से नहीं जुड़े थे, जिसका कारण जानने पर ज्ञात हुआ इस तरह कि किसी संस्था को वह नहीं जानते जहॉ जाकर वह अपना समय व्यतीत कर सकें। जबकि अन्य ने स्वयं को किसी संस्था और कुछ तो एक से अधिक संस्थाओं से जुड़े थे। 10.83 प्रतिशत सूचनादाता सामाजिक संस्था व कार्यो मे सहभागिता कर रहे थे जैसे -क्लब, अपनी जातीय संस्था, अपनी कालोनी की संस्था, स्कूल तथा स्वयं सेवी संगठन जैसे - वरिष्ठ नागरिक कल्याण समिति, यू0 पी0 पेन्शनर्स समिति आदि। 3.94 प्रतिशत किसी धार्मिक संस्था जैसे मन्दिर गुरूद्वारा समिति, सत्संग सभा तथा 0.49 प्रतिशत सूचनादाता राजनीतिक पार्टी से जुड़कर अपने रिक्त समय को व्यतीत करना पसन्द करते।

तालिका संख्या : 8
वृद्धों द्वारा रिक्त समय का सदुपयोग

कार्य	आवृत्ति	प्रतिशत
टी0वी0 देखना	157	36.25
धार्मिक कार्य	08	1.84
छोटे बच्चो की देखभाल	86	19.86
लोगों से मिलना व बातचीत	111	25.63
अन्य	71	16.39
योग	433	99.97

बहुविकल्पीय उत्तर

सर्वाधिक सूचनादाता (36.25 प्रतिशत) अपने खाली समय में टी0वी0 मे अपने पसन्द के कार्यक्रमों को देखने में व्यस्त रहते हैं। 25.63 प्रतिशत सूचनादाता अपने परिवार, पोते पोतियों, मित्रों व पड़ोसियों के साथ बातचीत करके समय व्यतीत करना पसन्द करते हैं। 19.86 प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि अपने रिक्त समय में वे पोते -पोतियों की देखभाल व पढ़ाने में व्यतीत करते हैं। 16.39 सूचनादाता अपने अतिरिक्त उपलब्ध समय में अन्य क्रियाओं जैसे घरेलू कार्यो के लिए खरीददारी करना, बिलों का भुगतान, रसोई का सामान लाना तथा शयन मे व्यतीत करते हैं। 1.84 प्रतिशत सूचनादाता अपने रिक्त समय में धार्मिक व पूजा के कार्यो व सेवा में व्यतीत करना पसन्द करते हैं।

तालिका संख्या - 9
धन की कमी व वृद्धावस्था के कारण अपने मनोरंजन का त्याग

स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशत
सदैव	6	3.0
अक्सर	56	29.0
कभी नहीं	136	68.0
योग	200	100.0

सर्वाधिक सूचनादाता (68 प्रतिशत) मानते हैं कि धनाभाव व वृद्धावस्था के कारण उन्होनें कभी अपनी रूचियों व मनोरंजन का त्याग नहीं किया। 29 प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि स्थिति सदैव उनके अनुसार नहीं होती तथा पैसे की कमी व अधिक वृद्ध होने के कारण वे अपनी रूचियों व मनोरंजन जैसे कहीं यात्रा करना, नातेदारी मे जाना व दूर के परिवारिक समारोह में जाना वह टालते हैं। 03 प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि धनाभाव व अपनी वृद्धावस्था मे वे ऐसी कोई इच्छा नहीं रखते कि उनमें मनोरंजन पर अलग से परिवार वाले पैसे खर्च करें तथा घर मे स्वयं को व्यस्त रखकर ही खुश रहते हैं।

तालिका संख्या - 10

परिवार के सदस्यों के साथ सम्बन्ध

सम्बन्ध	आवृत्ति	प्रतिशत
संतुष्ट	165	82.5
असंतुष्ट	27	13.5
कोई उत्तर नहीं	08	4.0
योग	200	100.0

तालिका से स्पष्ट है कि परिवार के साथ सम्बन्ध पर सर्वाधिक सूचनादाता 82.5 प्रतिशत मानते हैं कि परिवार के सभी सदस्यों के साथ सेवानिवृत्ति से पूर्व जैसे ही सम्बन्ध हैं तथा वे उनके व्यवहार से पूरी तरह संतुष्ट हैं। 13.5 सूचनादाता मानते हैं कि अब अपने पारिवारिक सदस्यों के साथ पूर्ववत सम्बन्ध नहीं रहे तथा कहीं न कहीं रिश्तों में असंतुष्टि आ गयी है, जिसका कारण वे पहले जैसी क्रियाशीलता का न होना तथा आर्थिक रूप से बच्चों पर निर्भर होना मानते हैं। 4 प्रतिशत सूचनादाताओं ने इस विषय पर कोई भी प्रतिक्रिया नहीं की।

तालिका संख्या - 11

जीवनसाथी की अनुपस्थिति का पारिवारिक - सामाजिक जीवन पर प्रभाव

दृष्टिकोण	आवृत्ति	प्रतिशत
हॉं	41	87.3
नहीं	06	12.7
योग	47	100.0

(कुल प्रतिदर्शन मे मात्र 47 ही ऐसे थे जिनके जीवन साथी की मृत्यु हो चुकी थी।)

भारतीय सामाजिक संरचना मे जीवनसाथी की उपस्थिति सामाजिक व पारिवारिक समायोजन के लिए महत्वपूर्ण है। 87.3 प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं पत्नी की उपस्थिति परिवार व समाज के साथ समायोजन मे बहुत आवश्यक है और इसकी कमी उन्हें सदैव रहती है। भारतीय परिवारों में पुत्रवधू के साथ सामंजस्य करने में पत्नी की भूमिका महत्वपूर्ण है। लेकिन वहीं 12.7 प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि पत्नी की कमी के कारण उन्हें परिवार या समाज में सामंजस्य करने मे किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं है तथा बच्चे उनकी आवश्यकताओं का समुचित ध्यान रखते हैं।

तालिका संख्या - 12

परिवार के सदस्यों के साथ मनमुटाव

सदस्य	आवृत्ति	प्रतिशत
पुत्र के साथ	28	14.0
पुत्री के साथ	-	0.0
पुत्रवधू के साथ	09	4.5
पौत्र पौत्रियों के साथ	02	1.0
पत्नी के साथ	01	0.5
किसी के साथ नहीं	160	80.0
योग	200	100

परिवार के सदस्यों के साथ मनमुटाव पर सर्वाधिक सूचनादाता 80 प्रतिशत मानते हैं कि किसी भी विषय पर परिवार के सदस्यों के साथ किसी तरह का मनमुटाव व संघर्ष नहीं है। एक-दूसरे के साथ उनके व्यवहार व सम्बन्ध पहले की भांति ही सौहार्दपूर्ण व सामान्य हैं। परन्तु 14 प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं उनका अपने पुत्र के साथ सम्बन्धों में विरोध व मनमुटाव आ जाता है, जिसका कारण वे उच्च शिक्षा व उच्च पदों पर होना मानते हैं। कहीं भी पुत्री के साथ किसी भी प्रकार का संघर्ष देखने को नहीं मिला। 4.5 प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि घरेलू बातों में कभी-कभी पुत्रवधू के साथ मनमुटाव हो जाता है। 01 प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि शिक्षा, कैरियर व विवाह के मामलों मे पौत्र-पौत्रियों से असहमति हो जाती है तथा मात्र 0.5 प्रतिशत सूचनादाता अपनी पत्नी के साथ मनमुटाव की बात मानते है।

तालिका संख्या - 13

रूचि के अनुसार भोजन की उपलब्धता

श्रेणियॉं	आवृत्ति	प्रतिशत
पूर्ण संतुष्ट	141	70.5
कुछ सीमा तक संतुष्ट	49	24.5
असंतुष्ट	10	5.5
योग	200	100

अपनी रूचि व स्वाद के अनुसार भोजन की उपलब्धता पर सर्वाधिक सूचनादाता मानते हैं कि वे पूर्ण रूप से संतुष्ट हैं। भोजन व पोषण के मामलें मे उनका पूर्ण ध्यान रखा जाता है। 24.5 सूचनादाता मानते हैं कि वे इस विषय पर पूर्ण सहमत नहीं है तथा कभी-कभी उनके स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर उनके परिवार वाले पूर्ण रूचि व स्वाद का भोजन नहीं दे पाते। कहीं -कहीं नौकरी करने वाली पुत्रवधुएँ उनकी रूचि का भोजन उन्हें नहीं दे पातीं। 5 प्रतिशत सूचनादाता मानते हैं कि इस विषय पर वे पूर्ण असहमत हैं तथा भोजन में उनकी रूचि व स्वाद का ध्यान रखने में परिवार के लोग असमर्थ रहे हैं।

निष्कर्ष व सुझाव : उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अध्ययन के अन्तर्गत सूचनादाता घर व गृहस्थी के महत्वपूर्ण निर्णय पहले की ही भांति ले रहे हैं व उनके बच्चे अपने बुजुर्गो से लाभान्वित होना पसन्द करते हैं। बहुत से वृद्धों की अपने घर में मुखिया की ही प्रस्थिति है तथा महत्वपूर्ण निर्णय तथा काम की पहल उन्हीं के द्वारा की जा रही है। रिक्त समय के सदुपयोग में वे किसी संस्था से जुड़ने के स्थान पर घर व गृहकार्यो व बच्चों के साथ समय व्यतीत करना पसन्द करते हैं। खराब स्वास्थ्य के कारण कुछ सूचनादाता मानते हैं कि वे पहले की भांति उतने क्रियाशील नही रहे तथा परिवार के कार्यों में वे स्वयं को भली भांति व्यस्त नहीं रख पाते। पैसे की कमी व बढ़ती उम्र में भी वह अपने पसन्द के मनोरंजन कार्यो व यात्राओं को करते हैं तथा जीवन साथी की अनुपस्थिति मे उनके बच्चे उनका पर्याप्त ध्यान रखते हैं। अधिकतर सूचनादाता मानते हैं कि परिवार के साथ उनके सम्बन्ध पूर्व की भांति है तथा सेवानिवृत्ति व निम्न आर्थिक स्तर का उनके पारिवारिक समायोजन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। परिवार के सदस्यों के साथ उनके सम्बन्ध सामान्य हैं, मनमुटाव व संघर्ष नहीं है किन्तु कहीं - कहीं कम अनुपात में यह समस्या देखने को भी मिली। साधारणतया भोजन की रूचि व स्वाद के मामलें में सूचनादाताओं का ध्यान रखा जाता है। अतः अधिकतर मामलों में वृद्ध स्वयं को सेवानिवृत्ति के बाद सामाजिक- पारिवारिक समायोजन सकारात्मक ही मानते हैं, जो कि उनकी सम्मानीय व सामान्य स्थिति को प्रदर्शित करता है। किन्तु निम्न प्रतिशत में विभिन्न विषयों पर असंतुष्टि भी नजर आयी जो कि समायोजन की कमी को दर्शाता है। अतः यह आवश्यक है कि सेवानिवृत्ति के बाद समायोजन की तैयारी युवावस्था में ही करनी चाहिए। वृद्धावस्था के लिए कुछ बचतें या ऐसी आर्थिक योजनाओं में निवेश किया जाये कि उनके खर्चे योग्य एक नियमित आय हो सके। परिवार के बन्धनों को प्रारम्भ से ही मजबूत बनाया जाये तथा परिवार में वृद्धों का पूरा ध्यान रखा जाये जो कि अगली पीढ़ी के लिए उदाहरण बन सके तथा सामाजिक सीख मिले।

सन्दर्भ

1. सिंह, चन्द्रपाल, *'वृद्धावस्था : समस्यायें एवं मनःसामाजिक उपचार,'* राधा कमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 16, अंक 2, जुलाई -दिसम्बर 2014, पृ. 1 - 10
2. Patti R.N., B. Jena, *'Aged in India (Socio Demographic Dimensions)'* Ashish Publishing House, New Delhi, 1989.
3. Maddox, G. *'Retire Academics and Research Activity'* in Aoon R. Rowe, Journal of Gerontology, Vol. 31 (4) , 1976, p. 456.
4. Atchley, Robert C., *'The sociology of Retirement'*. Cambridge, M.A. Schenkan, 1976, p. 13-17
5. राठौर, जे0 एस0, *'वृद्धो की स्थिति एवं जीवन दृष्टि -एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'*, मानव, वर्ष -21, अंक-4, अक्टूबर-दिसम्बर 1993, पृ. 237- 238
6. सहाय, श्रीनाथ, *'भारत मे वृद्धों की स्थिति का एक विश्लेषण'* रोजगार समाचार, 21-27 अक्टूबर, 2017, पृ. 2
7. Desai, K.G. and Naik, R.D. *'Problems of Retired people in Greater Bombay'*, Tata Institute of social sciences, Bombay, 1973, p. 1 to 4.
8. Sumangla, P.R. *'Retired People and their Participation in family'*. Man in India, 83 (1 & 2) , 2003, p. 221-225
9. Vijay Kumar, S., and Reddy Raja., *'Problems of Retired Person,'* Man in India, 73(3), 1993, pp. 241-249.
10 कुमार अनिल सिंह एवं उदयभान सिंह, *'उदारवादी समाज में शिक्षकः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण,'* राधा कमल मुखर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 20 अंक 1, जनवरी - जून 2018, पृ0 68-77

11 अग्रवाल, उमेश चन्द, *'बढ़ते बुजुर्ग' घटती सुरक्षा'*, कुरूक्षेत्र, वर्ष 55 अंक-12, अक्टूबर 209 पृ0 54
12 Ekerdt, D.J., *'Retirment' In G.L. Maddox (Ed.). The Encyclopedia of Ageing IInd ed.'* Spinger Publishing Company, New Yoak , 1995, pp. 819- 823.
13. Revati, Hasmath, Gaonkar and Khadi, *'Life Satisfaction During Later Years'*. Man in India, 73(3), 1993, pp. 229-232.
14. Jayashree, *' Work After Retirement'*. Yojana, Nov. , 2000, pp. 7-21.
15. Arora Sushil, *'Concept of Ageing and Problems of the Aged : Some Observations'*. Man in India, 73(3), 1993, pp. 251-257.
16. Mathur, D, and A. Sen, *'Depression in the Elderly and some of its psychological concomitants : A study of the efficiency of Age care centres'*. Indian Journal of community Guidance Services, 6(1), pp. 27-29.
17. कुमार, राजीव, *'अवकाश प्राप्ति के बाद पारिवारिक समायोजन'* राधाकमल मुखर्जी : चिन्तन व परम्परा, वर्ष 19 अंक 2, जुलाई -दिसम्बर, 2017, पृ0 66-71
18 पचौरी जे0पी0, जे0 पी0 भट्ट एवं सुषमा नयाल, *'वृद्धावस्था एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण'*, राधा कमल मुखजी : चिन्तन परम्परा, वर्ज 11 अंक 1, जनवरी-जून 2009, पृ0 1 -5
19 Nasreen Asiya, *'Elderly and their counselling needs'*, social walfare, oct. 2003, pp. 37-39.
20 कुमार सुरेन्द्र, राजवीर शास्त्री, *'विशुद्ध-मनुस्मृति'*, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, हिन्दी 1990, पृ0 222

बालश्रम – मानवाधिकारों का खुला उल्लंघन

❑ डॉ. सुधा शर्मा

बच्चे सभ्यता और भविष्य के स्तम्भ होते हैं। किसी भी राष्ट्र की भावी स्थिति का अनुमान वहाँ के बच्चों को देख कर ही लगाया जा सकता है क्योंकि ये बच्चे ही बड़े होकर डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, राजनेता और शिक्षक आदि बनते हैं। देश का विकास एवं प्रगति इन्ही भावी कर्णधारों पर निर्भर होती है और इन्ही के कन्धों पर मानवता की आधारशिला रखी जाती है। यदि किसी समाज में बचपन उपेक्षित अथवा तिरकृत है तो उस देश का भविष्य क्या होगा। बाल श्रम की समस्या जितनी आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों से सम्बद्ध है उतनी ही मानवीय संवेदनशीलता और नैतिकता से भी जुड़ी है। किताबे बेंचते, बर्तन धोते, चाय बनाते बच्चों में अनेक प्रतिभाएँ छुपी हुई हैं लेकिन ये दृश्य हमारे अंतर्मन को नहीं झखझोरते हैं। बच्चों के मासूम हाथों मे कार्य करने की थोड़ी सी शक्ति आते ही उन्हें कठोर कार्य करने के लिए जुटना पड़ता है जिससे उन बच्चों के हाथों की लकीरें भविष्य बनने से पहले ही मिट जाती हैं। जब देश का बचपन करोर श्रम करके परिवार का पालन पोषण करता हो तो उस देश का भविष्य कैसा होगा? यह एक चिंता का विषय है। प्रस्तुत अध्ययन बाल श्रम के स्वरूप और समस्या को जानने का लघु प्रयास है।

बचपन जिंदगी का बहुत सुन्दर सफर होता है। बचपन मे न तो कोई चिंता होती है न कोई फिक्र होती है, लेकिन कुछ बच्चों के बचपन में लाचारी और गरीबी का ग्रहण लग जाता है जिस कारण से उन्हें बाल श्रम जैसी समस्या का सामना करना पड़ता है। बाल श्रम बच्चों की मासूमियत में अभिशाप बनकर सामने आता है। बाल श्रम का तात्पर्य उस कार्य से है जिसे करने वाला व्यक्ति कानून द्धारा निर्धारित आयु से छोटा होता है। भारत में बाल श्रम निषेध और नियमन अधिनियम के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बालक या बालिकाओ को बाल श्रमिक की श्रेणी मे रखा जाता है। एक बच्चा जिसे विद्यालय मे होना चाहिए और वह विद्यालय न जाकर आर्थिक कार्य करता है वह बाल श्रमिक है। 'सामान्यता 14 वर्ष की आयु तक का जो बच्चा श्रम के कार्यो मे लगा हुआ है और इससे इस कार्य के बदले मे नगद या किसी अन्य रूप में मजदूरी प्राप्त होती है वह बच्चा बाल श्रमिक है'। भारतवर्ष में प्रारम्भ से ही बच्चों को ईश्वर का रूप माना जाता है। भारत की धरती ध्रुव, प्रह्लाद, लवकुश एवं अभिमन्यु जैसे बाल चरित्रों से भरी पड़ी है। परन्तु बच्चों का वर्तमान दृश्य इससे भिन्न है। भारत में बाल मजदूरी की समस्या सदियों से चली आ रही है, जो समय बच्चों के पढ़ने लिखने और खेलने का होता है वह समय उनका बचपन काम की कठिन परिस्थितियों से गुजता है। बच्चों में श्रम के प्रति रूचि पैदा करना एक अच्छी बात है लेकिन व्यक्तिगत लाभ ध्यान मे रहते हुए शोषण की नीति अपनाना सर्वथा दूसरी बात है। राष्ट्र के लिए भविष्य में उत्तम श्रमिकों का निर्माण तो एक सत्य प्रवृति है, पर कष्ट तब होता है जब छोटे-छोटे बच्चों से उनकी सामर्थ्य से अधिक काम कौड़ियों के मूल्य पर कराया जाता है जिससे उनका शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास अवरुद्ध हो जाता है।

बाल श्रम एक ऐसा अभिशाप है जो शहरों, गांवों में चारों ओर व्याप्त है। खेलने कूदने के दिनों में यदि कोई बच्चा श्रम करने को मजबूर हो जाये तो इससे बड़ी विडम्बना किसी भी समाज के लिए क्या हो सकती है। बाल मजदूरी से बच्चों का भविष्य ऐसे गर्त में चला जाता है जहां उनका निकला मुश्किल होता है।

बाल श्रम मानवाधिकारों का खुला उल्लंघन है। यह बच्चों के मानसिक और शारीरिक हितों को प्रत्यक्ष रूप से तथा आत्मिक, बौद्धिक और सामाजिक हितों को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। कहने को सरकार बाल मजदूरी को खत्म करने के लिए बड़े वादे और घोषणायें करती है लेकिन होता कुछ नहीं है। भारत में बाल मजदूरी को खत्म करने की संभावना दूर-दूर तक दिखाई नहीं दे रही है। साथ में बाल श्रमिकों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।[1] बाल मजदूरी का स्वरूप हर कहीं दिखायी पड़ता है। यह कचरा बीनने से लेकर सड़क के किनारे चलने

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, खालसा गर्ल्स डिग्री कालेज, कानपुर (उ.प्र.)

वाली मरम्मत की दुकानों, होटलों और ढाबों में दिन रात काम करते मिल जाते हैं। बीड़ी, कालीन, ताला, कांच, चूड़ियां, पीतल के सामान, चमड़े की चीजें बनाने जैसे न जाने कितने सारे उद्योगों के जोखिम भरी और मुश्किल परिस्थितियों में काम करने वाले करोड़ों बच्चों पर न तो हमारी नजर पड़ती है और न ही उस पर ढंग से चर्चा होती है। यदि दुनिया भर में निम्न एवं निर्बल वर्गों के बच्चों की दयनीय स्थिति में सुधार लाने के लिए तुरन्त प्रभावशाली कदम नहीं उठाए जाते हैं तो हम जिस स्वस्थ एवं खुशहाल दुनिया के निर्माण की कल्पना कर रहे हैं वह पूरी नहीं होगी।[2]

ऑस्ट्रेलिया के पोलो गॉग विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र के प्रोफेसर डी,पी, चौधरी ने भारत के बाल श्रमिकों का बहुत ही वैज्ञानिक और संक्षिप्त वर्गीकरण किया है। उन्होने बाल श्रमिकों को तीन श्रेणियों मे रखा है। पहली श्रेणी में वे बाल श्रमिक हैं जो (बाल श्रम नियमन और पाबन्दी) कानून द्धारा तय प्रतिबंधित कार्यों मे लगें हुए हैं। 1.3 से 1.4 करोड़ पूर्ण कालिक बाल श्रमिक 6 प्रतिशत से कम है। दूसरी श्रेणी में वे बाल श्रमिक हैं जो वैसे तो खुद मजदूरी करते हैं पर उनका काम प्रतिबंधित क्षेत्र वाला नही है। तीसरी श्रेणी मे वे अस्सी प्रतिशत से ज्यादा बाल श्रमिक आते हैं जो अपने परिवार के उद्यमों, खेती, गृहउद्योग, लघु उद्योग या छोटे व्यापार के कार्य मे हैं।[3] वर्तमान समय में गरीब बच्चे अधिक शोषण के शिकार हो रहे हैं। उन्हे पढ़ने भेजने की जगह बाल श्रम कराया जाता है जो बच्चे बाल मजदूरी करते हैं वे मानसिक रूप से अस्वथ्य रहते हैं और मजदूरी उनके शारीरिक और बौद्धिक विकास में बाधक होती है।[4]

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में बाल श्रमिको की संख्या 12666377 थी जो लगभाग 6 से 10 वर्ष की आयु के हैं। उनमें व्यापार और व्यवसाय मे 23 प्रतिशत बच्चे लगे हैं जबकि 36 प्रतिशत बच्चे घरेलू कार्यो मे लगे हैं। शहरी क्षेत्र में उन बच्चों की संख्या सबसे अधिक है जो कैंटीन एरिया मे काम करते हैं या कूड़ा बीनने अथवा सामान की फेरी लगाने मे संलग्न हैं लेकिन ये रिकॉर्ड मे नही हैं।[5]

अधिक बदकिस्मत बच्चे वे हैं जो जोखिम वाले उद्यमों मे कार्यरत है। कितने ही बच्चे हानिकारक प्रदूषित कारखानों मे कार्य करते हैं। वे ऐसी भट्टियों के पास काम करते हैं जो 1200 डिग्री सेल्सियस ताप पर जलती हैं। वे आर्सेनिक पोटेसियम जैसे खतरनाक रसायनों को काम मे लेते हैं वे काँच धामन की इकाइयों मे कार्य करते हैं। जहाँ उनके फेफड़ों पर जोर पड़ता है जिससे तपेदिक जैसी बीमारी से समय से पहले ग्रषित हो जाते हैं। कई बार ऐसा होता है कि उनके बदन मे दर्द होता है। दिमाग परेशान रहता है। आत्मा दुखी रहती है। लेकिन तब भी उनको मालिक के आदेश पर 12 से 15 घंटे लगातार काम करना पड़ता है। कूड़े के ढेर से रीसाइक्लिग के लिए विभिन्न सामग्री इकठ्ठा करने वाले बच्चों मे समय से पूर्व ही कई खतरनाक और संक्रामक बीमारियाँ घर कर जाती है जिससे उन्हे बचपन और जवानी का होना पता ही नही चल पता और उनके कदम समय से पहले बुढ़ापे मे चले जाते हैं।

आज विश्व मे जितने बाल श्रमिक हैं उनमे सबसे अधिक भारत मे हैं। हम भारतीय इस तथ्य पर गर्व करते हैं कि भारत तेजी से प्रमुख विकासशील राष्ट्र के रूप में उभर रहा है। समृद्धि और लाभ देश के कई उन बड़े हिस्सों तक पहुंच रहा है जहाँ 10 साल पहले कोई अस्तित्व नहीं था। यह कोई उपलब्धि नहीं है क्योंकि कहानी पूरी तरह से परिपक्व नहीं है भारत के विकास मे एक अँधेरा अपना योगदान दे रहा है वह बाल श्रम का उपयोग है। एक राष्ट्र के रूप में हमने लम्बे समय से बहुत सस्ते और अक्सर मुफ्त श्रमिकों के रूप मे उपयोग करने के क्रूर व्यवहार को स्वीकार कर लिया है। बच्चे अपने बचपन के अधिकारों से वंचित हैं न उनके पास शिक्षा की ज्योति पहुँच पा रही है ना ही उचित पोषण की। हालांकी फैक्ट्री अधिनियम, बाल अधिनियम, बाल श्रम निरोधक अधिनियम आदि बच्चों के अधिकारों को सुरक्षा देते हैं परन्तु इसके विपरीत आज की स्थिति बिलकुल अलग है। सरकारी आकड़ों के अनुसार भारत मे 2 करोड़ बाल मजदूर हैं और अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार भारतीय सरकारी आँकड़ो से लगभग 2.5 गुना अधिक अर्थात् 5 करोड़ बच्चे बाल मजदूर हैं।[6]

बाल श्रम मानवाधिकार मात्र का विषय नहीं है जो सिर्फ किसी बच्चे को उसके अधिकारो से वंचित रखता है अपितु यह विकास से जुड़ा मुद्दा भी है। बाल श्रम ना सिर्फ बच्चो को बुरी तरह प्रभावित करता है बल्कि उस समाज और राज्य को भी प्रभावित करता है जहाँ पर वे निवास करते हैं। बाल श्रमिक एक अप्रशिक्षित कार्य क्षेत्र का हिस्सा बनता है जो कि स्वयं अपना भविष्य बर्बाद करते ही हैं साथ मे अपने राष्ट्र का भी।[7]

भारत मे बाल श्रम के प्रमुख कारणों मे निर्धनता व अशिक्षा, बेरोजगारी व कम आय की प्राप्ति आदि हैं। इसके अतिरिक्त समाज के स्वार्थी तत्वों और गलत तरीकों से आर्थिक हितों की पूर्ति करने वाले व्यवसायिक संगठनों के द्धारा जानबूझकर अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा कर दी जाती हैं ताकि उन्हे सस्ती मजदूरी पर काम करने वाले बाल श्रमिक आसानी से मिल जाएँ।

बाल श्रम के प्रमुख कारण

1) सामंतवादी जमींदारी प्रथा और आज उसके बचे अवशेषों ने बाल श्रम को निरंतरता प्रदान की है।
2) निर्धनता एवं बेरोजगारी जैसी स्थिति ने बालकों को विभिन्न कार्यो मे नियोजन का आधार प्रदान किया है।
3) अशिक्षा और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता के अभाव ने बाल श्रम को बढ़ावा दिया है।
4) संयुक्त परिवार की संस्कृति एवं पारम्परिक पारिवारिक मूल्यों ने स्वैच्छिक स्तर पर बाल श्रम की समस्याओं को बढ़ाने मे सहयोग दिया है।
5) वैश्वीकरण, निजीकरण, उपभोगितावादी संस्कृति के विकास के साथ सस्ते श्रम की आवश्यकता को बढ़ावा मिला है।
6) ठोस स्तर के राष्ट्रीय नियमों और कानूनों के अभावों के चलते बाल श्रम की समस्या बनी हुई है।

साहित्य समीक्षा : अशोक सिंह भदौरिया और नम्रता चौहान ने मध्य प्रदेश के ग्वालियर शहर के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित व्यवसायों में कार्यरत दो सौ बाल श्रमिकों का चयन कर के साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से तथ्य संगृहीत किये जो इस तथ्य को उजागर करते हैं कि बाल श्रम बच्चों को उनके मूलभूत अधिकारों से वंचित करते हैं। जो उन्हें जन्म से प्राप्त हैं। बच्चों को शिक्षा का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।[8]

हेलन आर, सेकर पंकज, डिमरी फिलिप, के नाथ के अध्ययन (बाल श्रम और स्वास्थ्य जोखिम) में कार्य की दशाओं का बच्चों के स्वास्थ्य पर क्या दुष्प्रभाव पड़ता है का विश्लेषण किया है। अध्ययन इस बात को स्पष्ट करता है कि भट्टों पर काम करने वाले बच्चे सिलिकेट, लेड और कार्बन मोनोऑक्साइड के संपर्क में आते हैं। भारी भार उठाते हैं अत्यधिक ताप और धूल भरी परिस्थितियों में काम करते हैं। राख और धुआँ से घिरे होने के कारण उन्हें स्वास सम्बन्धी रोग विषैले संक्रमण दमा और आग से जलने जैसी समस्या हो जाती है। इस अध्ययन में विभिन्न कार्यो के दौरान होने वाले स्वास्थ्य समस्याओं की गहनता से व्याख्या की गयी है।[9]

राजीव शर्मा एवं निखिल राज (आगरा क्षेत्र के घुँघुरू उद्योग मे बाल श्रम) के अध्ययन के अनुसार प्रत्येक प्रकार के बाल श्रम को बलातश्रम समझा जाना चाहिए क्योंकि इस अवस्था में बच्चे काम करने के लिए अपनी सहमति देने की स्थिति में नहीं होते है और बच्चों के काम करने का निर्णय उनके माता पिता या संरक्षक ही लेते है।[10]

ऑपरेशन रिसर्च ग्रुप, के के खातु, ऐ के तमंग और सी आर राव ने भारत में बाल श्रमिक पर अध्ययन किया है। आयु लिंग के अनुसार बच्चों के श्रम साध्य कार्यो पर प्रतिबन्ध लगाने का उल्लेख किया गया है। समस्या की गंभीरता को देखते हुए अनेक सिफारिशों का उल्लेख किया है। अध्ययन के अनुसार बाल श्रमिकों का बीमा अवश्य किया जाना चाहिए ऐसे सामाजिक वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिए जिसमें बच्चे कार्य क्षेत्र में स्वयं को सुरक्षित समझें और बाल श्रमिकों को ऐसा कार्य दिया जाना चाहिए जिस कार्य में उनके श्रम का आकलन किया जा सके तथा जिस कार्य क्षेत्र में बाल श्रमिकों की दर अधिक है, उन क्षेत्रों में बाल श्रमिकों के लिए अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।[11]

भट्ट ने बाल श्रमिकों का लिंगभेद के अनुसार तुलनात्मक अध्ययन किया। इस अध्ययन के उद्देश्य बच्चों की विद्यालयी उपस्थिति पर बालश्रम के प्रभाव का अध्ययन करना तथा लिंग, शिक्षा तथा बालश्रम तीनों कारकों के मध्य तुलनात्मक अध्ययन करना था। शोधकर्ता ने अध्ययन हेतु वैयक्तिक अध्ययन विधि का प्रयोग किया। सुविधाजनक न्यादर्श तकनीकि द्वारा बालक- बालिकाओं का चयन किया गया। अध्ययन में परिणामों से ज्ञात हुआ कि बालक व बालिकाएँ दोनों ही परिस्थितिवश बालश्रम के शिकार हुए तथा बालिकाओं को रूढ़िवादी प्रथाओं का शिकार होना पड़ा। बहुत ही कम बालक विद्यालय में नामांकित हैं और ये बालक नियमित रूप से विद्यालय नहीं गये। अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि इन बच्चों ने परिवार को आर्थिक सहयोग प्रदान किया तथा माता-पिता भी इनके विद्यालय न भेजने में ही सहमत थे ताकि आर्थिक सहयोग समाप्त न हो।[12]

दुबे ने एक शोध अध्ययन भारतीय बीड़ी उद्योग में बालश्रम पर किया। अध्ययन के परिणामस्वरूप पाया कि

बालश्रम निषेध अधिनियम 1986 के अन्तर्गत बालश्रम के निषेध होने पर भी 14 वर्ष से कम आयु के बच्चे लगातार बीड़ी उद्योगों में काम करते पाये गये जिसके परिणामस्वरूप इन बच्चों का स्वास्थ्य का स्तर अच्छा नहीं था। अतः इन्होने अध्ययन में बताया कि बाल श्रम निषेध नियमों व कानूनों का पालन सख्ती से होना चाहिए।[13]

दास व सिंह ने एक शोध भारतीय होटल उद्योग में बालश्रम के परिपेक्ष्य में किया। इस अध्ययन का उद्द्देश्य भारत के होटल उद्योग में बालश्रम की स्थिति सरकार द्वारा प्रकाशित सम्बन्धित प्रदत्तों तथा होटल उद्योग में बालश्रम करने वाले बच्चों की वास्तविक स्थिति को जानना था। अध्ययन के परिणामस्वरूप यह पाया गया कि भारत में बड़े स्तर पर होटल उद्योग में बालश्रमिक काम कर रहे है; परन्तु किसी भी सरकारी और गैर सरकारी सस्थाओं ने कोई भी सामाजिक, आर्थिक, शोषण तथा अन्य मुद्दों पर आकंड़े उपलब्ध नहीं कराये।[14]

रजनी रंजन सिंह एवं हेमंत नामदेव (शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के सन्दर्भ मे विशेष बाल श्रमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति) के शोध परिणाम के आधार पर यह कहा गया है कि विशेष बाल श्रमिक विद्यालयों मे अध्यनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक स्थिति सामन्य स्तर से भी निम्न है विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं गुणवक्ता अन्य विद्यार्थी के समान है। इस विद्यालय में अध्ययनरत बालक और बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति सामान्य है। यह अध्ययन मध्य प्रदेश राज्य के मंदसौर जिले के छः गैर सरकारी संगठनों द्वारा संचालित सभी चौदह बाल श्रमिक विद्यालयों पर आधारित है।[15]

वी एल सोनकर और शोध छात्रा सुनीता का शोध अध्ययन क्षेत्र दुर्ग शहर (छत्तीसगढ़ राज्य) के अंसगठित क्षेत्र में कार्यरत बालश्रमिकों के सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर केन्द्रित है। संबंधित शोधों की समीक्षा के पश्चात् शोध अध्ययन में पाया गया कि असंगठित शहरी क्षेत्र में कार्यरत् बाल श्रमिक अशिक्षित एवं उनके परिवारों की आय निम्न है। अध्ययन में निदर्शन के माध्यम से 320 बालश्रमिकों का चयन किया गया है। अध्ययन की प्रकृति प्राथमिक समंकों पर आधारित है। अनुसूची के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया है। अध्ययन में सर्वाधिक 57.19 प्रतिशत् बाल श्रमिक 12-14 वर्ष के आयु के हैं। 50 प्रतिशत् बाल श्रमिक अशिक्षित है जिसमें 36.25 प्रतिशत् प्राथमिक एवं 13.75 प्रतिशत् बाल श्रमिक माध्यमिक शाला में पढ़ाई किये हैं। 66.56 प्रतिशत् बाल श्रमिक कच्चे मकानों में रहते हैं 51.56 प्रतिशत् बाल श्रमिकों को मासिक मजदूरी प्राप्त होती है। 39.69 प्रतिशत् बाल श्रमिक 7-9 घण्टे काम करते हैं। बाल श्रमिकों की औसत आय 694.35 रूपये है तथा इनके परिवारों की औसत आय 1877.97रूपये है। परिवारों की आय में बालश्रमिकों की भागीदारी 37.19 çfr'kr~ gS[16] उमा बहुगुणा[17] ने उत्तराखण्ड के पौड़ी गढ़वाल की तहसील श्रीनगर तथा श्रीकोट गंगानाली के उद्योगों, होटलों में कार्यरत 50 बाल श्रमिकों की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक समस्याओं का अध्ययन किया और पाया कि अधिकांश बाल श्रमिक 10 से 14 वर्ष की आयु के मध्य के हैं वे अधिकांशतः (70 प्रतिशत) होटलों एवं आइसक्रीम फैक्ट्री में काम करते हैं, अधिकांश को 2000 से 3000 रू. मासिक वेतन मिलता है तथा 44 प्रतिशत मालिकों का उनके प्रति व्यवहार सामान्य, 32 प्रतिशत का अच्छा तथा 24 प्रतिशत का अच्छा नहीं था।

बाल श्रम की वर्तमान स्थिति : देश को स्वतंत्र हुए सात दशक हो गए हैं फिर भी बाल मजदूरों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि देश के सर्वांगीण विकास मे बाधक बनकर भयावह चुनौती के रूप मे खड़ी है। जिस राष्ट्र के करोड़ों बच्चों का भविष्य अंधकार मे हो वह प्रगति की दिशा मे कैसे बढ़ सकता है। वर्तमान समय में संपूर्ण विश्व में दो सौ मिलियन बच्चे बाल मजदूरी कर रहे हैं। भारत मे स्थिति और भी बुरी है।भारत की 1991 के जनगणना अनुसार 1,12,48,349 बच्चे बाल मजदूरी कर रहे थे। इसके बाद की जनगणना 2001 में बाल श्रमिकों की संख्या 1,26,66,377 हो गयी थी।[18]

आई एल ओ यानि अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार भारत, बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान, इंडोनेशिया फिलीपीन्स आदि एशिया के देश हैं जहाँ बाल मजदूरों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में चौदह वर्ष से कम उम्र के लगभग 12 करोड़ बाल श्रमिक ऐसे हैं जो स्कूल जाने की बजाय पेट की भूख मिटने की लिए कठोर श्रम करने को विवश हैं और इनकी संख्या में निरंतर बढ़ोतरी हो रही है। दुनिया के कई देशो में आज भी बच्चों को बचपन नसीब नहीं है। भारत में बाल मजदूरी के आँकड़े और भी भयावह हैं। आयु के आधार पर बात करें तो दस से चौदह वर्ष की उम्र के बच्चों से मजदूरी के मामले में उत्तर प्रदेश, पश्चिम

बँगाल, गुजरात, असम, कर्नाटक सबसे आगे हैं। देश की राजधानी की बात करें तो यहाँ सबसे बड़ी समस्या गायब होते बच्चों की है। दिल्ली में प्रतिदिन चौदह बच्चे गायब हो जाते हैं। ये बच्चे या तो बाल मजदूरी के शिकार हो जाते हैं या तो मानव तस्करी के। भारत में तो कई जगहों पर माँ बाप ही थोड़े पैसो के लिए अपने बच्चों को ऐसे ठेकेदारों के हाथों बेंच देते हैं जो अपनी सुविधा अनुसार काम पर लगा देते हैं। अत्यधिक ऋण जाल से ग्रस्त माता पिता सामान्य बचपन के महत्व को अपनी परेशानियों के दबाव के कारण समझने में असफल होते हैं और इस प्रकार ये बच्चों के मस्तिष्क का घटिया भावनात्मक और मानसिक संतुलन को नेतृत्व करता है जो कठिन क्षेत्रों या घरेलू कार्यो को करने के लिए तैयार नहीं होते हैं।[19] बाल श्रम के कारण बच्चे, बचपन में अपने बड़ों से मिलने वाले स्नेह से दूर होते जाते हैं और अपने बचपन में भी उन्हें अपना जीवन एक वयस्क की तरह गुजारने के लिए मजबूर होना पड़ता है। फैक्ट्री या संस्था में जाने के लिए सुबह जल्दी उठना, बिना खाये या कम खाना खाये ही काम पर निकलना, समय पर पहुँचकर पूरे दिन और देर रात तक काम करना। इन संस्थाओं में मालिकों के साथ-साथ वयस्क सहकर्मी भी बाल श्रमिकों से दुव्यर्वहार करते हैं। बाल श्रमिकों के साथ गाली-गलौच करना तो एक आम बात है। अनेक बार बाल श्रमिकों की बिना किसी खास वजह के पिटाई भी की जाती है। अनेक जगहों पर तो बाल श्रमिकों का यौन शोषण भी किया जाता है। यह शोषण मालिकों तथा वयस्क श्रमिकों द्वारा भी किया जाता है। वहीं दूसरी तरफ बाल श्रमिकों को उनके कार्य का सबसे कम मूल्य दिया जाता है अर्थात् काम तो वे एक वयस्क मजदूर से भी ज्यादा या बराबर करते हैं पर उन्हें एक वयस्क मजदूर की भांति एक समान मजदूरी नहीं दी जाती है। भारत में तो विशेषकर इसी प्रकार की सोच के साथ बाल मजदूरों को फैक्ट्री या मिलों में रखा जाता है। भारत में बाल श्रमिकों का जर्बदस्त शोषण किया जाता है। महिला बाल श्रमिकों की स्थिति तो सबसे ज्यादा बदतर है। उनका तो हर कदम पर प्रत्येक प्रकार का शोषण किया जाता है। उत्तर भारत एवं पंजाब के ग्रामीण इलाकों के किसान बिहार, झारखण्ड आदि प्रदेशों से लाये गये बाल श्रमिकों से खेती बाड़ी, एवं गाय, भैंसों का कार्य व्यापक स्तर पर कराते हैं और बाल श्रमिकों को मजदूरी रुप में केवल खाने-पीने को ही दिया जाता है तो दूसरी तरफ दक्षिण भारत के शिवकाशी में बाल श्रमिकों के द्वारा व्यापक स्तर पर पटाखों का निर्माण कराया जाता है। शिवकाशी में तो हर समय विस्फोट का खतरा उनकी जान पर बना रहता है। HAQ, Centre of Child Rights के अनुसार भारत में मुस्लिम, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़ावर्ग में बाल श्रमिकों की संख्या l cl s T; knk gS v uds NGO ने यह पाया है कि कर्नाटक के बेल्लारी जिले में बाल श्रमिकों को बड़ी संख्या में कपड़ों पर कढ़ाई-बुनाई के कार्य पर लगाया हुआ है। भारत में बंधुआ बाल श्रमिक के रुप में लड़कों के साथ ही साथ लड़कियों को भी रखा जा रहा है। इन बंधुवा श्रमिक लड़कियों का यौन शोषण भी व्यापक स्तर पर किया जाता है और कभी-कभी ये शोषण उनकी मृत्यु तक जारी रहता है। ILO के अनुसार 2000 में भारत में 10 मिलियन बंधुआ बाल श्रमिक पाये गये। तमिलनाडू में 1959 में एक NGO ने सर्वे में 1,25,000 बंधुआ बाल श्रमिक पाये गये। बंधुआ बाल श्रमिकों से मुख्य रुप से कृषि कार्य के साथ बीड़ी बनाना, ईंट पथवाना, कारपेट बुनाई, भवन निर्माण, होटलों, चाय की दुकानों, चमड़ा उद्योग, कोयलों की खानों आदि क्षेत्रों में कार्य कराया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि बाल श्रमिक का हर प्रकार से शोषण किया जाता है।[20]

भारत वर्ष में उत्तर प्रदेश में सर्वाधिक कामकाजी बच्चे हैं। जनगणना वर्ष 2011 के अनुसार देश में कुल 1,01,28,263 कामकाजी बच्चों में से उत्तर प्रदेश में 21,76,706 कामगार बच्चे हैं देश में चौदह वर्ष से कम आयु के 21 प्रतिशत कामकाजी बच्चे उत्तर प्रदेश में हैं। ये तो केवल भारत के एक प्रदेश के आंकड़े हैं पूरे भारत मे बाल श्रम की संख्या भयावह है।[21] बाल श्रम की समस्या देश के समक्ष अभी भी एक चुनौती बन कर खड़ी है। सरकार इस समस्या को सुलझाने के लिए विभिन्न सकारात्मक सक्रिय कदम उठा रही है फिर भी, समस्या के विस्तार और परिमाण पर विचार करते हुए तथा मूलतः यह एक सामाजिक-आर्थिक समस्या होने के कारण, जो विकट रूप से गरीबी और निरक्षरता से जुड़ी हैं, इस समस्या को सुलझाने के लिए समाज के सभी वर्गों द्वारा ठोस प्रयास करने की जरूरत है।

2001 की जनगणना के आँकड़ों के अनुसार 25.2 करोड़ कुल बच्चों की आबादी की तुलना में, 5-14 वर्ष के आयु समूह में 1.26 करोड़ बच्चे काम कर रहे हैं।

इनमें से लगभग 12 लाख बच्चे ऐसे खतरनाक व्यवसायों की प्रक्रियाओं में काम कर रहे हैं, जो बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम के अंतर्गत आवृत हैं अर्थात् 18 व्यवसाय और 65 प्रक्रियाएँ। हालाँकि, 2004-05 में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार, काम करने वाले बच्चों की संख्या 90.75 लाख है। यह दर्शाता है कि सरकार के प्रयासों ने वांछित परिणाम प्राप्त किए हैं।

बहुत पहले 1975 में ही, सरकार ने बाल श्रम की समस्या के अध्ययन और उससे निपटने के लिए उपाय सुझाने हेतु गुरुपादस्वामी समिति नामक प्रथम समिति का गठन किया था। समिति ने विस्तार से समस्या का परीक्षण किया और कुछ दूरगामी सिफारिशें की। उसने पाया कि जब तक गरीबी जारी रहेगी, तब तक बाल श्रम को पूरी तरह मिटाना मुश्किल हो सकता है और इसलिए, किसी कानूनी उपाय के माध्यम से उसे समूल मिटाने का प्रयास व्यावहारिक प्रस्ताव नहीं होगा। समिति ने महसूस किया है कि इन परिस्थितियों में, खतरनाक क्षेत्रों में बाल श्रम पर प्रतिबंध लगाना और अन्य क्षेत्रों में कार्यकारी परिस्थितियों को विनियमित करना और उनमें सुधार लाना ही एकमात्र विकल्प है। उसने सिफारिश की है कि कामकाजी बच्चों की समस्याओं से निपटने के लिए विविध-नीति दृष्टिकोण आवश्यक है।

गुरुपादस्वामी समिति की सिफारिशों के आधार पर, 1986 में बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम लागू किया गया। अधिनियम कुछ निर्दिष्ट खतरनाक व्यवसायों और प्रक्रियाओं में बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध लगाता है और अन्य स्थलों पर कामकाजी परिस्थितियों को नियंत्रित करता है। अधिनियम के अंतर्गत गठित बाल श्रम तकनीकी सलाहकार समिति की सिफारिशों के आधार पर खतरनाक व्यवसायों और प्रक्रियाओं की सूची को उत्तरोत्तर विस्तृत किया जा रहा है।[22] भारत के संविधान में बाल श्रम को रोकने के लिए या हतोत्साहित करने के लिए विभिन्न व्यवस्थाएँ की गयी हैं जैसे चौदह वर्ष के कम आयु के किसी बच्चे को किसी कारखाने में काम करने के लिए किसी भी जोखिम वाले कार्यो में नियुक्त नहीं किया जायेगा (धारा 24) बाल्यावस्था और किशोर अवस्था को शोषण तथा नैतिक एवं भौतिक परित्यागता से बचाया जायेगा (धारा 39 ऐ ऑफ)।[23] साथ ही मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा के अनुछेद 3, 4, 5 , 22, 23, 24, 25 एवं भारतीय संविधान के अनुछेद 19 (1) (सी) 23 (1) (2) एवं 24 साथ ही भाग 4 में नीति निदेशक तत्वों में अनुछेद 3, 4, 39, 41, 42, 43ए आदि किसी न किसी रूप में श्रम और बाल श्रमिकों से संबंधित है।[24]

भारत में सदैव से बाल श्रम की समस्या से निपटने के लिए सचेत नीति पर अमल किया है। इसके पीछे मूल भावना यही रही है कि सारे कामकाजी बच्चे भी बच्चे ही है और उन्हें भी स्वस्थ बहुमुखी विकास करने का अवसर दिया जाना चाहिए। लेकिन उसके बाद भी कानून की विशाल सारिणी के बावजूद बाल मजदूरों और नियोक्ताओं की कार्यकारी स्थितियों में कोई सुधार नहीं दिखाई नहीं देता। साथ ही बाल श्रम को निषेध करने वाले अधिनियमों के प्रावधानों का स्वतंत्र रूप से उल्लंघन किया जा रहा है। इस पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है कि इन प्रावधानों के अतिक्रमण के अर्थ बुनियादी मानवाधिकारों का अभाव और बच्चों के बचपन को अर्थ रहित करना है। बच्चे कहाँ और किस प्रकार के रोजगार के अंतर्गत कार्य कर सकते हैं यह कानून में स्पस्ट नहीं है। ये अधिनियम केवल दस प्रतिशत कार्यशील बच्चों को ही सुरक्षित करते हैं और गैर संगठित क्षेत्र में लागू नही होते हैं।[25]

दुनिया में ऐसे 71 देश है। जहाँ बच्चों से मजदूरी कराई जाती है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन (आई एल ओ) नई रिपोर्ट में 140 देशो से ये आंकलन किया गया है। ''फाइंडिंग ऑन डा वेस्ट फॉर्मूस ऑफ चाइल्ड लेबर'' नाम की इस रिपोर्ट में ऐसी 130 वस्तुओं की सूची बनाई गयी है जिन्हे बनाने के लिए बच्चों से काम लिया जाता है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि ईट तैयार करने से लेकर मोबाइल फोन के पुर्जे बनाने तक के कई काम बच्चों से लिए जाते हैं सूची में बताया गए उत्पादों में से बीस ऐसे हैं जो भारत में बनाए जाते हैं। इनमे बीड़ी, पटाखे, माचिस, ईटे, जूते, काँच की चूड़ियाँ, ताले, इत्र और फुटबॉल शामिल हैं साथ ही बच्चों से कालीन और कढ़ाई के काम भी करवाया जाता है।[26]

भारत में अनगिनत बच्चे रोजगार की कठिन परिस्थितयों में कार्य करते हैं। खतरनाक उद्योगों या कार्यो में जबरन लगा देने के कारण ऐसे बच्चे खिलने से पहले ही मुरझा जाते हैं। गंभीर चोटे, जलने, व खाँसी दमा, टी. बी. जैसी अनेक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। विगत कुछ वर्षो में बाल श्रम पर रोक लगाने हेतु अनेक प्रयास किये जा रहे हैं। भारत में अनेक संगठनों द्वारा इस दिशा में प्रयास

तथा उच्चतम न्यायालय द्धारा महत्वपूर्ण फैसले लिए गए हैं। लेकिन इन प्रयासों के बाद भी समस्या और विकराल रूप ले रही है। संविधान के नियम, मानवाधिकारों की घोषणायें, विभिन्न योजनाएँ केवल कागजी कार्यवाही के स्तर पर ही रह जाती हैं।[27]

अध्ययन का औचित्य : बचपन मनुष्य के जीवन का शुरुआती विकास काल है। बच्चों के सही विकास के लिए उचित देखभाल की जरुरत होती है। बचपन काम करने या पैसा कमाने के लिए नहीं होता। भारत में विश्व के सर्वाधिक बाल श्रमिक है। हमारे संविधान के अनुसार फैक्टरियों, कारखानों और खतरनाक कार्यो में चौदह साल से कम उम्र के बच्चों के नियोजन पर रोक है। बाल श्रम (प्रतिषेध और विनियमन) अधिनियम 1986 के अनुसार चौदह साल से कम उम्र के बच्चों को तेरह खतरनाक Qol k; 57 çdk; kZesfu; kstu i j jkd gS[28]

हालाँकि बाल श्रम के सर्वाधिक सामान्य रूप असंगठित क्षेत्रों में देखने को मिलता है। बाल श्रम प्रतिषेध और विनिमयन के दायरे में ये क्षेत्र नहीं आता जिसके कारण से अधिकांश बाल श्रमिक अधिनियम के दायरे से बाहर रह जाते हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य बाल श्रम के कारणों को जानना और समस्या का निराकरण करना है ताकि देश का भविष्य विषम परिस्थितियाँ में रह रहा है उसको जन जन तक पहुँचाना एक जागरूकता लाना।

उद्देश्य

1) बाल श्रम की समस्या का विश्लेषण करना।
2) बाल श्रम के वास्तविक कारणों को ज्ञात करना।
3) समस्या का निराकरण प्रस्तुत करना।

शोध प्रारूप : भारत मे बाल श्रम की स्थिति बहुत गंभीर है। घोर दरिद्रता और उसके साथ अर्ध पोषण एक ऐसा कुचक्र है जिससे बाल श्रमिक पीड़ित रहता है। कम आयु में काम करने से बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। बाल श्रम (प्रतिषेद और विनियमन अधिनियम 1986) के अनुसार बाल श्रम एक दंडनीय अपराध माना जाता है उसके बावजूद बाल श्रम की समस्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। कानूनी रूप से प्रतिबंधित होने के कारण कोई भी मालिक ये स्वीकार नहीं करता कि उसके यहाँ बाल श्रमिक काम करता है. और न ही कोई बाल श्रमिकों के विषय में जानकारी देने के लिए तैयार होता है। ऐसी स्थिति में प्रमुख समस्या बाल श्रमिकों के चयन सूची की थी। ऐसे में अध्ययनकर्ता ने कुछ बाल श्रमिक बच्चों को खोजा तथा उनकी सहायता से अन्य कामगार बच्चों तक पहुंच कर 400 बच्चों की सूची बनाई। ये बाल श्रमिक भिन्न भिन्न प्रकार के कार्य क्षेत्रों से सम्बंघित थे। बाल श्रमिक विभिन्न जाति एवं समुदाय से सम्बंधित थे। प्रस्तुत शोध में अध्ययन क्षेत्र कानपुर नगर को चुना गया। कानपुर एक औद्योगिक नगर के रूप में जाना जाता है। कानपुर नगर में बाल श्रमिक कार्य करते हुआ विभिन्न क्षेत्रों मे पाए जाते हैं। शोध में बाल श्रमिकों की संख्या सुनिश्चित न होने के कारण चयन सविचार पूर्ण निर्दशन पद्धति के द्वारा किया गया है जिससे शोध के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके।

प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक वा द्वितीयक दोनों तथ्यों का प्रयोग किया गया है। जहाँ प्राथमिक तथ्यों के संकलन के लिए साक्षात्कार, अनुसूची एवं अवलोकन पद्धति का प्रयोग किया गया है। वहीं द्वितीयक तथ्यों के लिए पुस्तकालय, शासकीय प्रतिवेदन, विभिन्न अधिनियम, इंटरनेट पर प्रकाशित शोघ सामग्री एवं समाचार पत्र पत्रिका का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति निदानात्मक है। बाल श्रम की समस्या की गंभीरता को देखते हुए समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। साक्षात्कार एवं अनुसूची के माध्यम से सूचनाए एकत्रित की गयी हैं तथा आवश्यकता अनुसार असहभागी अवलोकन पद्दति का उपयोग किया गया है।

विश्लेषण : किसी भी समस्या के विषय में जानने के लिए उससे सम्बंदित प्रमुख बातों को स्पस्ट करना आवश्यक होता है। श्रम करना अनुचित नहीं है लेकिन बच्चों से श्रम करवाना अनुचित है। बच्चों की आयु ही प्रमुख कारक है। आयु का निर्धारण जन्म से होता है, आयु के अनुसार विभिन्न कार्यो को करने एवं न करने के कुछ नियम होते हैं। आयु का संबंध मानसिक परिपक्वता एवं अनुभव से होता है।

तालिका संख्या -01

बाल श्रमिकों का आयु विवरण

आयु वर्ग	लड़के	लड़कियां	कुल बच्चे	प्रतिशत
5 - 8	25	20	45	11.25
8 - 11	67	27	94	23.50
11-14	228	33	261	6525
योग	320	80	400	100

तालिका संख्या एक से स्पष्ट है कि बाल श्रमिकों में 65. 25 प्रतिशत बच्चे 11-14 वर्ष के हैं क्योंकि इस उम्र के

बच्चे कार्य को समझने और करने में दक्ष हो जाते हैं 23.50 प्रतिशत बच्चे 8 से 11 वर्ष आयु के तथा सबसे कम 11.25 प्रतिशत बच्चे 5 से 8 वर्ष आयु के हैं। कम आयु के बच्चों को काम पर रखने का सबसे बड़ा लाभ है कम पैसे देकर उनसे अधिक काम लिया जा सकता है।

व्यक्ति के विकास के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण सीढ़ी का कार्य करती है बाल श्रमिकों में ज्यादातर बच्चें अशिक्षित रहते है या फिर प्राथमिक शिक्षा प्राप्त किए हुए ही पाये जाते है। शिक्षा के अभाव में विभिन्न व्यवसायों अथवा कार्यो में इनका अत्यधिक शोषण किया जाता है।

तालिका संख्या 02

बाल श्रमिकों की शैक्षिक स्थिति

आयु वर्ग	शिक्षित	अशिक्षित	अध्ययनरत	योग
5 - 8	0	37	0	37
8 - 11	5	68	0	73
11-14	37	128	24	189
14-16	22	60	19	101
योग	64	293	43	400
प्रतिशत	16.00	73.25	10.75	100

तालिका संख्या 2 में स्पष्ट हो रहा है की बाल श्रम का सबसे बड़ा दुष्प्रभाव यह है की यह बच्चों को उनके मौलिक अधिकार शिक्षा से वंचित कर देता है और पढ़ने की उम्र में बच्चे रोजगार करने लगते हैं। अध्ययन में 73.25 प्रतिशत बच्चे पूर्णतया अशिक्षित मिले 16 प्रतिशत बच्चे ऐसे मिले जो स्कूल पढ़ने गए थे 10.75 प्रतिशत बच्चे अभी भी कार्य करने के दौरान अपनी पढ़ाई को जारी रखते हैं।

तालिका संख्या -03

बाल श्रमिकों का श्रम स्वरुप

श्रम का स्वरुप	संख्या	प्रतिशत
दुकानो में श्रमिक	203	50.75
व्यापार में श्रमिक	175	43.75
कृषि में श्रमिक	11	02.75
घरेलू नौकर	11	02.75
योग	400	100

तालिका संख्या 3 के अनुसार सर्वाधिक बाल मजदूर छोटे-बड़े कारखानों व दुकानों में नौकरी करते पाए गए जो समग्र का 50.75 है। अध्ययन में देखा गया कि अधिकांश बच्चे दूसरों की दुकानों, ढाबों, कारखानों में कार्य करते मिले, 43.75 प्रतिशत बच्चे व्यापार के क्षेत्र में मिले ये असंगठित प्रकार के व्यापार थे जिसमें वे पंक्चर बनाते, चाय की दुकान पर, सब्जी बेचते तथा वस्तुओं की फेरी लगते मिले, 2.75 प्रतिशत बच्चे कृषि कार्य में लगे पाए गए तथा 2.75 प्रतिशत बच्चे घरेलू नौकर के रूप में काम करते मिले घरेलू नौकर के रूप में अधिकांशतः बालिका श्रमिक है।

तालिका संख्या -04

बाल श्रमिकों के कार्य के घंटे

कार्य के घंटे	संख्या	प्रतिशत
02 - 03 घंटे	39	9.75
03 - 06 घंटे	33	8.25
06 - 08 घंटे	67	16.75
08 - 10 घंटे	261	65.25
योग	400	100.00

तालिका संख्या 4 के अनुसार प्राप्त तथ्य बताते है 65.25 प्रतिशत बच्चों से 8 से 10 घण्टे कठोर मेहनत कराई जाती है जो कि बच्चों के कोमल शरीर पर एक अत्याचार का ही रूप है। 16.75 प्रतिशत बच्चों ने बताया कि वे 6 से 8 घण्टे कार्य क्षेत्र में रहते है। 8.25 प्रतिशत बच्चे 3 से 8 घण्टे के बीच में कार्य करते है 9.75 प्रतिशत बच्चों ने स्वीकार किया कि वे 2 से 3 घण्टे कार्य करते है ये अधिकतर घरो में काम करने वाले थे।

तालिका संख्या -05

बाल श्रम का कारण

बाल श्रम का कारण	संख्या	प्रतिशत
पैसे के लिए	188	47.00
कर्ज चुकाने के लिए	88	22.00
ऐच्छिक	46	11.50
पारिवारिक दबाववश	5	01.25
अन्य कारण	73	18.25
योग	400	100

तालिका संख्या 5 के अनुसार 47 प्रतिशत बच्चों ने स्वीकार किया कि वे पैसे के लिए कार्य करते हैं। बाल श्रम का मूल कारण ही गरीबी है 22 प्रतिशत बच्चे कर्ज चुकाने के लिए रोजगार को ओर अग्रसर हुए 11.50 प्रतिशत ऐसे भी मिले जो स्कूल न जाने के कारण ऐच्छिक रूप से कार्य करते हुए मिले 1.25 प्रतिशत बच्चों ने इच्छा न होते हुए भी दबाववश कार्य करना स्वीकार किया 18.25 प्रतिशत बच्चों ने मजदूरी करने के अनेक अन्य कारण बताए।

तालिका संख्या -06
कार्य के दौरान बीमारी

कार्य के दौरान बीमारी	संख्या	प्रतिशत
हाँ	55	13.75
नहीं	345	86.25
योग	400	100.00

तालिका संख्या 6 के अनुसार 13.75 प्रतिशत बाल श्रमिकों ने स्वीकार किया को उन्हें बीमारी या शारीरिक श्रति हुई 86.25 प्रतिशत बच्चों का उत्तर नहीं में मिला क्योंकि विषम परिस्थिति होने के कारण शारीरिक कष्ट तो होता है लेकिन वे इसके इतने आदी हो जाते हैं कि उनको महसूस ही नहीं होता हैं।

तालिका संख्या -07
मालिकों का व्यवहार

मालिकों का व्यवहार	संख्या	प्रतिशत
सहानुभूतिपूर्ण	105	26.25
बुरा	59	14.75
सामान्य	236	59.00
योग	400	100.00

तालिका संख्या 7 के अध्ययन से स्पष्ट है कि छोटे छोटे बच्चे जब कार्य क्षेत्र में बीमार होते हैं तो 59 प्रतिशत मालिकों का व्यवहार सामान्य ही रहता है उनके इस बात का कोई फर्क नहीं पड़ता है लेकिन 26.25 प्रतिशत मालिकों का व्यवहार सहानुभूति पूर्ण होता है वो उनके लिए भोजन और दवा की व्यवस्था करते हैं लेकिन 14.75 प्रतिशत मालिकों का व्यवहार पहले की अपेक्षाकृत और बुरा हो जाता है।

तालिका संख्या - 08
प्राप्त होने वाली मजदूरी से सन्तुष्टि

वेतन से सन्तुष्टि	संख्या	प्रतिशत
पर्याप्त	188	47.00
अपर्याप्त	212	53.00
योग	400	100.00

तालिका संख्या 8 से स्पष्ट है की मजदूरी के दौरान 57 प्रतिशत बच्चों ने स्वीकार किया को उन्हें पर्याप्त मजदूरी का भुगतान नहीं किया जाता है अधिकांश मालिक बच्चों को नौकरी पर शायद इसीलिए रखते है को उन्हें कम भुगतान करके अधिक काम लिया जा सके 47 प्रतिशत बच्चों ने प्राप्त मजदूरी को पर्याप्त बताया है। बच्चों को कम वेतन का भुगतान शोषण का एक रूप है।

तालिका संख्या -09
पहली नौकरी छोड़ने का कारण

नौकरी छोड़ने का कारण	संख्या	प्रतिशत
मार के डर से	66	16.50
कम पैसे	57	14.25
काम के घंटे अधिक होना	89	22.25
अन्य कारण	188	47.00
योग	400	100.00

तालिका संख्या 9 से स्पष्ट है कि अधिकांश बच्चे (लगभग 47 प्रतिशत) कई नौकरियाँ बदल-बदल के कार्य करते मिले। इसके उन्होंने अनेक कारण बताए जैसे कार्य स्थल का दूर होना, देर रात छुट्टी मिलना, छुट्टी ना देना, गाली देना दुर्व्यवहार करना आदि। 22.25 प्रतिशत बच्चों ने कार्य का समय अधिक होने का उल्लेख किया 16.50 प्रतिशत बच्चों ने बताया कि कार्य स्थल पर गलती होने पर मार पड़ती थी जिसकी वजह से नौकरी छोड़ी थी 14.25 प्रतिशत बच्चों ने कम पैसे मिलने को वजह से नौकरी छोड़ी थी।

तालिका संख्या -10
कार्य के दौरान नशीली वस्तु का सेवन

नशीली वस्तु का सेवन	संख्या	प्रतिशत
हाँ	287	71.75
नहीं	113	28.25
योग	400	100.00

तालिका संख्या 10 से स्पष्ट है की अधिकांश बच्चों (71.75 प्रतिशत) ने स्वीकार किया कि उन्होंने कार्य के दौरान नशीली वस्तुओं का सेवन शुरू किया। कारण सहकर्मी के सुझाव पर। 28.25 प्रतिशत बाल श्रमिकों ने किसी भी प्रकार के नशीले वस्तु का सेवन न करने की बात बताई।

तालिका संख्या - 11
बाल श्रम अधिनियम की जानकारी

अधिनियम का ज्ञान	संख्या	प्रतिशत
हाँ	28	22.40
नही।	97	77.60
कोई जवाब नहीं	0	0.00
योग	125	100.00

तालिका संख्या 11 से स्पष्ट है कि समस्या की गंभीरता को देखते हुए बाल श्रमिकों के मालिकों से जानने का प्रयास किया को क्या उन्हें बाल श्रम अधिनियम को

जानकारी है। अधिकांश मालिकों ने स्पष्ट रूप से मना कर दिया कि उन्हें बाल श्रम के अधिनियम की जानकारी है 22.04 प्रतिशत मालिकों ने स्वीकार किया की उन्हें बाल श्रम अधिनियम की जानकारी है।

निष्कर्ष

1. सर्वोधिक बालश्रमिक 11-14 वर्ष के हैं।
2. 73.23 प्रतिशत बालश्रमिक अशिक्षित हैं।
3. सर्वाधिक बाल श्रमिक छोटे और बड़े कारखानों में कार्य करते मिले।.
4. बालश्रमिक सर्वाधिक 8 से 10 घंटे काम करते हैं।
5. सर्वाधिक बाल श्रमिक गरीबी के कारण कार्य करते मिले।
6. 13.75 प्रतिशत बालश्रमिक कार्य के दौरान बीमार हुए थे।
7. बीमारी के दौरान मालिकों का व्यवहार सामान्य रहता है।
8. 53 प्रतिशत बालश्रमिको को उनके कार्य का पर्याप्तः भुगतान नहीं मिलता है।
9. 22.25 प्रतिशत बालश्रमिकों ने पहली नौकरी छोड़ने की वजह कार्य के घंटे अधिक होना बताया।
10. 71.76 प्रतिशत बालश्रमिकों ने कार्य के दौरान नशीली वस्तुओ का सेवन लिप्त होना स्वीकार किया।
11. 77.60 प्रतिशत मालिकों ने बाल श्रमिक अधिनियम की जानकारी का न होना स्वीकार किया।

बाल श्रम को समस्या से जुड़े तथ्य इस यथार्थ को उजागर करते हैं की बाल श्रम की समस्या का प्रमुख कारण गरीबी और अशिक्षा है। जब तक गरीबी उन्मूलन और शिक्षा नीति को सुचारु रूप से लागू नहीं किया जाएगा तब तक समस्या का समाधान संभव नहीं है। बाल श्रम बच्चों को उनके मौलिक अधिकारों से वंचित करता है। बाल श्रम का सबसे बड़ा तात्कालिक दुष्प्रभाव यह है कि बालक का व्यक्तित्व इतना विकृत हो जाता है कि वह एक स्वस्थ एवं सृजनात्मक वयस्क के रूप में पनप नहीं पाता और बालक छोटी ही उम्र से कठोर परिश्रम की भट्टी में जल जाता है इससे बालक की सामाजिक और आर्थिक स्थिति बदतर हो जाती है। बाल श्रम रोकने के लिए कानून भी है लेकिन उनका कोई पालन नहीं करता। बच्चों को घरेलू बाल मजदूर के रूप में लगाने के विरुद्ध एक निषेधाज्ञा भी जारी को गयी पर दुर्भाग्य से इन कानूनों का खुले आम उल्लंघन हो रहा है आज भी शहरों महानगरों में धनी घरों से लेकर, अनेक छोटे बड़े उद्योगों जैसे जूता, माचिस, बीड़ी, दरी, कालीन बनाने वाले उद्योगों, ढाबे, होटल, पंक्चर को दुकान में बाल श्रमिक मिल जायेंगे। अंततः निष्कर्ष यह है कि बाल श्रम के बारे में सर्वसम्मत व्याख्या संभव नहीं है। बाल श्रम के अनेक रूप देखने को मिलते हैं किन्तु कोई सुनिश्चित समाधान नहीं मिलता।

सुझाव ऐसा कहा जाता है कि कल का भविष्य बच्चों के हाथो में है लेकिन यह तभी संभव है जब वे मानसिक रूप से पर्याप्त मजबूत हो उन्हें मजबूत बनाने के लिए पर्याप्त पोषण और स्वाथ्य देखभाल की जानी चाहिए। अब ये संपूर्ण विश्व में स्वीकार किया जा चुका है किसी भी देश का आर्थिक विकास मानव संसाधन विकास में निवेश पर निर्भर करता है बच्चे विकास के सबसे महत्वपूर्ण घटक है।[29]

आज बाल मजदूरी शिक्षित समाज में कलंक है। यदि हम ये सोचते हैं कि किसी भी सामाजिक समस्या को समाप्त करने को जिम्मेदारी सरकार की है तो यह गलत है बाल श्रम के अंत के लिए सरकारों और समाज को मिलकर कार्य करना होगा। साथ ही बाल मजदूरी पर पूर्णतः रोक लगाई जानी चाहिए। बच्चों के उत्थान और अधिकारों के लिए अनेक योजनाओं का आरम्भ होना चाहिए जिससे बच्चों के जीवन पर सकारात्मक प्रभाव दिखे। शिक्षा का अधिकार हर एक बच्चे के लिए अनिवार्य कर देना चाहिए। गरीबी दूर करने वाले सभी व्यवारिक उपाय प्रयोग में लाये जाने चाहिए बाल श्रम की समस्या का समाधान तभी होगा जब हर बच्चे के पास उसके मौलिक अधिकार पहुँच जायेगें। जब तक बच्चों को उनके अधिकारों और शिक्षा से वंचित रखा जायेगा तब तक देश के उज्जवल भविष्य की कल्पना करना निरर्थक है। इस संबंध में निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:-

सुझाव :

1. परिवारिक निर्धनता बालश्रम का प्रमुख कारण है। अतः गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
2. बालश्रम की रोकथाम हेतु सरकार द्वारा समय-समय पर जारी विभिन्न अधिनियमों का कठोरता से पालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
3. निःशुल्क बालश्रमिक विद्यालयों की स्थापना किया जाना चाहिए।
4. बालश्रमिक को शिक्षा के साथ-साथ निःशुल्क व्यवसायिक

प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए।

5. अंसगठित क्षेत्र में कार्यरत् बालश्रमिकों को काम से हटाने के बाद उनके पुनर्वास के सार्थक प्रयास किऐ जाना चाहिए।
6. बालश्रमिकों के परिवार के सदस्यों को रोजगार के इतने अवसर उपलब्ध कराए जाए कि उन्हें काम की कमी न रहे तथा उन्हें इतनी मजदूरी दी जाए कि अपने बच्चों की शिक्षा सुनिश्चित कर सकें, व उनकी न्यूनतम अवश्यकताओं की पूर्ति भी कर सकें।
7. स्वयंसेवी संस्थाऐं, पत्रकार तथा जन संचार के माध्यमों को बालश्रम के कल्याणार्थ कार्यक्रम चलाने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
8. बालश्रमिकों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और बालश्रमिकों को विकास के समान अवसर दिए जाने चाहिए।

संदर्भ

1) सुदर्शन शेंडे राम जी हरिदास, *'बाल श्रम, अपराध एवं समाधान'*, साहित्यगर प्रकाशन, जयपुर 2007 पृ.25
2) शर्मा सुभाष, *'भारत में बाल मजदूर'* प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, पृ.122
3) मिश्रा लक्ष्मीधर, *'नाजुक बचपन मुश्किल जिम्मेदारी'*, देश काल सोसाइटी नई दिल्ली, सितम्बर 2000 पृ. 27
4) मदान. आर. जी., *'भारतीय सामाजिक समस्याएँ'*, विवेक प्रकाशन, दिल्ली 2000 पृ.83
5) https://labour.gov.in/hi/childlabour/census-data-child-labour/
6) शंकर आर. हेलन, पंकज, डिमरी, फिलिप ए. नाथ, *'बाल श्रम और स्वस्थ्य जोखिम'*, वी. वी. गिरी राष्ट्रीय श्रम संस्था, नोएडा, 2015, पृ. 04
7) उत्तर प्रदेश में बाल श्रम राज्यकार्य योजना रिपोर्ट 2016 श्रम मंत्रालय उत्तर प्रदेश पृ.02
8) भदौरिया अशोक सिह एवं नम्रता चौहान, *'मानवाधिकार संरक्षण एवं बाल श्रम'*, राधा कमल मुखर्जी चिंतन परम्परा वर्ष 18 अंक 2 जुलाई दिसंबर 2016 पृ.91
9) शंकर आर. हेलन, पंकज, डिमरी, फिलिप ए. नाथ, पूर्वोक्त, पृ. पृ.27-28
10) शर्मा राजीव एवं निखिल राज, *'आगरा क्षेत्र के घुँघरू उद्योग में बाल श्रम'*, वी. वी. गिरी राष्ट्रीय श्रम संस्थान नोएडा 2000 पृ. 1-2
11) खातू ए.के., तमंग राव आर. सी., *'भारत बाल श्रमिक'*, राष्ट्रीय बाल श्रम संसाधन केंद्र, राष्ट्रीय श्रम संस्थान नोएडा अक्टूबर 1995, पृ.18
12) Microsoft word - 11 chapter 2.docx-shodganga.inflibnet.ac.in.bitstream page number 51/
13) ibid. p. 52
14) ibid. p. 52
15) सिंह रजनी रजंन एवं हेमंत नामदेव, *'बाल श्रमिक विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्या का अध्ययन'*, परिपेक्ष शैक्षिक योजना एवं प्रशाशन का सामाजिक आर्थिक सन्दर्भ वर्ष 22 अंक 3 दिसम्बर 2015 पृ.18 राष्ट्र शैक्षिक योजना एवं प्रशासन fo'ofo|ky; ubZ fnYyh www.nucpa.org/
16) सोनकर एल बी एवं सुनीता, *'असंगठित में कार्यरत बाल श्रमिकों के सामाजिक आर्थिक अध्ययन'* दुर्ग शहर के विशेष सन्दर्भ में anvpublication.org
17) बहुगुणा उमा, *'बाल श्रम :समाजार्थिक एवं शैक्षणिक विवेचना'*, राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 15 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2013, पृ. 56-59
18) https://labour.gov.in/hi/childlabour/census-data-child-labour
19) https://www.hindikiduniya.com
20) कुमार प्रवीण *'भारत मे बाल श्रम और इसके दुष्परिणाम'* -शोध मंथन vol-viii no-1-2017 anubooks.com
21) उत्तर प्रदेश में बाल श्रम राज्यकार्य योजना रिपोर्ट 2016 पूर्वोक्त पृ.5
22) hi.vikaspedia.in>education>child labour
23) Centre / states acts and rules on child labour (National Humans Rights Commission Library). 2, 3. www.nhrc.nic.in/documents/LibDoc/ChildLabor_A.pdf
24) भदौरिया अशोक सिह, एवं नम्रता चौहान, पूर्वोक्त पृ. 93
25) राष्ट्रीय बाल श्रम सम्मलेन संकल्प और चुनौतियां प्रतिवेदन भारत सरकार श्रम मंत्रालय, नई दिल्ली 22 जनवरी 2001 पृ.7
26) https://www.m.dw.com 19 अक्टूबर /
27) सिंह रोमा घोष, निखिल राज, सेकर हेलन आर., *'सुकुमार अवस्था मे कठोर श्रम'*, वी. वी. गिरी राष्ट्रीय संस्थान नोएडा 2002 पृ.185
28) रिपोर्ट भारत में बाल श्रमिक - राष्ट्रीय बाल श्रम संसाधन केंद्र राष्ट्रीय श्रम संस्थान नोएडा अक्टूबर 1995 पृ.18
29) पवार मंजू, *'समेकित बाल योजना समस्याएं और सुझाव'*, राधा कमल मुखर्जी चिंतन परम्परा वर्ष 20 अंक 1 जनवरी जून 2018 पृ. 09

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों – अध्यापिकाओं की मानवाधिकारों के प्रति अभिवृत्ति

❑ डॉ0 स्नेहलता चतुर्वेदी

वर्तमान में एक ओर तकनीकी दृष्टि से उत्कृष्टता अर्जित करने की ओर निरन्तर कोशिश जारी है, तो दूसरी ओर व्यापक परिप्रेक्ष्य मे शिक्षा में नवाचारों को अधिक से अधिक जोड़ने तथा उत्कृष्टता हेतु प्रयास चल रहा है। आज व्यापकता, निजीकरण, तकनीकी, पर्यावरण, जनसंख्या नियन्त्रण तथा मानव संसाधन प्रबन्धन की दृष्टि से चिन्तन, मूल्य, नैतिकता, उत्कृष्टता एवं समाजिक न्याय हेतु सर्वत्र प्रयास दिखाई दे रहे हैं। इन सभी प्रयासों में मुख्य मुद्दा वर्तमान की चुनौतियों का सामना करना तथा जनसमुदाय में जागरूकता उत्पन्न करना है। इन दोनों दृष्टिकोणों से शिक्षक शिक्षा में उत्कृष्टता की सर्वाधिक आवश्यता हैं।

समाज का जो वर्तमान स्वरूप है तथा उसमें जिस प्रकार की अराजकता है, उसने एक गम्भीर प्रश्न चिंतकों के समक्ष खड़ा कर दिया है। मानव के समक्ष सबसे बडा संकट है मानव का अमानवीय हो जाना। भोगोन्मत जाति आज विवेक शक्ति से वंचित सी हो गई तथा क्रूरतापूर्वक, पशुवत व्यवहार कर रही है। मानवीय मूल्यों का क्षरण इतनी त्वरित गति से हो रहा है कि चिंतक भौचक्के रह गये हैं। मनुष्य भौतिक आनन्द के भाव में इतना विक्षिप्त सा हो रहा है कि उसे आत्मा के परिक्षेत्रों का कोई ज्ञान ही नहीं हो पा रहा है। यह मानवीय मूल्यों के क्षरण की पराकष्ठा का घोतक है। सभ्यता का यह दौर वस्तुतः आत्म हनन का दौर है। भारतीय मनीषियों ने जिस आध्यात्मिक दृष्टि से विश्व को देखने की प्रक्रिया अपनाई थी और जिसका लोहा पूरे विश्व ने मान लिया था, आज धूमिल हो गई है। विश्व में गुरू का दर्जा हासिल करने वाला भारत, स्वयं मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए जूझ रहा है। यह हमारे भौतिक विकास का खतरनाक पहलू है।[1]

आधुनिक युग विज्ञान का युग माना जाता है और इस विज्ञान के द्वारा प्रत्येक राष्ट्र अपना विकास करना चाहता है। विश्व का प्रत्येक राष्ट्र ज्ञान विज्ञान में उन्नति के साथ-साथ अपने देश के नागरिकों की उन्नति भी चाहता है। अतः प्रत्येक राष्ट्र अपने नागरिकों को उस देश के संविधान द्वारा कुछ सुविधायें प्रदान करता है यही सुविधाएँ नागरिकों के अधिकार कहलाती हैं। प्रजातांत्रिक एवं सभ्य राष्ट्रों की आधारशिला मानवों को प्राप्त अधिकार होते हैं। इन अधिकारों के अभाव में मानव अपना स्वतंत्र चिंतन नहीं कर सकता और बिना स्वतंत्र चिन्तन के मानव कल्याणकारी योजनायें नहीं बना सकता। विश्व के प्रत्येक राष्ट्र की यही प्रबल आकांक्षा होती है कि उसके प्रत्येक नागरिक को मानव अधिकार प्राप्त हों। मानव अधिकारों का प्रयोजन एक क्षमतापूर्ण समाज की सृष्टि करना एवं विश्व के प्रत्येक मानव को समान रूप से प्रतिबंधों तथा दबावों से मुक्त बनाकर उनके लिए स्वतंत्रता का स्वर्ण युग लाना है।

विश्व का प्रत्येक राष्ट्र ज्ञान विज्ञान में उन्नति के साथ-साथ अपने देश के नागरिकों की उन्नति भी चाहता है। अतः प्रत्येक राष्ट्र अपने नागरिकों को उस देश के संविधान द्वारा कुछ सुविधायें प्रदान करता है यही सुविधाएँ नागरिकों के अधिकार कहलाती हैं। प्रजातांत्रिक एवं सभ्य राष्ट्रों की आधारशिला मानवों को प्राप्त अधिकार होते हैं। इन अधिकारों के अभाव में मानव अपना स्वतंत्र चिंतन नहीं कर सकता और बिना स्वतंत्र चिन्तन के मानव कल्याणकारी योजनायें नहीं बना सकता। विश्व के प्रत्येक राष्ट्र की यही प्रबल आकांक्षा होती है कि उसके प्रत्येक नागरिक को मानव अधिकार प्राप्त हों। मानव अधिकारों का प्रयोजन एक क्षमतापूर्ण समाज की सृष्टि करना एवं विश्व के प्रत्येक मानव को समान रूप से प्रतिबंधों तथा दबावों से मुक्त बनाकर उनके लिए स्वतंत्रता का स्वर्ण युग लाना है। प्रस्तुत अध्ययन माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की मानवाधिकारों के प्रति अभिवृत्ति का ज्ञान प्राप्त करने की दिशा में एक प्रयास रहा है।

❑ एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग, ए. के. कालेज, शिकोहाबाद (उ0प्र0)

वर्तमान युग मानव अधिकारों के विकास के इतिहास के विश्लेषण का युग है। मानव अधिकार की अवधारणा पश्चिम से भारत तक पहुँची है। इसमें इंग्लैण्ड में संसदीय सर्वोच्चता के लिए संघर्ष, फ्रांसीसी राष्ट्रीय क्रांति, अमरीका का स्वातंत्रय घोष और रूसी क्रांति मील के पत्थर सिद्ध हुए हैं।[2] 10 दिसम्बर, 1948 को अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस के अवसर पर मानव अधिकारों की घोषणा की गई। इस घटना ने मानव अधिकारों को चर्मोत्कर्ष प्रदान किया।[3]

डम्बर्टन ओक्स सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना में विश्व शांति मुद्दा था। परन्तु इसमें भी मानव अधिकारों व मूलभूत स्वतंत्रताओं को बढ़ावा देना संयुक्त राष्ट्र संघ का मुख्य दायित्व स्वीकार किया गया। राष्ट्र संघ के चार्टर में दो पक्षों पर विशेष बल दिया गया।[4]

1. मानव अधिकारों की मान्यता।
2. मानव अधिकारों के विकास में सहयोग की आवश्यकता।

इसी लक्ष्य को संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर के अनुच्छेद 55 में विस्तृत रूप से स्पष्ट किया गया है जैसे कि मानव के आर्थिक व सामाजिक विकास की ओर ध्यान देना, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सामाजिक एवं स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का समाधान करना, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक सहयोग को विकसित करना विश्वव्यापी स्तर पर मानव-मानव के संबंधों को मानवोचित आधार पर विकसित करना प्रमुख हैं। विश्व के विभिन्न देशों में मानव अधिकारों की रक्षा के लिए दो संगठन कार्य कर रहे हैं- 1. मानव अधिकार आयोग 2- एमनेस्टी इन्टरनेशनल। यह दोनों संस्थायें संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा स्वीकृत घोषणा पत्र में अंकित मानव अधिकारों की रक्षा के लिए कृत संकल्प हैं।

मानव अधिकार शिक्षाः मानवाधिकार शब्द से आशय मानव के अधिकारों से है। यदि मानवाधिकार की अवधारणा के काल के बारे में विस्तार से विचार किया जाए तो निश्चित रूप से इसे सृष्टि के प्रारम्भ से मान लेना तर्कसंगत होगा। मानवाधिकारों का सीधा सम्बन्ध मानवीय सुखों से है सुख की अवधारणा को तभी से मानना श्रेयस्कर होगा जब से मानव जाति, समाज, एवं राज्य का उदय हुआ।[5] मानव अधिकार वे अधिकार हैं जिन्हें प्रत्येक मनुष्य को उपभोग व संरक्षण करने का हक है।[6]

मानव अधिकारों का जन्म पृथ्वी पर मनुष्य के विकास के साथ ही हुआ, क्योंकि इन अधिकारों के बिना वह न तो गरिमा के साथ जीवनयापन कर सकता था और न सभ्यता तथा संस्कृति का विकास कर सकता था। मानव अधिकारों के बारे में व्यवस्थित रूप से सोचने और उन्हें संगठित रूप देने का पहला अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास 25 सितम्बर 1926 की दासता के विरूद्ध हुए विश्व सम्मेलन के रूप में सामने आया।[7]

मानवाधिकार का तात्पर्य मानव के उन अधिकारों से है जो उन्हें जाति, नस्ल, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, सम्प्रदाय, राष्ट्रीयता आदि का भेदभाव किए बगैर सभी को सिर्फ मानव रूप में जन्म लेने के कारण प्राप्त होता है। इन अधिकारों से वंचित मानवों का विकास अवरूद्ध हो जाता है।[8]

मानव अधिकारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करने पर हम यह पाते हैं कि इसमें आधारभूत तत्व मनुष्य के प्राचीनतम साहित्य एवं धार्मिक पुस्तकों में विद्यमान है। बाइबिल, कुरान शरीफ, वेद, रामायण, महाभारत, श्रीमद् भागवत्गीता तथा जैन, बौद्ध व सिख, धर्मग्रन्थों में मानवाधिकार की अवधारणा विद्यमान है। हैराक्टिस, सोफ्रेटीन (दार्शनिक) सोफिस्टों, प्लेटो, अरस्तू, जेनो, कौटिल्य, सिसरो, पौडलस, धीरूवल्लुवर की रचनाओं में भी मानवाधिकार की अवधारणा के आधारभूत तत्व हैं और ये ही मौलिक अधिकार के मौलिक स्त्रोत हैं।[9]

प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था अमानवीय वर्ण व्यवस्था पर आधारित थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चार वर्णों में विभाजित भारतीय सामाजिक व्यवस्था में निचले दो वर्ण उत्पादक होते हुए भी शोषित थे। आगे चलकर जन्म के आधार पर अन्याय और शोषण और भी बढ़ गया। मध्यकालीन भारत में भी मानव अधिकार किसी न किसी रूप में विद्यमान थे। मुगल कालीन भारत में अकबर और जहाँगीर की न्यायप्रियता प्रसिद्ध रही है। अकबर ने अपनी धार्मिक नीति और 'दीन-ए-इलाही' के द्वारा जनता को धार्मिक भेदभाव को मिटाकर सबके साथ प्रेम एवं सहयोग करने पर बल दिया था।

भारत का आधुनिक युग नये भारत के उदय का युग है। मध्यकालीन सामाजिक बुराइयाँ जैसे- सतीप्रथा, बाल विवाह, जाति-प्रथा तथा अन्य अमानवीय कुप्रथाओं के विरूद्ध इस युग में मानवतावादी आन्दोलन शुरू हुआ। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, ज्योतिबाफूले, नारायण गुरू, डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एवं अन्य समाज सुधारकों ने मानव की गरिमा

को स्थापित करने के लिए सतत संघर्ष किया।

मानव अधिकार, मानवीय विकास की अनिवार्य शर्त हैं जो व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक हैं। इसके माध्यम से व्यक्ति शोषण एवं अत्याचार के विरूद्ध न्यायिक संरक्षण प्राप्त कर अपने राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में प्रगति के अवसर पाता हैं। इन मानव अधिकारों पर आधारित संयुक्त राष्ट्र संघ के वियाना विश्व सम्मेलन में दी गई मानव अधिकार की शिक्षा घोषणा अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जिसके अनुसार मानव अधिकार शिक्षा को विश्व शांति के हित में सर्वोच्च स्थान दिया जाये। प्रत्येक राष्ट्र में अशिक्षा को दूर करने, प्रौढ़ शिक्षा द्वारा प्रत्येक नागरिक को सर्वतोन्मुखी विकास के अवसर दिये जायें ताकि बर्बर शोषण के विरूद्ध मानव अधिकारों को संरक्षण मिले। इस हेतु प्रत्येक राष्ट्र अनिवार्य रूप से मानव अधिकार शिक्षा में मानवीय कानून, प्रजातंत्र तथा कानून की प्रतिष्ठा, विश्व शांति समस्त मानवजाति के विकास, न्याय एवं मूलभूत अधिकारों सहित मानव की पराकाष्ठा को पाठ्यक्रम में शामिल करे जिससे उसे क्रियात्मक रूप दिया जा सके। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ''मानवीय गरिमा के संरक्षण से प्रत्येक व्यक्ति का उच्च जीवन स्तर प्राप्ति के अधिकारों एवं उनके संरक्षण की जानकारी ही मानव अधिकार शिक्षा है, जिसके द्वारा वह राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रगति एवं शान्ति में सहयोग दे सकता हैं।''[10]

भारत प्राचीन काल से ही मानव अधिकारों का समर्थक रहा है। भारत का स्वतंत्रता संग्राम मानव अधिकारों की रक्षा का प्रतीक हैं। भारत के संविधान में मानव अधिकारों व नीति निर्देशक तत्वों को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं; परन्तु मानव अपना विकास तभी कर सकता है जब वह शिक्षित हो। सम्पूर्ण मानव जाति को अपने अधिकारों की रक्षा के लिए शिक्षित करना आवश्यक हैं।[11]

पूर्वगामी अध्ययनः मानव अधिकारों से सम्बन्धित अध्ययन विदेशों व भारत में लम्बे समय से किये जाते रहे हैं। विदेशों व भारत में किये गये कुछ प्रमुख अध्ययनों का सारांश निम्न हैं-

अमेरिकी क्रान्ति : 1776 में लगभग एक सदी बाद अमेरिकी क्रान्ति के लम्बे संघर्ष के बाद ब्रिटेन से अमेरिका ने आजादी पाई। इस मौके पर जारी अपने घोषणा पत्र में उन्होंने मानव अधिकारों को शामिल किया। इसमें जीवन स्वतन्त्रता और खुशी की तलाश के अधिकार शामिल थे।[12]

फ्रान्स की क्रान्ति : 1789 में फ्रान्स में क्रान्ति का विस्फोट हुआ वहां की जनता ने लुई 16 वें के विरूद्ध विद्रोह किया, और अपने अधिकारों तथा मूलभूत स्वतंत्रताओं की घोषणा की। उनका नारा था समानता, स्वतन्त्रता और मित्रता। इस घोषणा के पीछे वाल्टेयर, रूसों और टॉमस पेन के विचार थे। टॉमन पेन अंग्रेज था। उसने 'दि राइट्स ऑफ मेन' नाम की पुस्तक लिखी, जिसके कारण उसे इग्लैण्ड से भागना पड़ा।[13]

विधि का शासन : ब्रिटेन में विधि के शासन को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। इसका सामान्यतया अर्थ है कि ब्रिटेन में शासन विधि के अनुसार चलता है किसी व्यक्ति विशेष की इच्छानुसार नहीं। डायसी ने कहा था कि व्यक्ति को कानून के उल्लंघन के लिए दण्ड दिया जा सकता है, अन्य किसी बात के लिए नहीं। विधि शासन का डायसी के अनुसार दूसरा अर्थ विधिक समानता अथवा सभी वर्ग के लोगों का साधारण न्यायालयों द्वारा प्रयुक्त देश की सामान्य विधि के अधीन होना है। विधि के शासन का यह तात्पर्य भी है कि बहुत से मामलों में जिनकी संविधान में स्पष्टता नहीं है, न्यायालयों के निर्णय ही अंतिम माने गए हैं। विधि का शासन नागरिकों की स्वेच्छाचारी शासन के विरूद्ध रक्षा और विधि की सर्वोच्चता स्थापित करता है तथा विधि के समक्ष सभी व्यक्तियों की समानता का द्योतक है। ब्रिटेन में लिखित संविधान न होते हुए भी वहां नागरिकों को अन्य किसी भी देश के नागरिकों से कहीं अधिक मौलिक अधिकार विधि के शासन के अन्तर्गत ही प्राप्त हैं। विधि का शासन मानवाधिकारों का आधार स्तम्भ है। विधि के शासन के बिना मानवाधिकारों का संरक्षण सरकार के विरूद्ध नहीं किया जा सकता है। यदि किसी सरकारी कार्यवाही द्वारा मानवाधिकारों का विधि के विपरीत उल्लंघन किया जा रहा है, तो न्यायालय ऐसे कार्य को मान्य नहीं करते। विधि के शासन के सिद्धान्त के अनुसार विधि सर्वोच्च है। इग्लैण्ड में पार्लियामेन्ट द्वारा पारित अधिनियम सर्वोच्च विधि है तो अमेरिका में संविधान सर्वोच्च विधि है।[14]

मानवाधिकार तथा भारत संविधान : भारत प्राचीन काल से ही मानवता और मानवाधिकारों का संवाहक रहा है। भारत में मानवाधिकार हनन ब्रिटिशों के आगमन के समय से ही प्रारम्भ हुआ है। लेकिन अंग्रेजों के जाने के बाद भारत में मानवाधिकार के प्रति गहरा सम्मान व्यक्त

किया गया, जिसका सबसे बड़ा प्रभाव भारत का संविधान है। भारत के संविधान में सभी व्यक्तियों को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, रंग तथा वर्ण के बावजूद समान माना गया है तथा सभी व्यक्तियों को राजनीतिक, सिविल, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। इन अधिकारों को संविधान के भाग-3 में मूलाधिकार शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है, जिसका उल्लंघन कोई भी नहीं कर सकता। इन अधिकारों का उल्लंघन किए जाने पर न्यायालय में कार्यवाही की जा सकती है और अधिकार को वापस लिया जा सकता है। यहां तक कि संसद भी संविधान में संशोधन करके इन अधिकारों का अधिहरण नहीं कर सकती। हमारे संविधान में अनुच्छेद- 14, 15(1), 16(1), 19(1), 16(1)(क), 19(2)(ख), 20, 21, 25 ऐसे हैं जिसमें मानवाधिकारों के सन्दर्भ में उल्लेख है।[15]

इस तरह से मानव अधिकारों का हनन एक विश्वव्यापी समस्या है। जब तक मानव अधिकारों का हनन समाप्त नहीं हो जाता तब तक संयुक्त राष्ट्र संघ के मानव अधिकार सम्बन्धी उद्देश्यों को प्राप्त करना असम्भव है। अतएव मानव अधिकारों के हनन को रोकने एवं उनका पालन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि मानव अधिकार जागरूकता का प्रसार किया जाए एवं उसके लिए मानव अधिकार शिक्षा को दिया जाना अति आवश्यक है मानव अधिकार शिक्षा द्वारा मानव अधिकार सम्बन्धी विश्वव्यापी उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (1948) के अनुच्छेद 26 के अनुसार-

1. सभी को शिक्षा का अधिकार प्राप्त है, शिक्षा विशेष कर प्राथमिक शिक्षा मुफ्त प्रदान की जाये साथ ही उच्च शिक्षा योग्यता अनुसार सभी को प्राप्त होगी।
2. शिक्षा का उद्देश्य मानव व्यक्तिव का पूर्ण विकास करना होगा। शिक्षा से ही मानव अधिकार एवं मूल स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान को विकसित करने में मद्द मिलेगी।
3. शिक्षा विभिन्न देशों के मध्य आपसी समझ एवं सहिष्णुता विकसित करने का कार्य करेगी। शिक्षा संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों को पूर्ण करने में मद्द करेगी।
4. अभिभावकों को अपने बच्चों के लिए शिक्षा का चयन करने का अधिकार होगा।

मानव अधिकार शिक्षा क्या है?

मानव अधिकार शिक्षा न केवल शिक्षा है, अपितु वह मानव अधिकारों के अस्तित्व के लिये अति आवश्यक है। मानव अधिकार शिक्षा मानव अधिकारों के सम्बन्ध में जानकारी देती है, मानव अधिकारों को संरक्षण देती है एवं मानव अधिकारों के हनन को रोकने का प्रयास करती है। मानव अधिकार शिक्षा द्वारा लोगों को इस बात के लिये शिक्षित किया जाता है कि वे मानव अधिकारों का सम्मान किस प्रकार से करें, मानवाधिकारों की रक्षा कैसे करें एवं मानव अधिकारों के उल्लंघन को कैसे रोकें।

यूनेस्को के 1993 मानव अधिकार शिक्षा एवं लोकतन्त्र पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में मानव अधिकार को इस तरह परिभाषित किया है। मानव अधिकार शिक्षा मानव अधिकार ही है जो सतत विकास, नागरिक एवं सामाजिक लोकतन्त्र के लिये अति आवश्यक है। यह भी स्वीकार किया जाता है कि मानव अधिकार शिक्षा भेदभाव, अनुचित व्यवहार, अलोकतान्त्रिक अभिवृत्ति, सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास, समाज की अजागरूकता, पर्यावरण शोषण, बन्धन, मानव अधिकार, निरक्षरता एवं मानव अधिकार के किसी भी स्तर पर हनन को रोकने का प्रयास करती है। इसी तरह से संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा के प्रस्ताव 49/184 जो कि 1994 में पारित हुआ था, उसके अनुसार 01 जनवरी 1995 से शुरू होने वाला दशक मानव अधिकार शिक्षा दशक के रूप में मनाया जायेगा। इस प्रस्ताव के अनुसार मानव अधिकार शिक्षा केवल सूचना नहीं है, जीवन भर pyusokyh izfØ;k gS[16]

फरडीनैन्ड डी. स्कैमैन (1971) ने 'ह्यूमन राइट्स एण्ड यूटीलिटेरियन एनालेसिस' विषय पर ब्रेन्डिस विश्वविद्यालय में पीएच0डी0 शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया। जे0एच0 पैलाज (1981) ने ह्यूमन राइट्स इन टीचिंग ऑफ पाल VI विषय पर पोनूटिफिक विश्वविद्यालय, गेगोरियाना में पीएच0डी0 शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया। वैल्सको गिगोरीमाइकल ने 1983 में सिक्स्थ ग्रेडरस् एटीट्यूड टुवर्डस् ह्यूमन राइट्स एण्ड दी रिलेशनशिप ऑफ दोज एटीयूयूडस् टू सेल्फ कौंसेप्ट्स, लोकस ऑफ कन्ट्रोल, रेसीडेन्शियल स्टेबिलिटी एण्ड सेक्स विषय पर परडूए विश्वविद्यालय में शोध कार्य किया। बेन बोर्डा, थ्योडोर ऑर्थर जे. ने 1992 में एज्यूडिकेटिंग केसेज ऑफ कोलाइडिंग ह्यूमान राइट्स विषय पर टॅवेन्टी विश्वविद्यालय, नीदरलैण्ड में पीएच0डी0 शोध कार्य किया।

ऊषा नारायण ने 1996 में ह्यूमन राइट्स इन एज्यूकेशन विषय पर अध्ययन किया। गुलाब चौरसिया द्वारा 1996 में एन.सी.टी.ई. द्वारा 'नेशनल स्ट्रेटेजीज फोर प्रोमोटिंक ह्यूमन राइट्स ऐज्यूकेशन इन इण्डिया' विषय पर अध्ययन किया गया। विजय मूर्ति ने 1996 में 'अवर प्रोजेक्ट्स ऑन ह्यूमन राइट्स एज्यूकेशन' विषय पर अध्ययन किया।

मानव अधिकार शिक्षा की आवश्यकता : मानव अधिकार शिक्षा का वर्तमान युग में अत्यधिक महत्व है।सम्पूर्ण विश्व जहां आज मानव अधिकार हनन की समस्या का सामना कर रहा है वहां मानव अधिकार शिक्षा इस समस्या को कम करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है। बचपन से ही स्कूल में जब किसी बालक को मानव अधिकार सम्बन्धी शिक्षा दी जायेगी तो उसमें मानव अधिकार सम्बन्धी जागरूकता बढ़ेगी। उसमें मानव अधिकारों का सम्मान करने की भावना का विकास होगा। यह इसके व्यक्तित्व के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण होगा। ऐसी स्थिति में निश्चित ही मानव अधिकारों का हनन कम होगा एवं वह अपने आस-पास होने वाले मानव अधिकार हनन की घटनाओं को रोकने का प्रयास करेगा। यह सम्पूर्ण व्यवस्था मानव अधिकारों की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम साबित होगा।

मानव अधिकार शिक्षा द्वारा लोकतान्त्रिक किन्तु बहुसांस्कृतिक समाज में सहिष्णुता एवं धैर्य को विकसित करने का प्रयास किया जा सकता है। वर्तमान विश्व में जहां जातीय, नस्लीय, धार्मिक संघर्ष अपने चरम पर, वहाँ इन मूल्यों द्वारा इन बुराइयों को दूर करने में मद्द मिल सकती है एक बहुसांस्कृतिक समाज में किस तरह से शान्तिपूर्वक एवं सहयोग से रहा जाये, यह मानव अधिकार शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। जब सभी एक दूसरे के अधिकारों का सम्मान करेंगे तो उनके हनन होने का प्रश्न ही नहीं उठता है। मानव अधिकार शिक्षा से वैश्विक नागरिकता एवं वसुधैव कुटम्बकम की अवधारणा को मजबूत किया जा सकता है।

शोध कार्य के उद्देश्य : प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये-

1. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकारों की स्थिति के प्रति शहरी व ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।
2. भारत में मानव अधिकार की स्थिति के प्रति शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति का तुलानात्मक अध्ययन।
3. शोध जगत में मानव अधिकारों की स्थिति के प्रति शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

शोध परिकल्पनाः

1. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकारों की स्थिति के प्रति शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं अभिवृत्ति में अन्तर नहीं है।
2. भारत में मानव अधिकार की स्थिति के प्रति शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति में अन्तर नहीं है।
3. शिक्षा जगत में मानव अधिकारों की स्थिति के प्रति शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के अध्यापक एवं अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति में अन्तर नहीं है।

अध्ययन की सीमायेंः

1. यह अध्ययन उत्तर प्रदेश के फिरोजाबाद जनपद के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों पर ही आधारित हैं।
2. अध्ययन में मानव अधिकार संबंधी केवल तीन पक्षों को ही लिया गया है।
3. अभिवृत्ति मापनी के कथनों की सार्थकता ज्ञान करने के लिए लिकर्ट विधि का ही प्रयोग किया गया है।
4. अध्ययन विश्लेषण व्याख्या व निष्कर्ष प्रतिशत के माध्यम से की गई है।

शोध प्रारूप

अ. प्रस्तुत शोध कार्य का क्षेत्र उत्तर प्रदेश के जनपद-फिरोजाबाद तथा इसके शहरी व ग्रामीण क्षेत्र हैं।

ब. शोध विधिः प्रस्तुत शोध कार्य में ''विश्लेषणात्मक सर्वेक्षण'' शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

स. न्यादर्शः हेतु शोध कार्य में जनपद-फिरोजाबाद, के 12 शहरी क्षेत्र के विद्यालयों (एस0आर0के इण्टर कालेज, फिरोजाबाद; दाऊदयाल इण्टर कालेज, फिरोजाबाद; महात्मा गाँधी बालिका इण्टर कालेज, फिरोजाबाद; पाली इण्टर कालेज, शिकोहाबाद; नारायण इण्टर कालेज, शिकोहाबाद; बी0डी0एम0 इण्टर कालेज, शिकोहाबाद; दिगम्बर जैन इण्टर कालेज, सिरसागंज; गिरधारी इण्टर कालेज, सिरसागंज; एल0एन0इण्टर कालेज जसराना; जनता इण्टर कालेज, अवागढ़; ठा0 वीरी सिंह इण्टर कालेज, टूण्डला; तथा एस0पी0जी0 इण्टर कालेज, एका आदि) को अध्ययन के लिए चुना गया है। जबकि 10 ग्रामीण विद्यालयों (डडियामई इण्टर कालेज, डडियामई; ठा0 तारा

सिंह इण्टर कालेज, नौशहरा; भारतीय इण्टर कालेज, धातरी; जाजुमई इण्टर कालेज, जाजुमई; चौ0 लाल सिंह इण्टर कालेज, खटुआमई; एम0एस0 इण्टर कालेज, पुलाऊ; जे0बी0 इण्टर कालेज, अलीनगर कैजंरा; शिव आदर्श इण्टर कालेज, पैढ़त और आछेलाल स्मारक इण्टर कालेज, जेड़ाझाल) को सम्मिलित किया गया है। दोनों क्षेत्रों में फिरोजाबाद जनपद के 100 ग्रामीण व 100 शहरी अध यापकों व अध्यापिकाओं को मानव अधिकार के प्रति अभिवृत्ति के अध्ययन के लिये चुना गया है।

द. प्रयुक्त उपकरणः अध्ययन में स्वनिर्मित अभिवृत्तिमापनी का प्रयोग किया गया। मापनी निर्माण में लिकर्ट की सर्वयोग निर्धारण मापनी का अनुसरण किया गया- इसमें कुल 65 कथन निर्मित किये गये। 33 कथन सकारात्मक तथा 32 कथन नकारात्मक रखे गये। अध्ययन के लिए पाँच बिन्दु मापनी का प्रयोग किया गया है।

क. मापनी का प्रमाणीकरण व सांख्यकीय विश्लेषणः

1. विश्वसनीयता- सम- विषम अर्द्ध विच्छेदन द्वारा यह विश्वसनीयता गुणांक + 0.78 ज्ञात हुआ। सह-सम्बन्ध (r) ज्ञात करने के लिये प्रोडक्टमूमेन्ट व स्पीयरमेन ब्राउन प्रोफीसेंसी सूत्र का प्रयोग किया गया।
2. वैधता-ज्ञात करने में तार्किक वैधता व रूप वैधता का प्रयोग किया गया।
3. प्रश्नों के सार्थकता स्तर ज्ञात करनें के लिए टी परीक्षण का प्रयोग किया गया।
4. अध्ययन तथ्यों का विश्लेषण करने के लिए प्रतिशत का प्रयोग किया गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्याः फिरोजाबाद के शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के 12 व 10 माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापक व अध्यापिकाओं की मानव अधिकार संबंधी अभिवृत्ति का अध्ययन करनें से निम्न प्रकार के आँकड़े प्राप्त हुए जो कि तालिकाओं के माध्यम से दर्शाये जा रहे हैं।

तालिका 1

शहरी व ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिकाओं की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकार संबंधी अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन (प्रतिशत में)

विषय	पूर्ण सहमत		सहमत		अनिश्चित		असहमत		पूर्ण असहमत	
	शहरी	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण
अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार दशक	20	28	44	36	20	16	10	12	06	08
मानव अधिकार उन्नति व रक्षा	14	16	38	42	22	16	16	12	10	18
संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका	08	08	24	18	34	22	12	26	22	22
देश विदेश में हो रहा मनुष्य का शोषण	12	46	44	26	28	14	16	12	--	02
विदेशी अधिपत्य से जुड़े देशों की स्थिति	32	46	38	20	16	22	06	34	06	24
विश्व में मानव अधिकार उल्लंघन	20	40	44	46	20	14	12	--	04	--

विश्लेषणः तालिका 1 का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव अधिकारों से संबंधित अभिवृत्ति में अन्तर नही पाया गया। तालिका के चौथे बिन्दु देश-विदेश में हो रहे मनुष्य पर शोषण को लेकर मापनी के सभी बिन्दुओं पर अन्तर प्राप्त हुआ है अतः ऐसी स्थिति में कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिकाएँ शोषण से अप्रसन्न हैं तथा इस संबंध में अधिक अभिवृत्ति प्रदर्शित कर रही हैं।

तालिका 2

शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के अध्यापक व अध्यापिकाओं की भारत में मानव अधिकारों की स्थिति के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन (प्रतिशत में)

विषय	पूर्ण सहमत		सहमत		अनिश्चित		असहमत		पूर्ण असहमत	
	शहरी	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी	शहरी	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी
भारत में मानव अधिकार आयोग की स्थापना	30	44	40	34	24	08	06	04	–	10
भारत में मानव अधिकार हनन	14	10	34	32	30	04	04	30	18	24
भारत में मानव अधिकारों की स्थिति	48	40	46	34	06	10	–	04	–	10

विश्लेषणः तालिका-2ः का तुलात्मक अध्ययन करने पर भारत में मनाव अधिकारों की स्थिति के प्रति ग्रामीण व शहरी अध्यापक व अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति में मापन के पाँच बिन्दुओं में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया गया।

तालिका 3

शहरी व ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिकाओं की शिक्षा जगत में अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन (प्रतिशत में)

विषय	पूर्ण सहमत		सहमत		अनिश्चित		असहमत		पूर्ण असहमत	
	शहरी	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी	शहरी	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी
मानव अधिकार शिक्षा की आवश्यकता	54	50	36	34	10	06	–	04	–	06
सम्पूर्ण शिक्षा तंत्र व मानव अधिकार	14	08	26	32	18	04	32	30	10	26
विद्यार्थी दण्ड व्यवस्था व मानव अधिकार	08	20	26	40	–	10	06	20	60	10
विद्यालय व मानव अधिकार पाठ्यक्रम	54	14	26	36	06	20	20	14	20	–
मानव अधिकार व पाठसहगामी क्रियायें	36	10	24	12	12	18	10	36	18	24
शिक्षक प्रशिक्षण व मानव अधिकार	48	44	30	34	12	14	10	08	–	–
अध्यापक व अध्यापिकाओं के अधिकार संबंधी विचार	40	28	36	36	20	16	–	20	04	–

विश्लेषणः तालिका-3 का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि अभिवृत्ति मापनी के पाँच बिन्दुओं पर तालिका में दिये गये विषयों में चतुर्थ बिन्दु विद्यालय व मानव अधिकार पाठ्यक्रम पंचम बिन्दु विद्यालय पाठ सहगामी क्रियाओं पर शहरी व ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति में अन्तर पाया गया और यह अन्तर केवल पूर्ण सहमत बिन्दु पर अधिक प्रतीत हो रहा है। इसका प्रतिशत चतुर्थ बिन्दु पर क्रमशः 54 व 14 तथा पाँचवें बिन्दु पर 36 व 10 पाया गया।

निष्कर्ष

1. अध्ययन के प्रथम उद्देश्य के आधार पर दोनों क्षेत्रों के अध्यापक व अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति में

अन्तर नहीं पाया गया।

2. अध्ययन के द्वितीय उद्देश्य के आधार पर दोनों क्षेत्रों के अध्यापक व अध्यापिकाओं में अन्तर नहीं पाया गया।
3. अध्ययन का तीसरा व मुख्य उद्देश्य शिक्षा जगत में मानव अधिकारों की स्थिति में भी शहरी व ग्रामीण क्षेत्र के अध्यापक व अध्यापिकाओं की सकारात्मक व नकारात्मक अभिवृत्ति में अन्तर नहीं पाया गया केवल दो विषयों की पूर्ण सहमति मापन बिन्दुओं की अभिवृत्ति में अन्तर प्राप्त हुआ है।

परिकल्पनाओं की जाँचः अध्ययन में प्रयुक्त तालिकाओं का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि अध्ययन उद्देश्यों के आधार पर बनाई गई परिकल्पना सही पाई गई है।

उपर्युक्त शोध विवेचन की नवीनता को देखते हुए संबंधित सामग्री के एकत्रीकरण एवं उनका शिक्षक प्रशिक्षकों के द्वारा उचित उपयोग पर विशेष ध्यान दिया जाये। इस सन्दर्भ में सामूहिक प्रयास तथा प्रतिभागित्व सम्बन्धी कार्यशालाएँ विशेष उपयोगी साबित हो सकेगी/शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र में जो चुनौतियाँ आ रही हैं, उनका सामना करनें में उपर्युक्त पाठयक्रम विशेष योगदान दे सकेगा जो एक आदर्श भविष्य निर्मित करने में वहुत सहायक होगा।

सन्दर्भ

1. शिवरा पत्रिका, राजस्थान राज्य शिक्षा विभाग, प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा निदेशालय, बीकानेर, दिसम्बर, 1997, पृ. 3
2. हैरी, धण्ड, *'ह्यूमन राइट्स एज्यूकेशन : सलेक्टेड स्ट्रेटजीस् फॉर डिवेलपमेन्ट',* इण्डियन एज्यूकेशनल रिव्यू, 31नं0, 2 जुलाई, 1996, पृ. 127
3. हैग, स्टर्के, *'दि चैलेन्जेस् ऑफ ह्यूमन राइट्स एज्यूकेशन',* केसल विलियम हाउस, लन्दन, पृ. 55, 1991.
4. हेमलता तलेसरा, *'ह्यूमन राइट्स एज्यूकेशन फॉर प्लूरलिस्टिक इण्डियन कल्चर',* एज्यूकेशन इन एशिया, XVI नं0 2-3 अक्टूबर, 1996, पृ. 146
5. नेमा, जी0 पी0, के0 के0 शर्मा, *'मानवाधिकार सिद्धान्त एवं व्यवहार',* कालेज बुक डिपो, नई दिल्ली, 2004, पृ. 1
6. मिश्रा, दामोदर, अखिल शुक्ला, *'मानवाधिकार दशा और दिशा',* पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, पृ0सं0-01, 2008.
7. किशोर राज, *'मानव अधिकारों का संघर्ष',* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 03, 1995.
8. सिंह, कृष्ण वल्लभ, *'मानवाधिकारों के आयाम',* पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2006, पृ. 19,
9. त्रिपाठी, प्रदीप, *'मानवाधिकार और भारतीय संविधान संरक्षण एवं विश्लेषण,'* राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 26, 2006.
10. कांटेड अमर सिंह, *'मानव अधिकार एवं न्यायपालिका की भूमिका',* सुमन प्रकाशन, जयपुर, 1983, पृ. 22-24
11. देवी ए. चन्द्रिका, *'ह्यूमन राइट्स एण्ड राइट्स ऑफ चाइल्ड, एज्यूकेशन इन एशिया',* XVII जनवरी, 1997, पृ. 40
12. रत्तु, कृष्णकुमार, *'भारतीय दलित और मानवाधिकार',* बुक एनक्लेव, जयपुर, 2002, पृ. 01,
13. नाटाणी, प्रकाश नारायण, *'मानवाधिकार और कर्तव्य',* आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2007, पृ. 104
14. नेमा, जी0 पी0, के0 के0 शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 42-43
15. सिंह, राजबाला, *'मानवाधिकार और महिलाएँ',* आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर, 2006, पृ. 02
16. चतुर्वेदी, अरूण एवं संजय लोढा, *'भारत में मानव अधिकार',* पंचशील प्रकाशन जयपुर, 2005, पृ. 172-173

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

जून 2013 की केदारघाटी आपदा, प्रबंधन एवं मीडियाः एक विश्लेषण

❑ श्रीकृष्ण उनियाल

16–17 जून 2013 को उत्तराखंड राज्य में हुई अचानक मूसलाधार वर्षा 340 मिलीमीटर दर्ज की गयी जो सामान्य बेंचमार्क 65.9 मिमी से 375 प्रतिशत अधिक थी, जिसके कारण बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हुई। इसी दौरान अचानक उत्तरकाशी में बादल फटने के बाद असिगंगा और भागीरथी में जल स्तर बढ़ गया। लगातार होती रही वर्षा के कारण से गंगा और यमुना का जल स्तर भी तेजी से बढ़ा। हरिद्वार में भी गंगा खतरे के निशान के करीब पहुंच गई जिसके चलते गंगा तट पर बसे सैकड़ों गांवों में बाढ़ का पानी घुस गया। नतीजा जनजीवन ठहर सा गया। उत्तराखंड में हुई वर्षा का प्रभाव उत्तर प्रदेश के सहारनपुर में भी पड़ा, जहां से 15 से ज्यादा लोगों के मारे जाने की खबर मिली। पानी छोड़े जाने के कारण यमुना नदी से लगे हरियाणा के करनाल, पानीपत, सोनीपत और फरीदाबाद में भी बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो गयी। हिमालय श्रृंखला में स्थित केदारनाथ मन्दिर और आसपास के इलाके बाढ़ के कारण क्षतिग्रस्त हो गए। बाढ़ के कारण भूस्खलन होने लगा, जिससे सैकड़ों घर उजड़ गये और फंसे हुये हजारों लोगों को सुरक्षित पहुंचाया गया। सबसे ज़्यादा तबाही रूद्रप्रयाग जिले में स्थित शिव की नगरी केदारनाथ में हुई। केदारनाथ मंदिर का मुख्य हिस्सा तो सुरक्षित रहा लेकिन प्रवेश द्वार और आस-पास के सारे इलाके या तो बह गए या पूरी तरह तबाह हो गए। इस स्थिति को शासन-प्रशासन एवं देश-विदेश तक पहुंचाने में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण रही। मीडिया ने प्रत्यक्ष रूप से सरकार और पीड़ित लोगों के बीच एक सेतु का काम किया जिसके कारण प्रभावित क्षेत्रों में आपदा प्रबंधन को त्वरित रूप से सक्रिय किया गया। प्रस्तुत शोध पत्र में जून 2013 की केदारघाटी आपदा, प्रबंधन एवं मीडिया का विश्लेषणात्मक अध यन किया गया है।

16 और 17 जून 2013 को आई जलप्रलय ने उत्तराखंड में दर्द और आंसुओं के ऐसे निशान छोड़े, जिन्हें आने वाले सालों में भुलाना आसान नहीं होगा। इस घटना में दस हजार से अधिक जानें गई। हालांकि सरकारी आंकड़ों के अंतर्गत सिर्फ 4042 मौतों की पुष्टि की गई है। 15 जून को करीब 20 दिन पहले आए मानसून ने उच्च हिमालय के खास उंचाई वाले क्षेत्रों में जमकर कहर बरसाया। 16 जून को केदारघाटी से शुरू हुए इस महाविनाश के कारण केदारनाथ से लेकर उत्तरकाशी, चमोली, बागेश्वर और पिथौरागढ़ जिलों में हिमालय के ग्लेशियरों से निकलने वाली नदियों से निचली घाटियों में कितनी ही मानव बस्तियों के साथ सैकड़ों पुल,परियोजनाएं, सरकारी भवन इस विनाशकारी बाढ़ की भेंट चढ़े। चार धाम यात्रा का सीजन होने के कारण हजारों की संख्या में तीर्थयात्री चारों धामों या फिर इनके रास्तों पर थे। गंगोत्री, यमुनोत्री व बदरीनाथ गए यात्री भाग्यशाली रहे। लेकिन केदारनाथ गए यात्री बड़ी संख्या में इस घटना के शिकार बने। इस आपदा की भयावहता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि आज भी हजारों लोग अपने परिजनों के शवों के मिलने का इंतजार कर रहे हैं। राहत दल पहाड़ से लेकर हरिद्वार तक करीब 700 ही शव निकाल सके थे।

मौसम विभाग ने इस घटना से पहले उच्च हिमालयी क्षेत्रों में भारी वर्षा की आशंका प्रकट की थी। समाचार पत्रों ने मौसम विभाग की इस आशंका को प्रमुखता से प्रकाशित भी किया। दैनिक अमर उजाला समाचार पत्र ने 14 जून 2013 के अंक में उत्तर भारत को मिली गर्मी से राहत शीर्षक के साथ प्रकाशित खबर में मौसम विभाग के हवाले से लिखा कि मौसम विभाग ने अगले 48 घंटे में हिमांचल, उत्तराखंड व यूपी के कुछ हिस्सों में भारी वर्षा की pslouhnhg**1** जबकि दैनिक जागरण समाचार पत्र ने 15 जून 2013 के अंक के प्रथम पृष्ठ पर पहाड़ पर भारी अगले 36 घंटे शीर्षक के साथ खबर प्रकाशित की। इस खबर में स्पष्ट रूप से राज्य मौसम केंद्र के निदेशक डा.आनंद शर्मा के हवाले से लिखा था कि एक पश्चिमी विक्षोभ सक्रिय है, जो 16 जून दोपहर से आगे 48 घंटे जोरदार वर्षा दे सकता है। कई स्थानों पर अपेक्षाकृत भारी से भारी वर्षा के भी आसार बन रहे हैं। ऐसे में पर्वतीय मार्गो पर भूस्खलन का खतरा बढ़ सकता है।[2] यहां तक कि दैनिक जागरण समाचार पत्र ने केदारनाथ आपदा से नौ साल पहले दो अगस्त 2004 में पहले पृष्ठ पर 'अब केदारनाथ भी खतरे में' मुख्य शीर्षक व 'बम की तरह फटेगा चौराबाड़ी

❑ शोध अध्येता, पत्रकारिता एवं जन संचार केन्द्र, हे0न0ब0ग0वि0वि0, श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

ग्लेशियर' उप शीर्षक के साथ खबर को प्रमुखता से प्रकाशित कर लिया था। अमेरीकी अंतरिक्ष एंजेसी नासा ने आपदा से 25 दिन पहले सेटेलाइट चित्रों से तबाही के संकेत दे दिए थे।[3] लेकिन सरकार ने इन चेतावनियों को गंभीरता से नहीं लिया। घटना के तीन दिन बाद इसकी भयावहता का पता चलना शुरू हुआ। केदारनाथ में महाविनाश का पता चौथे दिन चल सका। जब पहली बार वहां हेलीकॉप्टर पहुंच सके। इसके बाद रेस्क्यू के लिए सेना, आईटीबीपी, एसएसबी व उत्तराखंड पुलिस के 6500 जवानों को उतारा गया। करीब दो महीनों तक आपदाग्रस्त क्षेत्रों में जोरों पर राहत कार्य चलाने पड़े। राहत कार्यो के दौरान आईटीबीपी, एनडीआरएफ व उत्तराखंड पुलिस के 36 जवान शहीद हो गए। सरकारी आंकड़ों के अंतर्गत 120000 लोगों को उत्तराखंड के आपदाग्रस्त क्षेत्रों से सुरक्षित निकालने का दावा किया गया। इस आपदा के दौरान 16000 से अधिक गांव अलग-थलग पड़ गए थे। 16016 मकान आपदा से क्षतिग्रस्त हुए जबकि 12425 हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि को आपदा से भारी नुकसान पहुंचा। 22086 परिवार इस आपदा से बुरी तरह से प्रभावित हुए। आपदा से उबरने के लिए केंद्र सरकार की ओर से राज्य सरकार को 7446 करोड़ रूपए का पैकेज दिया गया।[4]

शोध प्रविधि : किसी भी विषय का विधि तंत्र मुख्यतः अध्ययन के उद्देश्य, विषय की प्रकृति तथा विभिन्न प्रकार के आकड़ों की उपलब्धता पर निर्भर करता है। शोध अध्ययन में समस्या के प्रत्यक्ष अवलोकन के द्वारा संचित सूचनाओं के अधिक विश्वसनीय, उपयोगी एवं प्रमाणिक माना जाता है। शोध पत्र तैयार करने के लिए तथ्य एवं आंकड़े एकत्र करने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों के अंतर्गत अनुसूची के माध्यम से सूचनाएं एकत्रित की गईं, जबकि द्वितीयक स्रोतों के अंतर्गत समाचार पत्रों में प्रकाशित विषय वस्तु जो जून 2013 की आपदा से संदर्भित थी उनको उपयोग में लाया गया। शोध पत्र में समाचार पत्रों में आपदा से सबंधित समाचारों के कवरेज के अंतर्वस्तु विश्लेषण के लिए लॉटरी पद्धति से दो हिंदी भाषा के समाचार पत्र व दो अंग्रेजी भाषा के समाचार पत्रों का चयन किया गया।

अध्ययन क्षेत्र : उत्तराखंड राज्य का गठन नौ नवंबर वर्ष 2000 को उत्तर प्रदेश से विभक्त होकर हुआ। इसके अंतर्गत वर्तमान में दो मंडल व 13 जिले हैं। इसमें गढ़वाल मंडल के सात व कुमाऊं मंडल के छह जिले शामिल हैं। गढ़वाल मंडल के रूद्रप्रयाग, चमोली व उत्तरकाशी जनपद आपदा की दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील हैं। इनमें से रूद्रप्रयाग जिला आपदाओं से सबसे अधिक प्रभावित रहा है। 16 एवं 17 जून 2013 को रूद्रप्रयाग के केदारनाथ से लेकर पूरी मंदाकिनी घाटी का क्षेत्र जल प्रलय से तहस-नहस हो गया। यही क्षेत्र शोधार्थी का अध्ययन का क्षेत्र है। 18 सितंबर 1997 में चमोली जनपद तथा टिहरी जनपद के कुछ भागों को मिलाकर रूद्रप्रयाग जनपद की स्थापना की गई थी। वर्तमान में जनपद का विस्तार रूद्रप्रयाग, बसुकेदार, ऊखीमठ तथा जखोली तहसील एवं ऊखीमठ, अगस्तमुनि तथा जखोली विकासखंड के अंतर्गत है।[5] प्रस्तावित शोध अध्ययन में जनपद की केदारघाटी (मंदाकिनी नदी) घाटी को लिया x; kgS dsnkj ?kVh dk foLr kj $30^0 17'$ उत्तर से $30^0 49'$ उत्तरी अंक्षास तथा $78^0 49'$ पूर्व से $79^0 22'$ पूर्वी देशांतर के मध्य है। मंदाकिनी घाटी का कुल क्षेत्रफल 1648 वर्ग किमी0 के साथ दक्षिण से उत्तर की ओर लंबे उच्चावच अंतराल के मध्य फैला हुआ है।[6] मंदाकिनी घाटी में सबसे कम ऊंचाई 605 मी0 रूद्रप्रयाग से लेकर 6940 मी0 केदारनाथ शिखर ऊंचाई के मध्य अनेक कटिबंध विस्तृत हैं।

जून 2013 केदारघाटी आपदाः कब क्या हुआ[7]

1. 15 जून-20 दिन पहले आया मानसून
2. 16 जून-केदारघाटी में मंदाकिनी का कहर
3. 17 जून-हर तरफ तबाही का दृश्य
4. 18 जून-200 मौत, हजार के लापता होने की आशंका, चौथे दिन केदारनाथ पहुंच पाए सहायता दल।
5. 19 जून-62 हजार यात्री अलग-अलग स्थानों पर फंसे, सेना के 5500, आईटीबीपी के 600 जवान बचाव को उतरे।
6. 20 जून-केंद्र से एक हजार करोड़ की मदद।
7. 21 जून-केदारनाथ से हरिद्वार तक लाशें ही लाशें देखी गई। रामबाड़ा में बचाव दलों को कदम, कदम पर दिखे शव।
8. 22 जून-मुख्यमंत्री ने की एक हजार लोगों के मारे जाने की पुष्टि। केंद्रीय गृहमंत्री सुशील कुमार सिंदे ने माना राहत कार्यों में तालमेल की कमी।

9. 23 जून-सरकार ने केवल 10 हजार लोगों के फंसे होने की पुष्टि की।

10. 25 जून- केदारघाटी में वायु सेना का हेलीकॉप्टर दुर्घटनाग्रस्त, 20 शहीद।

11. 26 जून-आपदा के दसवें दिन केदारनाथ में अंतिम संस्कार शुरू।

12. 28 जून-यूसैक ने कहा चोराबाड़ी ताल छलकने से आई आपदा।

13. 28 जून- सरकार ने 105412 लोगों को बचाने का किया दावा।

14. 29 जून-गौरीकुंड से आगे जाने पर रोक।

15. 30 जून-सरकार ने माना तीन हजार लोग हुए लापता।

16. 02 जुलाई- सेना ने की रेस्क्यू खत्म करने की घोषणा।

17. 05 जुलाई-तेज बारिश के चलते फिर सहमी केदारघाटी, कालीमठ में पौराणिक सरस्वती मंदिर बहा।

18. 22 जुलाई-केदारनाथ मंदिर में गर्भगृह की सफाई पूरी, वीआईपी पूजा पर तीर्थ पुरोहितों का ऐतराज।

19. 24 जुलाई-केदारनाथ से लौट रहा ट्रांस भारत एविएशन कंपनी का हेलीकॉप्टर गरूड़चट्टी के पास दुर्घटनाग्रस्त, पायलट सहित दो मरे।

20. 31 जुलाई- राहत कार्यों के लिए केदारनाथ गए एसडीएम अजय अरोड़ा मंदाकिनी नदी के तेज बहाव में बहे।

21. 14 अगस्त- आपदा के बाद उपजे हालात देखकर नंदादेवी राजजात यात्रा स्थगित।

जून 2013 जल प्रलय में महाविनाश के मुख्य कारण[8] : अतिवृष्टि अथवा बादल फटने की घटनाओं को वायुदाब, आद्रता, वायु की गति, नमी युक्त बादलों का गरम हवाओं से टकराव तथा नम बादलों का संकरी घाटियों में फंसना आदि परिस्थितियों से जोड़कर देखा जाता है। लेकिन मानवीय गतिविधियां भी इन घटनाओं को नया स्वरूप प्रदान कर रहे हैं। 1000 मी. से 3500 मी. की ऊंचाई वाले हिमालयी क्षेत्रों में बादल फटना अथवा अतिवृष्टि एक प्राकृतिक आपदा है, किंतु इन आपदाओं को महाविनाशकारी रूप देने में मानवीय गतिविधियां व अनियोजित-अवैज्ञानिक विकास उत्तरदायी है। केदारघाटी में इस आपदा को महाविनाश के रूप में परिवर्तित करने में निम्न मानवीय गतिविधियां सहायक रही हैं-

1. केदारघाटी सक्रिय हिमनद के प्रभाव वाली घाटी है। इस घाटी में आस-पास की हिमाच्छादित पहाड़ियों से कई जगहों से पानी पिघलकर सतह पर आ जाता है। इस पिघले हुए पानी का एक भाग पुनः छलनी की तरह सतह से सतह के अंदर जाकर बहता है। इसलिए केदारघाटी की सतह कुछ-कुछ दलदली है। इस दलदली सतह के नीचे पूर्व में हिमानियों द्वारा लाया गया विशाल मलबा गोल व तिकोने पत्थर खिसकते हुए हिमनदों द्वारा घाटी का छिला हुआ चूर्ण व मलबा एकत्रित है। यह धरातल निर्माण कार्य की दृष्टि से बिल्कुल भी उपयुक्त नहीं था।

2. मंदाकिनी नदी घाटी विशेषतया इसके ऊपरी भाग अर्थात केदारघाटी, गौरीकुंड आदि संकरी घाटी क्षेत्रों में लाखों वाहन प्रतिवर्ष तीर्थयात्रियों तथा पर्यटकों को लेकर पहुंच रहे हैं। वाहनों द्वारा छोड़ा गया अति धुंआं इन संकरी घाटियों को गरम कर रहा है जिससे वाष्पीकरण की दर बढ़ रही है।

3. प्रकृति अपनी नैसर्गिक अवस्था में वायुमंडल में जमा वाष्प को समान रूप से वितरित करती है किंतु अत्यधिक मानवीय हस्तक्षेप से यह प्रक्रिया बाधित हुई जिससे बादल फटने की घटना परिणाम के रूप में सामने आई।

4. केदारनाथ क्षेत्र में अत्यधिक हेलीकॉप्टर की उड़ान तथा इससे निकलने वाला धुंआं एओरोसोल (वायु में पहुंचे 1-10माइक्रोन आकार वाले सूक्ष्म कण) आस-पास के वातावरण को और अधिक गरम कर रहे हैं।

5. विश्व तापमान में वृद्धि का प्रभाव हिमालय पारिस्थितिकी तंत्रों तथा हिमानियों पर भी पड़ रहा है जिससे स्थानीय जलवायु चक्र (सूक्ष्म जलवायु चक्र) में परिवर्तन को अधिक गति मिल रही है। उच्च हिमालयी क्षेत्रों में अप्रैल-मई में अधिक तापमान बढ़ना इसका परिणाम है।

6. उत्तराखंड में सतत विकास की अवधारणा का वास्तविक विकास से कोई संबंध नहीं है। विकास योजनाएं बनाते समय पर्यावरण व पारिस्थितिकी का अध्ययन नहीं किया जाता है। परियोजनाओं के निर्माण में पर्यावरण प्रभाव आकलन पर जोर नहीं दिया जाता है। सड़कों तथा विद्युत परियोजनाओं के निर्माण में विस्फोटकों का प्रयोग करके तथा पहाड़ियों में सुरंगे बनाकर पहाड़ियों को अस्थिर व कमजोर कर दिया जाता है। बादल फटने तथा बाढ़ के पानी को ऐसी कमजोर पहाड़ियां रोक नहीं पाई जिससे विनाश और अधिक हुआ।

7. भूस्खलनों ने नदियों के मार्गों को अनेक बार अवरूद्ध

किया है जिससे नदियों के मार्ग में प्राकृतिक झीलों व ताल का निर्माण हुआ है। चमोली गढ़वाल की विरही नदी में इसी तरह के भूस्खलन से वर्ष 1894 में गौना ताल जिसे दुरमी ताल भी कहा जाता था, बना। ऐसे ताल भूस्खलन के मलबे तथा अतिवृष्टि से बहा कर लाए गए बड़े-बड़े पत्थरों तथा पेड़ पौधों के भार तथा दबाव को सहन नहीं कर पाते हैं और फिर टूटकर विनाश का रूप धारण करते हैं। जुलाई 1970 में गौना ताल इसी तरह टूटा। चोराबाड़ी ताल में भी यही पुनरावृत्ति हुई जिसमें भारी मलबा भरने से झील का पानी अतिवृष्टि के साथ बाहर आ गया। बहते हुए पानी में भारी-भरकम पत्थर, मलबा, पेड़ मिलने से नदी में विनाश की और शक्ति बढ़ गई।

केदारघाटी जल प्रलय में गायब हुए लोगों की राज्यवार सूची[9]

राज्य	लोगों की संख्या
उत्तर प्रदेश	1,150
उत्तराखंड	846
मध्यप्रदेश	542
राजस्थान	511
दिल्ली	216
महाराष्ट्र	163
गुजरात	129
हरियाणा	112
आंध्रप्रदेश	86
बिहार	58
झारखंड	58
पश्चिमी बंगाल	36
पंजाब	33
छत्तीसगढ़	28
उड़ीसा	26
तमिलनाडु	14
कर्नाटक	14
मेघालय	6
चंडीगढ़	4
जम्मू-कश्मीर	3
केरल	2
पांडुचेरी	1
आसाम	1
कुल	4,021

मीडिया की भूमिका : मीडिया जो मुद्रित, प्रसारित अथवा प्रदर्शित हो सकता है, बड़ी संख्या में लोगों तक पहुंचाने का त्वरित, प्रभावी तथा कुशल संगठित साधन है। मीडिया की सुझावात्मक, सूचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक भूमिका आवश्यक रूप से आपदा शिक्षा का प्रमुख घटक बनाती है। यह समुदाय को आपदा रोकथाम, न्यूनीकरण तथा पुनर्वास पर शिक्षा प्रदान करने का सबसे प्रभावी तरीका है। इन कार्यों को मीडिया की दोहरी भूमिका, सूचना देने तथा आपदाओं की घटनाओं के विश्लेषण के आधार पर किया जा सकता है। आपदाओं के प्रभावों को न सिर्फ तकनीकी तथा वैज्ञानिक संदर्भों में, बल्कि मानवतावादी, सामाजिक तथा आर्थिक संदर्भों में भी जांच करने की जरूरत है। मीडिया इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। मीडिया से सामान्यता निहितार्थ जनसंचार के प्रमुख माध्यमों से है। इसमें दूरदर्शन, रेडियो, समाचार पत्र, पत्रिकाएं, ऑडियो तथा वीडियो कैसेटों के साथ सिनेमा भी शामिल है। प्रिंट मीडिया व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया आपदा प्रबंधन के प्रमुख घटक के रूप eamHkj k gS[10]

आम तौर पर मीडिया आपदा घटना को आधिकारिक तौर पर परिभाषित करता है। यह लोगों को बड़े स्तर पर सूचना देता है जागरूकता फैलाता है। सूचना संप्रेषण एवं जागरूकता के कारण बेहतर आपदा प्रबंधन में मदद मिलती है। क्योंकि मीडिया तात्कालिक जानकारी प्रदान करता है और इसे विश्वसनीय स्रोत माना जाता है। विशेष रूप से स्थानीय स्तर पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है। मीडिया आपदा घटनाओं व आपदा के बाद की घटनाओं की तथ्यात्मक कवरेज करता है। जिससे आपदा से बचाव व राहत, निर्णय लेने और प्रतिक्रिया में सहायता मिलती है जिससे जीवन व संपत्ति की सुरक्षा की जा सकती है। आपदा के दौरान देश दुनिया से संपक्र बनाए रखने वाले संचार माध्यम जैसे टेलीफोन, मोबाइल व अन्य तंत्र जब पूरी तरह से ध्वस्त हो जाते हैं तो समाचार पत्र एक मजबूत माध्यम बनकर उभर कर सामने आते हैं जिससे आपदा प्रबंधन कार्यों में सहायता मिल सकती है। अपने शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा तैयार की गई प्रश्नावली में उत्तरदाताओं से प्राकृतिक आपदा प्रबंधन में समाचार पत्रों की भूमिका से सबंधित प्रश्न पूछे गए। एक प्रश्न क्या जून 2013 केदारघाटी आपदा प्रबंधन में मीडिया की भूमिका रही है? के जवाब में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया निम्नवत रही-

तालिका-1

प्रतिक्रिया	उत्तरदाता	प्रतिशत
हां	168	84.0
नहीं	9	4.5
कुछ नहीं कह सकते	23	11.5
योग	200	100.0

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 84 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि केदारघाटी आपदा प्रबंधन में मीडिया की भूमिका रही है। 11.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि इस बारे में कुछ कहा नहीं सकता है। जबकि 4.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि केदारघाटी आपदा प्रबंधन में मीडिया की भूमिका नहीं रही है।

इसी संदर्भ में पूछे गए सवाल केदारघाटी आपदा प्रबंधन में मीडिया की किस प्रकार की भूमिका रही है? प्रश्न के जवाब में उत्तरदाताओं की राय निम्नवत थी-

तालिका-2

प्रतिक्रिया	उत्तरदाता	प्रतिशत
सकारात्मक	145	72.5
नकारात्मक	10	5.0
कह नहीं सकते	45	22.5
योग	200	100.0

तालिका से स्पष्ट है कि 72.5 उत्तरदाता केदारघाटी आपदा प्रबंधन में मीडिया की भूमिका को सकारात्मक मानते हैं। 22.5 उत्तरदाताओं का मानना है कि इस बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता है। जबकि 5.0 प्रतिशत उत्तरदाता केदारघाटी आपदा प्रबंधन में मीडिया की भूमिका को नकारात्मक मानते हैं।

जून 2013 केदारघाटी प्राकृतिक आपदा प्रबंधन में किस मीडिया की भूमिका प्रभावी रही है? इस प्रश्न के जवाब में उत्तरदाताओं की राय इस प्रकार थी-

तालिका-3

प्रतिक्रिया	उत्तरदाता	प्रतिशत
प्रिंट मीडिया	42	21.0
इलेक्ट्रानिक	31	15.5
उपरोक्त सभी	127	63.5
योग	200	100.0

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जून 2013 केदारघाटी आपदा प्रबंधन में प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका प्रभावी रही है 63.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह माना है। कुल उत्तरदाताओं में से 21 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि केदारघाटी आपदा प्रबंधन में प्रिंट मीडिया की भूमिका प्रभावी रही। जबकि 15.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि केदारघाटी आपदा प्रबंधन में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की भूमिका रही है।

एक और प्रश्न क्या जून 2013 केदारघाटी आपदा प्रबंधन में दौरान समाचार पत्र आपदा प्रभावित क्षेत्रों की सही स्थिति उजागर करने में सफल रहे? के जवाब में उत्तरदाताओं ने अपना जवाब इस प्रकार से दिया-

तालिका-4

प्रतिक्रिया	उत्तरदाता	प्रतिशत
हां	104	52.0
नहीं	14	7.0
कुछ-कुछ	76	38.0
कह नहीं सकते	6	3.0
योग	200	100.0

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 52 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि समाचार पत्र आपदा प्रभावित क्षेत्रों की सही स्थिति उजागर करने में सफल रहे हैं। 38 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि समाचार पत्र कुछ-कुछ प्रभावित क्षेत्रों की स्थिति उजागर करने में सफल रहे। 7.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि केदारघाटी आपदा प्रबंधन के दौरान समाचार पत्र आपदा प्रभावित क्षेत्रों की सही स्थिति उजागर करने में सफल नहीं रहे हैं। जबकि 3.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इस प्रश्न के जवाब में वह कुछ नहीं कह सकते हैं।

शोध अध्ययन में शोधार्थी ने केदार घाटी जल प्रलय की समाचार पत्रों द्वारा की गई कवरेज का अंतर्वस्तु विश्लेषण किया। जिसमें प्रथम पृष्ठ पर समाचार पत्रों ने जल प्रलय से सबंधित खबरों को प्रमुखता से स्थान दिया। उत्तराखंड से प्रकाशित होने वाले हिंदी भाषा के प्रमुख समाचार पत्र अमर उजाला ने आपदा घटित होने के बाद 18 जून 2013 से 18 दिसंबर 2013 तक प्रथम पृष्ठ पर 6329.5 वर्ग सेमी. यानि 15.21 प्रतिशत स्थान आपदा सबंधित खबरों को दिया। जबकि उत्तराखंड से ही प्रकाशित होने वाले हिंदी भाषा के समाचार पत्र दैनिक हिंदुस्तान ने 7385 वर्ग सेमी. यानि 17.75 प्रतिशत स्थान जल प्रलय सबंधित खबरों को दिया। वहीं अंग्रेजी भाषा के समाचार पत्र हिंदुस्तान टाइम्स ने प्रथम पृष्ठ पर आपदा सबंधित खबरों को 3239.25 वर्ग सेमी. यानि 7.78 प्रतिशत स्थान दिया। जबकि अंग्रेजी भाषा के टाइम्स ऑफ इंडिया

समाचार पत्र ने आपदा खबरों को प्रथम पृष्ठ पर 1119.5 वर्ग सेमी. यानि 2.69 प्रतिशत स्थान दिया। उक्त समाचार पत्रों में आपदा सबंधित खबरों की कवरेज के अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि हिंदी भाषा के समाचार पत्रों में आपदा सबंधित खबरों को सबसे ज्यादा कवरेज मिली।

तालिका-5

पत्रप्रथम पृष्ठ पर आपदा सबंधी समाचारों की कवरेज (वर्ग सेमी. में)

समाचार पत्र	कवरेज वर्ग सेमी. में	प्रतिशत
अमर उजाला	6329.5	15.21
हिंदुस्तान	7385	17.75
हिंदुस्तान टाइम्स	3239.25	7.78
टाइम्स ऑफ इंडिया	1119.5	2.69

शोधार्थी द्वारा जब शोध प्रश्नावली में प्रभावित क्षेत्र के लोगों से पूछा गया कि क्या जून 2013 केदारघाटी आपदा के दौरान समाचार पत्रों की कवरेज से आपदा प्रबंधन अधिक सक्रिय हुआ है? इस प्रश्न के जवाब में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया निम्नवत रही-

तालिका-6

प्रतिक्रिया	उत्तरदाता	प्रतिशत
हां	158	79.0
नहीं	14	7.0
कह नहीं सकते	28	14.0
योग	200	100.0

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 79 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि जून 2013 केदारघाटी आपदा के दौरान समाचार पत्रों द्वारा की गई कवरेज से आपदा प्रबंधन अधिक सक्रिय हुआ है। 14 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि केदारघाटी आपदा के दौरान समाचार पत्रों द्वारा की गई कवरेज से आपदा प्रबंधन सक्रिय हुआ या नहीं इस सबंध में वह कह नहीं सकते। जबकि केवल 7.0 उत्तरदाताओं ने ही माना कि केदारघाटी आपदा के दौरान समाचार पत्रों द्वारा की गई कवरेज से आपदा प्रबंधन सक्रिय नहीं हुआ। इससे स्पष्ट है कि सर्वाधिक 79 प्रतिशत लोग मानते हैं कि समाचार पत्रों की कवरेज से आपदा प्रबंधन सक्रिय हुआ है, लेकिन इस प्रतिशत को बढ़ाने के लिए समाचार पत्रों को और बेहतर कवरेज आपदा प्रभावित क्षेत्रों को दी जानी चाहिए।

प्राकृतिक आपदाओं के दौरान सार्वजनिक सूचना तंत्र पहले प्रभावित होता है। लेकिन प्रभावित क्षेत्रों और मीडिया में संपर्क प्रभावित रहता है। ऐसे में आपदा प्रबंधन में मीडिया की भूमिका और बढ़ जाती है। क्योंकि मीडिया का प्रभाव व्यापक स्तर पर पड़ता है इसलिए मीडिया को आपदा के दौरान सनसनीखेज रिपोर्टिंग से बचने तथा जनभावनाओं को भड़काने एवं अफवाहों से दूर रहना चाहिए। शोधार्थी ने शोध प्रश्नावली में इससे सबंधित प्रश्न को जगह देते हुआ उत्तरदाताओं से पूछा कि जून 2013 केदारघाटी आपदा प्रबंधन के दौरान समाचार पत्रों में किस प्रकार की खबरें अधिक प्रकाशित हुई? इस प्रश्न के जवाब में उत्तरदाताओं ने निम्न प्रकार से अपनी राय व्यक्त की-

तालिका-7

प्रतिक्रिया	उत्तरदाता	प्रतिशत
आपदा प्रभावितों की समस्याओं को उजागर करने वाली	58	29.0
जन भावनाओं को भड़काने वाली	17	8.5
आपदा प्रभावितों की सही स्थिति उजागर करने वाली	32	16.0
सरकार एवं स्वयंसेवी संस्थाओं की ओर से कराए जा रहे राहत कार्यो की	29	14.5
उपर्युक्त सभी	61	30.5
इनमें से कोई नही	2	1.0
कह नही सकते	1	.5
योग	200	100.0

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि 29 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि केदारघाटी आपदा प्रबंधन के दौरान समाचार पत्रों में आपदा प्रभावितों की समस्याओं को उजागर करने वाली खबरें अधिक प्रकाशित हुई। 16 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि केदारघाटी आपदा प्रबंधन के दौरान आपदा प्रभावितों की सही स्थिति उजागर करने वाली खबरें अधिक प्रकाशित हुई। 14.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सरकार एवं स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा केदारघाटी आपदा के दौरान कराए जाने वाले राहत कार्यों की खबरें अधिक प्रकाशित किए जाने की बात कही। इस प्रश्न के जवाब में 8.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि केदारघाटी आपदा प्रबंधन के दौरान समाचार पत्रों ने जनभावनाओं को भड़काने वाली खबरें अधिक प्रकाशित कीं। मीडिया को सनसनीखेज रिपोर्टिंग से बचने के लिए

जनभावनाओं को भड़काने वाली खबरों से दूर रहना चाहिए।

मीडिया को तथ्यों की जांच-पड़ताल कर ही समाचारों का प्रकाशन करना चाहिए। आपदा से पूर्व वैज्ञानिक शोधों एवं सुझावों तथा मौसम विज्ञान की भविष्यवाणी पर संभावित प्राकृतिक आपदा पर जागरूकतापरक समाचारों का इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में प्रसारण तथा समाचार पत्रों में प्रकाशन किया जाना चाहिए जिससे आपदा से होने वाली हानि को कम किया जा सके। मीडिया को आपदा के बाद प्रभावित क्षेत्रों की सही स्थिति समाचारों के माध्यम से शासन-प्रशासन के समक्ष उजागर करनी चाहिए जिससे आपदा प्रबंधन के कार्यों में मदद मिल सके। शोधार्थी ने शोध प्रश्नावली में इससे सबंधित प्रश्न के जवाब में उत्तरदाताओं से यह जानने की कोशिश की कि क्या जून 2013 केदारघाटी आपदा प्रबंधन के दौरान समाचार पत्र आपदा प्रभावित क्षेत्रों की सही स्थिति उजागर करने में सफल रहे? इसका जवाब उत्तरदाताओं ने निम्न प्रकार से दिया-

तालिका-8

प्रतिक्रिया	उत्तरदाता	प्रतिशत
हां	104	52.0
नहीं	14	7.0
कुछ-कुछ	76	38.0
कह नहीं सकते	6	3.0
योग	200	100.0

तालिका के अवलोकन से ज्ञात होता है कि 52 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि समाचार पत्र आपदा प्रभावित क्षेत्रों की सही स्थिति उजागर करने में सफल रहे हैं। 38 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि समाचार पत्र कुछ-कुछ प्रभावित क्षेत्रों की स्थिति उजागर करने में सफल रहे। 7.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि केदारघाटी आपदा प्रबंधन के दौरान समाचार पत्र आपदा प्रभावित क्षेत्रों की सही स्थिति उजागर करने में सफल नहीं रहे हैं। जबकि 3.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इस प्रश्न के जवाब में वह कुछ नहीं कह सकते हैं। हालांकि 52 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि समाचार पत्र आपदा प्रभावित क्षेत्रों की सही स्थिति उजागर करने में सफल रहे हैं, लेकिन इससे स्पष्ट होता है कि समाचार पत्रों को आपदा प्रभावित क्षेत्रों में सक्रिय होकर पूरी तरह से आपदा प्रभावितों की सही स्थिति उजागर करनी चाहिए।

निष्कर्ष और सुझाव : मीडिया जनजागरण का एक सशक्त माध्यम है। शोधार्थी ने प्रस्तुत शोध अध्ययन में पाया कि मीडिया ने आपदा प्रबंधन में योगदान देकर आपदा प्रबंधन में नई दिशा की नींव रखी है। केदारघाटी में आई आपदा को उजागर करने में प्रिंट मीडिया (समाचार पत्रों) की विशेष भूमिका रही। आपदा से प्रभावित क्षेत्रों में समाचार कवरेज के माध्यम से आपदा से बचाव, राहत एवं पुनर्निर्माण कार्यों को बढ़ावा देने में प्रिंट मीडिया ने भरपूर योगदान दिया। प्रिंट मीडिया के इस योगदान को केदारघाटी आपदा प्रभावित क्षेत्र के लोग महत्वपूर्ण मानते हैं। लेकिन आपदा प्रभावित क्षेत्र के लोग यह भी मानते हैं कि आपदा प्रबंधन के समय मीडिया को और अधिक सक्रियता से काम करने की जरूरत है।

संदर्भ

1. अमर उजाला, गढ़वाल संस्करण, 14 जून 2013
2. दैनिक जागरण, गढ़वाल संस्करण, 15 जून 2013
3. दैनिक जागरण, गढ़वाल संस्करण, एक जुलाई, 2013
4. हिंदुस्तान समाचार पत्र, गढ़वाल संस्करण, दिनांक 26 दिसंबर 2013, पृ. 11।
5. iekj] ekgu]ft ;ksgSMZ *'चैलेंजेज एंड सोल्यूशन'*, रिसर्च इंडिया प्रेस, 2014, पृ. 126।
6. उत्तराखंड डिजास्टर, कंटेपोरेरी, इश्यूज क्लाइमेट चेंज डेवलपमेंट विद होलिस्टिक एप्रोच, विनसर पब्लीकेशन, 2014 पृ. 22।
7. हिंदुस्तान, गढ़वाल संस्करण, 16 जून 2014, पृ. 07।
8. नेगी पीएस., *'आपदा प्रबंधन'*, अध्ययन बुक्स, नई दिल्ली, पृ. 134-141
9. एनआईडीएम पब्लिकेशन उत्तराखंड डिजास्टर - 2013, www.nidm.gov.in
10. इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विवि, पीजीडीडीएम, *'आपदा तैयारी'*, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, पृ. 165-166।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 20 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2018
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

बाल संप्रेक्षण गृह – एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ रितिका सिंह

देश में बाल अपराधियों के संबंध में 1986 में पारित बाल न्याय अधिनियम द्वारा बाल अपराधियों को वयस्क अपराधियों के साथ जेल में रखने पर रोक लगा दी गई। अतः बाल अपराधियों के कल्याण एवं पुनर्वास के लिए बाल कल्याण बोर्ड, बाल न्यायालय, विशेष विद्यालय संप्रेक्षण गृह, उत्तर संरक्षण संगठन, प्रतिप्रेषण गृह, प्रमाणित विद्यालय, सुधारात्मक विद्यालय, बोर्स्टल संस्थाओं आदि की स्थापना की गई। प्रस्तुत अध्ययन में बाल संप्रेक्षण गृह रामनगर जनपद वाराणसी में रह रहे बाल अपराधियों की समाजार्थिक पृष्ठभूमि, वहाँ उन्हें मिल रही शिक्षा तथा बाल अपराधियों के सुधार में संप्रेक्षण गृहों की सफलता के मूल्यांकन आदि की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

अपराध की समस्या सभी कालों व युगों में रही है, तथा समाज में इससें निपटारा पाने के उपाय होते रहे हैं। लेकिन वर्तमान समाज में इसका रूप और अधिक विकराल व गम्भीर होता जा रहा है। अपराध की समस्या बच्चों में बढ़ती जा रही है। वास्तव में बाल अपराध की समस्या इतनी गम्भीर हो चुकी है कि आज यह किसी एक देश या समाज की समस्या न रहकर सम्पूर्ण विश्व की समस्या बन चुकी है। इस समस्या का अत्यन्त भयानक पक्ष यह है कि बाल अपराध किशोर तथा वयस्क अपराध का प्रवेश द्वार है यहीं से बालक अपराधिता का प्रथम पाठ पढ़ता है और अपराध करना सीखता है। किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना कि आज का बाल अपराधी कल का वयस्क अपराधी हैं सही नहीं है क्योंकि ऐसे भी दत्त प्रमाण मौजूद हैं जिसके अनुसार हम यह कह सकते हैं कि यद्यपि सभी बालक अपराध तो करते हैं किन्तु सभी वयस्क अपराधी के रूप में विकसित नहीं होते हैं। हाँ इतना अवश्य है कि अपराधिक बालकों में अपराधिक सम्भावनाओं का बीजारोपण बाल्यावस्था या किशोरावस्था में ही हो जाता है और इन सम्भावनाओं का अभ्यस्त व व्यावसायिक अपराधियों के साहचर्य अथवा कोई उत्तेजक या अपराधजनक अवसर की प्राप्ति से प्रस्फुटन हो जाता है।

न्यूमेयर के अनुसार "बाल अपराध के अन्तर्गत समाज विरोधी व्यवहार के ऐसे स्वरूप अन्तनिर्हित हैं जिसमें वैयक्तिक तथा सामाजिक विघटन समाविष्ट होते हैं, समाज के आदर्शों तथा कानूनों के अनुरूप आचरण के मूल्य निर्णयन प्रयुक्त होते हैं एवं कार्य का लोगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं।"[1] जब किसी बच्चे द्वारा कोई कानून–विरोधी या समाज विरोधी कार्य किया जाता है तो उसे किशोर अपराध या बाल अपराध कहते हैं। कानूनी दृष्टिकोण से बाल अपराध 7 से 16 वर्ष के बालक द्वारा किया गया कानून विरोधी कार्य है जिसे कानून कार्यवाही के लिए बाल न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जाता है।[2]

गिलिन तथा गिलिन ने वयस्क अपराध एवं बाल अपराध की परिभाषा में आयु की दृष्टि से कोई भेद नहीं किया और बाल अपराध को इस प्रकार परिभाषित किया। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से एक अपराधी अथवा बाल अपराधी वह व्यक्ति है जो एक ऐसे कार्य के लिए दोषी है जिसे एक समूह द्वारा समाज के लिए हानिकारक माना जाता है, जिसके पास अपने विश्वास को लागू करने की शक्ति होती है तथा इसलिए ऐसे कार्य उस समूह द्वारा निषिद्व होते हैं।[3]

मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय अध्ययनों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि मनुष्य में अपराधवृत्तियों का जन्म बचपन में ही हो जाता है। अंकेक्षणों (स्टैस्टिक्स) द्वारा यह तथ्य प्रकट हुआ है कि सबसे अधिक और गंभीर अपराध करने वाले किशोरावस्था के ही बालक होते हैं। इस दृष्टि से किशोर अपराध को एक महत्वपूर्ण कानूनी, सामाजिक, नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्या के रुप में देखा जाने लगा है। इसलिए बाल अपराध की समस्या का समाधान करने के लिए इसके पीछे उत्तरदायी कारकों को ढूंढने का प्रयास किया जा रहा है, व नियन्त्रण के विभिन्न तरीकों कों अपनाया जाता है, जिसमें से एक तरीका है बाल अपराधियों कों वयस्क अपराधियों से दूर रखा जाए और

❑ शोध अध्येत्री, डी.एस.बी. कैम्पस, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

उनको सुधारा जाए, जिसके लिए सन् 1986 में बाल न्याय अधिनियम पारित किया गया है जो सारे देश में एक समान लागू हुआ। इस अधिनियम में बाल अपराधियों को दूसरे अपराधियों के साथ जेल में रखने पर रोक लगा दी गई, और राज्यों को कहा गया कि वे बाल अपराधियों के कल्याण और पुनर्वास की व्यवस्था करेगें। बालकों के कल्याण के लिए बाल कल्याण बोर्ड, बाल न्यायालय, बाल गृह, विशेष विद्यालय, सम्प्रेक्षण गृह, उत्तर संरक्षण संगठन, प्रतिप्रेषण गृह, प्रमाणित विद्यालय अथवा अनुमोदित सुधारात्मक विद्यालय तथा बोर्स्टल संस्थाओं की स्थापना की व्यवस्था की गई।

बाल कल्याण बोर्ड – की धारा 4 में केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासकों को उपेक्षित बालकों के सम्बन्ध में बाल कल्याण बोर्ड के गठन का अधिकार प्रदान किया गया है। यह बोर्ड एक अध्यक्ष और ऐसे सदस्यों से मिलकर बनता है, जिन्हें नियुक्त करना प्रशासन उचित समझें और उसमें कम से कम एक महिला सदस्य का होना आवश्यक है। इस बोर्ड का प्रत्येक सदस्य दण्ड प्रक्रिया संहिता 1898 द्वारा प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट की शक्तियों से संयुक्त रहता है और बोर्ड ऐसे मजिस्ट्रेटों की न्यायपीठ के रुप में कार्य करता है।

बोर्ड के सदस्यों में मतभेद होने की स्थिति में बहुसंख्यक मत प्रभावी होता है, परन्तु जब बहुसंख्यक मत का अभाव रहता है तब अध्यक्ष का मत प्रभावी होता है। किसी व्यक्ति को बोर्ड के सदस्य के रुप में तब तक नियुक्त नहीं किया जा सकता, जब तक वह प्रशासन की राय में बाल मनोविज्ञान तथा बाल कल्याण का विशेष ज्ञान न रखता हो। यदि किसी प्रदेश में बोर्ड का गठन नहीं हो पाया है तो वहाँ बोर्ड का काम केवल जिला मजिस्ट्रेट या प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट द्वारा सम्पादित किया जाएगा।

बाल न्यायालय– बाल न्यायालय सामान्य न्यायालयों से भिन्न होता है। यह वह न्यायालय है जिसमें अपराधी बालकों व किशोरों के सन्दर्भ में उनके व्यवहार तथा जीवन की दशाओं को ध्यान मे रखकर इस प्रकार न्याय करने का प्रयास किया जाता है कि उनमें अंतर्विष्ट अपराधिक अभिवृत्ति समाप्त हो जाए तथा उनमें सामाजिक नियमों व आदर्शों के अनुकूल जीवन जीने की इच्छा उत्पन्न हो जाए। बाल न्यायालय बालकों के संरक्षक की मान्यताओं पर आधारित होता है, इनका उद्देश्य ही बालकों को दण्ड न देकर उनको सुधारना है।

बाल गृह– बाल अधिनियम 1986 की धारा 9 के अन्तर्गत केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासकों को उपेक्षित बालकों को रखने के लिए बालगृहों को स्थापित करने और उन्हें बनाए रखने का प्राविधान किया गया है। प्रशासन यदि ऐसे स्थापित गृहों से भिन्न किसी संस्था को उपेक्षित बालकों को रखने के लिए ठीक समझता है तो वह उस संस्था को बालगृह के रुप में प्रमाणित कर सकता है ऐसे गृहों को प्रमाणित गृह कहा जाता है

विशेष विद्यालय– बाल अधिनियम 1986 की धारा 10 के अन्तर्गत अपराधी बालकों को रखने के लिए प्रशासन को विशेष विद्यालय स्थपित करने तथा उन्हें बनाये रखने का प्राविधान किया गया है। यदि प्रशासन ऐसे स्थापित किये गये विद्यालयों से भिन्न किसी संस्था को अपराधी बालकों को रखने के लिए सही समझता है तो वह उस संस्था को विशेष विद्यालय के रुप में प्रमाणित कर सकता है।

सम्प्रेक्षण गृह– बाल अधिनियम 1986 की धारा 11 के अन्तर्गत किन्ही बालकों का चाहे वे उपेक्षित या अपराधी बालक हों, अस्थायी तौर पर रखने के लिए सम्प्रेक्षण गृहों को स्थापित करने और उन्हे बनाए रखने का प्राविधान किया गया है है। प्रशासन यदि ऐसे स्थापित किये गये सम्प्रेक्षण गृह से भिन्न किसी संस्था को बालकों की जॉच दीर्घकालीन रहने के कारण अस्थायी तौर पर रखने के लिए उपयुक्त समझता है तो उस संस्था को सम्प्रेक्षण गृह के रुप में मान्यता प्रदान कर सकता है ऐसे गृहों को प्रमाणित सम्प्रेक्षण गृह कहॉ जाता है। प्रत्येक सम्प्रेक्षण गृह ऐसे बालकों के लिए न केवल भरण-पोषण, चिकित्सा एवं उपचार व अन्य सुविधाओं की व्यवस्था करता है बल्कि उनके लिए उपयोगी उपजीविका की सुविधाओं का भी प्रबन्ध करता है।

उत्तर-संरक्षण संगठन– बाल अधिनियम 1986 की धारा 12 के अन्तर्गत उपेक्षित तथा अपराधी बालकों को सुधारने के लिए उत्तर-संरक्षण संगठनों की स्थापना और उनकों बनाए रखने का प्राविधान किया गया है। ऐसे प्रत्येक संगठन को बाल गृह अथवा विशेष विद्यालयों से मुक्त किए गए बालकों की न केवल देख भाल करनी पड़ती है वरन् उन्हें समाज में पुनर्वासित करने के लिए प्रयास करना पड़ता है, ताकि वे समाज के लिए एक आदर्श नागरिक की भाँति आत्मसम्मान तथा आत्मविश्वास सहित सामान्य जीवन व्यतीत करने लगे।

बाल न्याय अधिनियम 1986 में प्रयुक्त शब्द 'उपेक्षित बालक' को सन् 2000 मे सुधार किया गया जिसमें उपेक्षित बालक के स्थान पर ''विधि की देखरेख एवं संरक्षण की आवश्यकता वाला बालक कहा गया'', जिसके बाद इस अधिनियम कों बाल न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण 2000) के नाम से जाना जाने लगाा। इस अधिनियम मे 2006 मे भी परिवर्तन किया गया और 2015 में एक बार फिर से इस अधिनियम में परिवर्तन हुआ, जिसके बाद इस अधिनियम को किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम 2015 के नाम से जाना जाने लगा है। इसमें 7 से 16 वर्ष के अपराधी बालकों को कम से कम 3 महीने और ज्यादा से ज्यादा 3 साल की सजा का प्रावधान है, और धारा 15 के अंतर्गत 16 से 18 वर्ष के बाल अपराधियों द्वारा किए गए जघन्य अपराधों कों लेकर विशेष प्रावधान किए गए हैं। किशोर न्याय बोर्ड के पास बच्चों द्वारा किए गए जघन्य अपराधों के मामलों का प्रारम्भिक आकलन के बाद उन्हें बाल न्यायालय (कोर्ट ऑफ सेशन) को स्थानांतरित करने का विकल्प होगा।[4] अपराधी बालकों को बाल सुधार गृह या सम्प्रेक्षण गृह में रखकर सुधार किया जाता है, और बेसिक शिक्षा के साथ-साथ भविष्य को अच्छा बनाने के लिए व्यवसायिक पाठ्यक्रम की शिक्षा भी दी जाती है। सम्प्रेक्षण गृह में रह रहें बालकों को बहुत सुविधाएं सरकार द्वारा दी जा रही हैं जिससें बच्चा अपने आप कों सुधार सके और अपराधिक प्रवृत्तियों से दूर रहें।

सम्प्रेक्षण गृह में सुविधाएं और योजनाएं - रामनगर के सम्प्रेक्षण गृह का अध्ययन करने पर पता चला कि यहाँ पर रह रहे बच्चों को हर प्रकार की सुख-सुविधाएं मिली हुई हैं जैसे देखने के लिए टी वी, कपड़े धोंने के लिए वाशिंग मशीन, पीने के लिए ठण्डा पानी ,खाने के लिए अच्छा खाना आदि। यहाँ पर बच्चों को सप्ताह में तीन दिन मौसमी फल भी दिया जाता है। यहाँ के बच्चों के लिए एन एस डी सी द्वारा प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना चलायी जा रही है जिसमें लांजिग सेक्टर की शिक्षा दी जाती है। लांजिग सेक्टर में इनको वेयर हाऊस और पैकेजिंग का काम सिखाया जाता है इस काम को तीन महीने के अन्दर सिखाकर इनको तीन महीने का सर्टिफिकेट भी दिया जाता है जिसका उपयोग बच्वें बाहर जाकर कर सके। इस योजना का लाभ 15 वर्ष से ज्यादा के बच्चों को मिलता है। बच्चों को कम्प्यूटर, इंग्लिश स्पोकन, कम्प्यूनिकेशन, ऑनलाइन ट्रांजेक्शन आदि कि शिक्षा दी जाती है।

बाल अपराधियों कें सुधार के लिए भारत में बाल अधिनियम, 1986 के अन्तर्गत स्थापित अथवा उपयुक्त संस्थाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य सुधार संस्थाए भी है जैसे-बोस्टन स्कूल, रिमांड गृह, सुधारात्मक विद्यालय जैसी संस्थाओं की स्थापना की गयी है, जिससे बच्चों में सुधार हो सके और वे एक अच्छे नागरिक बनें और राष्ट्र के निर्माण में अपना योगदान दे सकें।

प्रस्तुत अध्ययन में सम्प्रेक्षण गृह का अध्ययन किया गया है और बच्चों द्वारा यह पता लगाया गया है कि वे यहां पर कब से रह रहे है, वे अपनी शिक्षा पूरी करेगे या नहीं, यहां पर दी जाने वाली शिक्षा उन्हें बाहर काम आएगी या नहीं, यहां आने के बाद अपने किए गए अपराध पर पछतावा है या नही, और यहां आए बच्वें सुधरते हैं या नहीं।

साहित्य पुनरावलोकन : डेविड एल जोन्स 2014 ने 'ट्रेण्डस इन जूविनाइल डेलिक्वेन्सि' पर अध्ययन किया। इनका अध्ययन क्षेत्र यूनाइटेड स्टेट है। इन्होने अध्ययन द्वारा यह जानने कि कोशिश की कि जूविनाइल डेलिक्वेन्सि और गरीबी स्तर में क्या सम्बन्ध है, क्या जूविनाइल डेलिक्वेन्सि से बेरोजगारी का कोई सम्बन्ध है, जूविनाइल डेलिक्वेन्सि से वयस्क अपराधों का अन्तर, और जूविनाइल डेलिक्वेन्सि से स्कूल छोड़ने वालों का कोई सम्बन्ध है। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि जूविनाइल डेलिक्वेन्सि बीच में स्कूल छोड़ने वाले हैं और इनमे बेरोजगार बच्चों की संख्या अधिक है। आज के वयस्क अपराधी किशोरावस्था में अपराध किए हुए होते है, और जैसे जैसे गरीबी बढ़ रही है वैसे वैसे जूविनाइल डेलिक्वेन्सि भी बढ़ रहे हैं जिसका मतलब दोनो में काफी सम्बन्ध पाया गया है। गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी से सम्बन्धित है गरीबी बेरोजगारी का उत्पादन है जिस कारण जूविनाइल डेलिक्वेन्सि आया और यह बढ़ता जा रहा है।[5]

श्रीराम यादव जनवरी-जून 2015 ने बाल अपराधियों पर सम्प्रेक्षण गृहों का प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन किया तथा अध्ययन क्षेत्र के लिए गोरखपुर मण्डल के राजकीय सम्प्रेक्षण गृह के बाल अपराधियों का चयन किया। इनके अध्ययन का उद्देश्य बाल अपराधियों के साथ सम्प्रेक्षण गृह में किये गये व्यवहारों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन करना था। इन्होने पाया कि बाल

अपराधियों को सुधारने के लिए सम्प्रेक्षण गृहों मे अच्छा वातावरण बनाया जाता है जिससे वे अपराधिक गतिविधियों को छोड़ सकें तथा अपने नैतिक गुणों का विकास कर सकें। साथ ही साथ इन्होंने यह भी बताया कि बाल अपराध की समस्या के निवारण तथा नियन्त्रण के लिए अब तक कोई योजना कार्यान्वित नही की जा सकी है। किसी ठोस योजना के अकार्यान्वयन के दो प्रधान कारण रहे हैं। पहला समस्यागत अध्ययन परिणामों में एकीकरण का अभाव रहा है तथा द्वितीय, पर्याप्त आर्थिक साधनों की अनुपलब्धता रही है।[6]

रेखा दुबे जुलाई दिसम्बर 2015 ने बाल अपराधियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया जिसके लिए इन्होने कानपुर का बालगृह कल्यानपुर को अपना क्षेत्र लिया। इनके अध्ययन का उद्देश्य इस तत्व को जानना था कि बालगृह मे रह रहे बालकों की परिवारिक पृष्ठभूमि किस प्रकार उनकी वर्तमान स्थिति से सम्बन्धित है। इन्होने अपने अध्ययन में पाया कि अपराधी व्यवहार के कारण बालगृह में रह रहे, अधिकांश अपराधी बच्चे भग्न परिवारों से सम्बन्धित थे, अपराधी बच्चे ज्यादातर कुशल व अकुशल श्रमिक परिवारों से थे, आधे से ज्यादा बच्चें निरक्षर परिवारों से थे, भातृक्रम में वृद्धि के साथ-साथ अपचारिता मे कमी देखी गई, इनके अध्ययन मे 66 प्रतिशत बालक नाभिक परिवारों से थे, तथा इन्होने पाया कि जैसे जैसे परिवार की सामाजिक आर्थिक स्थिति में गिरावट होती गई वैसे वैसे बाल अपराध की समस्या में वृद्धि होती गई। साथ ही साथ उन्होंने यह भी बताया कि शारीरिक या मानसिक दोष बालक के अपचारिता या उपेक्षिता से कोई प्रमुख सम्बन्ध नही रखते है।[7]

दीपक मालवीय जुलाई 2016 ने अपने अध्ययन “गंगा नगर” बस्ती मे बाल अपराध की स्थिति के लिए भोपाल जिले में नगर निगम के अन्तर्गत उल्लेखित 360 गन्दी बस्तियों में से गंगा नगर बस्ती का चयन किया, जिसमें इन्होने 295 परिवारों में से 8 परिवारों का चयन किया है जिनमें परिवार के सदस्यों की संख्या 50 है जो अध्ययन के उत्तरदाता हैं। अध्ययन का उद्देश्य गन्दी बस्तियों में बाल अपराध की स्थिति ज्ञात करना, गंन्दी बस्तियों और अन्य बस्तियों में बाल अपराध का आकलन तथा बाल अपराध से होने वाले परिणामों का समाज पर प्रभाव जानना है। इन्होंने अपने शोध में पाया कि सामाजिक आर्थिक स्थिति के कारण दूषित मनोभाव व बुरी आदतों का निर्माण होता है, समाज विरोधी कार्य व नियम कानून की अवहेलना होती है, परिवारों का विघटन होता है, शिक्षा के प्रति अरुचि उत्पन्न होती है, और संस्कारों का अभाव पाया जाता है। इन्होने अपने शोध मे कुछ सुझाव भी देते हुए कहा है कि बच्चों के लिए अच्छे वातावरण और शिक्षा के साथ साथ स्वस्थ व अच्छे मनोरंजन के साधन होने चाहिए। गंदी बस्तियों को यथाशीघ्र समाप्त किया जाना चाहिए, अनुर्त्तीण होने की समस्या का उचित समाधान खोजना चाहिए। बाल अपराधियों के साथ सामान्य व्यवहार करना चाहिए व उनके मानसिक और भौतिक विकास हेतु लगातार उचित बातों से प्रोत्साहित करते रहना चाहिए और उन पर निगरानी रखकर उचित मार्गदर्शन देना चाहिए।[8]

जकिया रफत मार्च 2018 ने ‘बाल अपराधीः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन’ किया जिसके लिए बिजनौर जनपद के बाल सुधार गृह में रहने वाले बाल अपराधियों को अपना अध्ययन क्षेत्र लिया है। वर्तमान में यहॉ पर 54 बाल अपराधी हैं जिसमें से इन्होने सिर्फ 25 बाल अपराधियों का चयन सुविधाजनक निदर्शन पद्धति से किया है। इनके अध्ययन का उद्देश्य बाल अपराधियों की स्थिति और कारण का अध्ययन करना है। सूचनाओं के संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। इन्होने अपने अध्ययन के निष्कर्ष मे पाया की 14 से 18 वर्ष के बाल अपराधियों की संख्या 64.2 प्रतिशत है, 87 प्रतिशत बाल अपराधी हिन्दू और 60.2 प्रतिशत पिछड़ी जातियों से सम्बन्धित है, 80 प्रतिशत बाल अपराधी एकाकी परिवारों से आये हुए हैं, 75.2 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते है 76 प्रतिशत परिवारों की मासिक आय 9000 से कम पायी गयी। इनके अध्ययन द्वारा स्पष्ट होता है कि अधिकांश बच्च चोरी के अपराध में यहाँ सजा काट रहे है, 80 प्रतिशत बाल अपराधी बच्चों ने बोला हम अकेले नही गिरोह में अपराध करते हैं, 50 प्रतिशत बच्चों पर परिवार का बिल्कुल नियंत्रण नहीं है, 60 प्रतिशत बच्चों के माता पिता उनकी गलतियों पर कोई ध्यान नही देते, 60 प्रतिशत बच्चों का पढ़ाई में कम रुचि है जबकि 20 प्रतिशत बच्चों का पढ़ाई में बिल्कुल भी रुचि नही रखतें है, 40 प्रतिशत बच्चों ने बताया कि स्कूल के अध्ययापकों का उनके साथ कम अच्छा व्यवहार है, और जब शोधकर्ता ने उनसे अपराध करने का कारण पूछा तो 33.3 प्रतिशत बच्चों ने अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति कों अपराध का कारण बताया।[9]

संतोष श्रीवास्तव, श्रीनिवास मिश्र मई 2018 ने लखनऊ शहर की मलिन बस्तियों में नशा वृद्धि के कारण बाल अपराध व महिला अपराधों का सामाजिक अध्ययन किया जिसके लिए इन्होने लखनऊ शहर की मलिन बस्तियों को अध्ययन क्षेत्र लिया। इनके अधययन का उद्देश्य शोध क्षेत्र की मलिन बस्तियों में मादक द्रव्यों के सेवन के फलस्वरूप बाल अपराधों का अध्ययन, नशा में वृद्धि के कारण महिला अपराध का अध्ययन, और वहाँ रह रहे बच्चों के माता पिता अपने बच्चों की उचित देखरेख नही कर पाते जिस कारण वे कई बाधाओं से ग्रसित हो जाते हैं इस कारण उनकी चिकित्सा के लिए उपाय करना है। इन्होंने अपने अध्ययन मे पाया कि लखनऊ शहर के मलिन बस्ती में अधिकांश लोग गरीब, निर्धन, पिछड़े समुदाय से है। इन मलिन बस्तियों में मुख्य रूप से क्षेत्रीय समूह गतिशीलता अधिक दिखाई देती है। इनके विचार से कोई भी चीज जिसकी शरीर को जरुरत महसूस होती है और जिससे शरीर को तकलीफ महसूस हो, उसे नशा कहते है। नशा की जानकारी बच्चों को सही नही है। किशोरावस्था में व्यक्तित्व के निर्माण तथा व्यवहार के निर्धारण में वातावरण का बहुत हाथ होता है अतः अपने उचित या अनुचित व्यवहार के लिए किशोर बालक स्वयं नहीं वरन् उसका वातावरण उत्तरदायी होता है। शोध क्षेत्र की मलिन बस्तियों में मादक द्रव्यों के सेवन के फलस्वरुप बाल अपराधों में वृद्धिके कारण महिला अपराधों में अपेक्षाकृत वृद्धि हुई है।[10]

शोध के उद्देश्यः प्रस्तुत शोध का उद्देश्य बाल अपराधियों के संस्थात्मक जीवन को जानना है तथा उनको वहां पर कौन कौन सी सेवाएं मिल रही हैं इसका भी पता लगाना है।

शोध प्रारूपः शोध के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों ही प्रकार के आंकड़ो का संकलन किया गया है प्राथमिक आंकड़ो के संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है जिसके लिए रामनगर सम्प्रेक्षण गृह के 50 बाल अपराधियों का चयन सोद्देश्य निर्दशन विधि द्वारा किया गया है और उनका साक्षात्कार लिया गया है, तथा द्वितीयक आकड़ों के संकलन के लिए पुस्तकों, इन्टरनेट, लेख, का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत शोध में वाराणसी जिलें के रामनगर शहर में स्थित किशोर सम्प्रेक्षण गृह का अध्ययन हेतु चयन किया गया है जिसमें 75 किशोर अपराधियों कों रखा जा सकता है परन्तु वर्तमान में यहां पर लगभग 110 से 125 बाल अपराधी रह रहे हैं।

शोध का महत्वः प्रस्तुत शोध न केवल बाल अपराधियों के संस्थागत जीवन में क्या हो रहा है यह जानने के लिए किया गया है बल्कि इस शोध में यह भी जानने का प्रयास किया गया है कि बाल अपराधी यहां से जाने के बाद कहां जाएगा और क्या करेगा। साथ ही साथ इस बात को भी ध्यान में रखा गया है कि बाल अपराधी अपने किए अपराध को दुबारा तो नहीं करेगा।

सारणी-1

बाल अपराधियों के पिता का व्यवसाय और आय

व्यवसाय	आय	संख्या	प्रतिशत
कृषि	7000	15	30
मजदूरी	12000	21	42
नौकरी	18000	02	04
व्यापार	5 से 8 हजार	12	24
योग	50	50	100

सम्प्रेक्षण गृह में रह रहे बाल अपराधी बच्चों से जब पूछा गया कि उनके पिता जी क्या काम करते हैं और उनकी आय कितनी है तो 30 प्रतिशत बच्चों ने बताया कि उनके पिता कृषि करते हैं और उनकी आय 7000 रु प्रति माह है, 21 प्रतिशत बच्चों के पिता मजदूरी करते हैं जिनकी आय 12000 रु प्रति माह है, 04 प्रतिशत बच्चों के पिता नौकरी करते हैं जिनकी आय 18000 रु. प्रति माह है, और 24 प्रतिशत बच्चों के पिता व्यापार करते हैं जिसमे फल बेचना, सब्जी बेचना प्रमुख है, उनकी आय 5 हजार से 8 हजार रूपये प्रतिमाह है।

सारणी-2

बाल अपराधियों के परिवार की आर्थिक स्थिति

वर्ग	संख्या	प्रतिशत
निम्न वर्ग	08	16
निम्न मध्यम वर्ग	15	30
मध्यम वर्ग	27	54
उच्च मध्यम वर्ग	00	00
उच्च वर्ग	00	00
योग	50	100

सम्प्रेक्षण गृह में रह रहे बाल अपराधी बच्चों के परिवार की आर्थिक स्थिति के आधार पर उनके आर्थिक वर्ग का निर्धारण करने पर स्पष्ट हुआ कि 16 प्रतिशत बच्चों के परिवार निम्न वर्ग में, 30 प्रतिशत बच्चों के परिवार निम्न

मध्यम वर्ग में, 54 प्रतिशत बच्चों के परिवार मध्यम के अंतर्गत आते हैं। यहॉ पर रहने वाला कोई भी बाल अपराधी उच्च मध्यम वर्ग व उच्च वर्ग से नहीं है।

सारणी 3

सम्प्रेक्षण गृह में निवास की अवधि

निवास की अवधि	संख्या	प्रतिशत
कुछ दिन से	3	06
कुछ सप्ताह से	2	04
एक महीने से	7	14
दो महीने से	5	10
तीन महीने से	6	12
इससे अधिक	27	54
योग	50	100

प्रस्तुत सारणी संख्या 3 में रामनगर के सम्प्रेक्षण गृह में रह रहे बाल अपराधियों की निवास की अवधि को दर्शाया गया है कि वे वहां पर कब से रह रहे हैं। अध्ययन करने पर पता चला की 06 प्रतिशत बाल अपराधियों वहां पर कुछ दिनों से रह रहे हैं, 04 प्रतिशत बाल अपराधी कुछ सप्ताह से, 14 प्रतिशत बाल अपराधी एक महीने से, 10 प्रतिशत बाल अपराधी दो महीने से, 12 प्रतिशत बाल अपराधी तीन महीने से और 54 प्रतिशत बाल अपराधी ऐसे थे जो तीन महीने से भी अधिक दिनों से वहां रह रहे थें।

सारणी 4

संस्था द्वारा दी जाने वाली शिक्षा ले रहे हैं

शिक्षा ले रहे हो	संख्या	प्रतिशत
हॉ	22	44
नहीं	28	56
योग	50	100

रामनगर सम्प्रेक्षण गृह में रह रहे बाल अपराधियों को वहां दी जाने वाली शिक्षा लेने के संबंध में पूछने पर स्पष्ट हुआ कि वहां रह रहे 44 प्रतिशत बाल अपराधी ही शिक्षा ले रहे हैं जबकि 56 प्रतिशत बाल अपराधी ऐसे थे जो वहां शिक्षा नही ले रहे थे।

सारणी 5

संप्रेक्षण गृह की शिक्षा से संन्तुष्टि

शिक्षा से संतुष्टि	संख्या	प्रतिशत
हॉ	21	95.46
नहीं	01	04.54
योग	22	100

सारणी संख्या 5 से स्पष्ट होता है कि रामनगर सम्प्रेक्षण गृह में रह रहे 44 प्रतिशत बाल अपराधियों ही वहां पर शिक्षा ले रहे हैं जिसमें 95.46 प्रतिशत बच्चें वहां कि शिक्षा सें सन्तुष्ट थे और 04.54 प्रतिशत बच्चें वहां कि शिक्षा सें असन्तुष्ट थे।

सारणी 6

शिक्षा नहीं लेने का कारण

कारण	संख्या	प्रतिशत
आधार कार्ड नहीं है	08	28.57
8 पास हो चुका हूँ	12	42.85
मन नहीं है	06	21.44
अन्य कोई	02	07.14
योग	28	100

सारणी संख्या 6 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि रामनगर सम्प्रेक्षण गृह में रह रहे 56 प्रतिशत बाल अपराधी वहां पर शिक्षा नहीं ले रहे हैं क्योंकि 28.57 प्रतिशत बच्चों के पास उनका आधार कार्ड नही था बिना आधार कार्ड वे वहां शिक्षा नही ले सकते थे, 42.85 प्रतिशत बच्चें 8 पास हो चुके थे, 21.44 प्रतिशत बच्चों का मन पढ़ाई में नही था, और 07.14 प्रतिशत बच्चों ने शिक्षा नहीं लेने का कारण नही बताया।

सारणी 7

संस्था द्वारा दी गई शिक्षा बाहर काम आएगी

काम आएगी	संख्या	प्रतिशत
हॉ	18	81.81
नहीं	04	18.19
योग	22	100

सारणी संख्या 7 से स्पष्ट होता है कि सम्प्रेक्षण गृह में रह रहे 44 प्रतिशत शिक्षा ले रहे बाल अपराधियों में 81.81 प्रतिशत बाल अपराधियों का कहना है कि यहां दी जाने वाली शिक्षा बाहर काम आएगी और 18.19 प्रतिशत बाल अपराधियों का यह मानना है कि यहां दी जाने वाली शिक्षा बाहर काम नहीं आएगी।

सारणी 8

सम्प्रेक्षण गृह में आने के बाद अपने किए गए अपराध पर पछतावा है

पछतावा	संख्या	प्रतिशत
हॉ	43	86
नहीं	07	14
योग	50	100

रामनगर सम्प्रेक्षण गृह में रह रहे बाल अपराधियों का अध्ययन करने पर (सारणी 8 से) पता चला कि 86 प्रतिशत बाल अपराधी अपराध करने के बाद अपने किए पर पक्षतावा करते हैं उनका कहना है कि अपराध वे करना नहीं चाहतें थे परन्तु कुछ समझ न आने के कारण ऐसा हो गया, वही 14 प्रतिशत बाल अपराधी का कहना है कि उन्हे अपने किए गए अपराध पर बिल्कुल भी पक्षतावा नही है।

सारणी 9

सम्प्रेक्षण गृह अपराधियों के सुधार में सफल

सुधार में सफल	संख्या	प्रतिशत
हॉ	32	64
नहीं	18	36
योग	50	100

रामनगर सम्प्रेक्षण गृह में रह रहे बाल अपराधियों का अध्ययन करते समय जब उनसे पूछा कि बच्चे यहां आकर सुधरते हैं या नहीं तों 64 प्रतिशत बाल अपराधियों ने बोला हां यहां आकर बच्चें सुधर जाते हैं परन्तु 36 प्रतिशत बाल अपराधियों ने बोला नहीं यहां आकर भी उन पर कोई प्रभाव नही पड़ता वे यहां से निकलने के बाद फिर से अपराध करते हैं।

सारणी 10

सजा की अवधि पूर्ण होने पर कहॉ जायेंगे

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
माता पिता के पास	34	68
रिश्तेदारों के पास	07	14
मित्रों के पास	00	00
पता नहीं	09	18
योग	50	100

रामनगर के किशोर सम्प्रेक्षण गृह में रह रहे बाल अपराधियों से यह पूछने पर कि सजा की अवधि पूर्ण हो जाने के बाद वे कहॉं जायेंगे, 68 प्रतिशत बाल अपराधियों ने कहॉ कि यहॉ से निकल कर अपने माता पिता के पास जायेंगे, वही 07 प्रतिशत बाल अपराधियों ने कहा कि वे अपने रिश्तेदारो जैसे भाई, नाना-नानी, के पास जायेंगे, यहॉ से निकल कर मित्रों के पास जाने वालों की संख्या शून्य प्रतिशत पाई गई जबकि 18 प्रतिशत बच्चों को यह ही पता नहीं था कि वे कहॉ जायेंगे क्योंकि इसमे कुछ बच्चें वापस अपने काम पर जाना चाहते हैं पर उनको ये पता नही है कि यहॉं से निकलने के बाद उन्हे काम पर रखा जाएगा या नहीं।

सारणी 11

यहॉं से जाने के बाद आप अपनी शिक्षा पूरी करना चाहते हैं

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
हॉ	05	10
नहीं	43	86
पता नहीं	02	04
योग	50	100

रामनगर के किशोर सम्प्रेक्षण गृह मे रह रहे बाल अपराधियों से शिक्षा में रूचि व शिक्षा का जीवन में महत्व को जानने के लिए जब उनसे पूछा गया कि यहॉ से जाने के बाद आप अपनी शिक्षा पूरी करना चाहते हैं तो 10 प्रतिशत बाल अपराधी बच्चें ही ऐसे पाये गए जो अपनी शिक्षा पूरी करना चाहते हैं जबकी 86 प्रतिशत बाल अपराधी बच्चें को शिक्षा में कोई रुची नहीं थी। इसमें अधिकांश बच्चे पहले से ही शिक्षा छोड़ चुके हैं और 04 प्रतिशत बच्चों को पता नहीं है कि वो यहॉ से जाने के बाद अपनी शिक्षा पूरी कर पाएगें या नही क्योंकि उनको लगता है कि यहॉ आने के बाद उनको समाज में बुरा समझा जाएगा।

सारणी 12

शिक्षा पूरी करने वाले बाल अपराधी क्या बनना चाहते हैं

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
अधिकारी	01	20
वकील	01	20
कोई अच्छी नौकरी	03	60
योग	05	100

रामनगर के किशोर सम्प्रेक्षण गृह से निकलने के बाद जो बाल अपराधी अपनी शिक्षा पूरी करना चाहते हैं उनसे यह पूछने पर कि वे क्या बनना चाहते हैं तो उनमें से 20 प्रतिशत बच्चें अधिकारी बनना चाहते हैं, 20 प्रतिशत बच्चें वकील बनना चाहते हैं और 60 प्रतिशत बच्चें कोई अच्छी नौकरी करना चाहते हैं।

निष्कर्ष : रामनगर के सम्प्रेक्षण गृह के बाल अपराधियों के अध्ययन से संबंधित उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि यहॉ पर जो बच्चे सजा के लिए लाए गए हैं वो मध्यम वर्गीय परिवार से अधिक हैं और अधिकांश बच्चों के पिता मजदूरी करते हैं। ज्यादातर

बच्चें तीन माह से भी अधिक दिनों से यहॉ रह रहे थे। यहॉ के अधिकांश बच्चें यहॉ पर शिक्षा नहीं ले रहे थे और जो बच्चें शिक्षा ले रहे थे उनमें अधिकांश बच्चें यहॉ की शिक्षा से सन्तुष्ट थे। जो बच्चें यहॉ शिक्षा नही ले रहे थे उनसे शिक्षा न लेने का कारण अधिकांश बच्चों ने 8 पास होना बताया (यहॉ पर 8 तक की ही शिक्षा सरकार द्वारा दिलाई जाती है)। शिक्षा ले रहे बच्चों में से अधिकतर बच्चों ने बताया यहाँ की शिक्षा बाहर काम आएगी। 86 प्रतिशत बच्चों ने कहा कि उन्हें अपने किए गए अपराध पर पक्षतावा है। 64 प्रतिशत बच्चों ने बताया कि यहाँ आकर बच्चें सुधर जाते हैं परन्तु 36 प्रतिशत बच्चों का मानना है कि नही यहॉ आकर बच्चें सुधरते नही बल्कि और बिगड़ जाते हैं। सम्प्रेक्षण गृह में रह रहे अधिकांश बच्चों का कहना है कि सजा की अवधि समाप्त हो जाने के बाद अपने माता पिता के पास जाएंगे। यहॉ से जाने के बाद अपनी शिक्षा पूरी करने के संबंध में पूछने पर 86 प्रतिशत बच्चों का उत्तर नही था और जो बच्चें यहॉ से जाने के बाद अपनी शिक्षा पूरी करना चाहते हैं वे वकील, अधिकारी, या फिर कोई अच्छी नौकरी करना चाहते हैं

सुझाव : सम्प्रेक्षण गृह मे रह रहे बच्चों का महीने में एक बार मनोवैज्ञानिक परीक्षण होना आवश्यक है जिससें उनके मानसिक स्थिति का पता लगााया जा सके। सम्प्रेक्षण गृह से जा चुके बच्चों के बारे मे भी समय समय पर पता लगाना चाहिए जिससे यह पता चल सके कि योजनाएं कितना कार्य कर रही हैं। सम्प्रेक्षण गृह मे दुबारा आए बच्चों पर विशेंष ध्यान दिया जाना चाहिए।

संदर्भ

1. Neweyer Martin H., *'Delinquency in a Changing Society'*, New York 1947 p. 26
2. https://hiWikipedia.org/wiki/किशोर-अपराध
3. गिलिन जे.पी. और जे. एल. गिलिन, *'कल्चरल सोसियोलाजी'*, मैकमिलन, 1950 पृ 786
4. The juvenile justice act, 2015 हैज कम इनटू फोर्सः आउटलुक हिन्दी, http://www.outlookhindi.com/.../the juvenile-justice-act-2015-has
5. Jones David L *'Trands in Juvenile Delinquency'*, Thesis-Northern Michigan University 2014 pp. 31&34
6. यादव श्रीराम, *'बाल अपराधियों पर सम्प्रेक्षण गृहों का अध्ययन'*, राधा कमल मुखर्जी; चिन्तन परम्परा, वर्ष 17 अंक 1 समाज विज्ञान विकास संस्थान बरेली (उ.प्र.), जनवरी-जून, 2015, पृ. 104-107
7. दुबे रेखा, *'बाल अपराधियों की पारिवारीक पृष्ठभूमि का अध्ययन'*, राधा कमल मुखर्जी; चिन्तन परम्परा, वर्ष 17 अंक 2 जुलाई-दिसम्बर ,2015 पृ. 123-125
8. मालवीय दीपक, *'गंगा नगर गन्दी बस्ती में बाल अपराध की स्थिति'*, श्रीखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका, वर्ष-3 अंक 11, जुलाई 2016 पृ. 53
9. रफत जकिया, *'बाल अपराधः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'*, शोध मंथन, मार्च 2018 पृ. 97-102
10. श्रीवास्तव सन्तोष एवं श्रीनिवास मिश्रा, *'लखनऊ शहर के मलिन बस्तियों में नशा वृद्वि के कारण बाल अपराध व महिला अपराधों का सामाजिक अध्ययन'*, इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस एजूकेशन रिसर्च, वर्ष 3, अंक 3, पृ. 47, 50

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 20 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2018
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

पूर्वमध्यकालीन भारतीय सामंती समाज की संरचना

❑ संजीव कुमार

सामंतवादी समाज में भू-स्वामियों के नियंत्रक वर्ग तथा किसानों के परवश वर्ग के मध्य विस्तृत सेवाओं एवं उत्पादन नियंत्रण तथा उपभोग की ऐसी व्यवस्था थी जिसमें अधिकारिता का नीचे से ऊपर आरोही क्रम तथा उपभोग में ऊपर से नीचे की ओर अवरोही क्रम था। वर्ग विभाजित प्राक-पूँजीवादी समाजों में भूमि तथा कृषि-उत्पादन का महत्व सबसे अधिक होता है। किन्तु भूमि के वितरण तथा कृषि-उत्पादों के अधिग्रहण की विशिष्ट परिस्थितियाँ अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग प्रकार की होती हैं। प्रस्तुत आलेख पूर्वमध्यकालीन भारतीय सामंती समाज की संरचना का विषय विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

कार्ल मार्क्स[1] और एंजिल्स[2] ने सामाजिक विकास को उसके उत्पादन पद्धतियों से चिन्हित कर ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में हुए परिवर्तनों से सम्बद्ध कर विश्लेषित करने का प्रयास किया है। विश्लेषण की इस पद्धति को उन्होंने ऐतिहासिक भौतिकवाद की संज्ञा दी है तथा इसको ही उन्होंने 'इतिहास का वैज्ञानिक निरूपण' कहा है।[3] उत्पादन पद्धति को उत्पादन शक्तियों और उनके मध्य व्याप्त परस्पर उत्पादन सम्बन्धों और अधिशोषण के सभी क्रियाशील प्रकारों के समेकित स्वरूप से परिभाषित किया जा सकता है।[4] कार्ल मार्क्स के प्रसिद्ध कथन जिसमें उन्होंने समाज, उत्पादन पद्धति, उत्पादन सम्बन्ध और संस्थागत शोषण को निरूपित किया है, निम्नवत् समझा जा सकता है- ''मानव समूह को तभी समाज कहा जा सकता है जबकि उस समूह के सभी सदस्य किसी न किसी प्रकार से एक दूसरे से जुड़े हों। यह सम्बन्ध वांशिक न होकर इस पर निर्भर हो कि वह व्यक्तिगत अथवा सामूहिक, रूप में कुछ उत्पादित करते हों तथा उत्पादित वस्तुओं का परस्पर विनिमय करते हों। किसी समाज को यह विशिष्टता देता है कि वह किस वस्तु को आवश्यक मान उसका संग्रहण अथवा उत्पादन करता है, किन औजारों से? दूसरों के उत्पादन का कौन उपभोग करता है? और किस अधिकार से, दैवीय अथवा वैधानिक? सम्प्रदाय और कानून सामाजिक सह-उत्पाद हैं। उत्पादन के यन्त्रों, भूमि, तथा कभी-कभी उत्पादक के तन और आत्मा पर किसका स्वामित्व है? अधिशेष उत्पादन के वितरण पर किसका नियंत्रण है, जो आपूर्ति की मात्रा और प्रकार को भी निरूपित करता है। समाज को उत्पादन के यही बंधन एक साथ संगठित करते हैं''[5] पुनश्चः, अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए आवश्यक संसाधनों के माध्यम से किए जाने वाले सामाजिक उत्पादन के संदर्भ में मनुष्य अनैच्छिक अथवा ऐच्छिक रूप में कतिपय निश्चित और आवश्यक संबंधों से आबद्ध होते हैं जो उनकी भौतिक उत्पादन शक्तियों के विकास के सोपानों को निरूपित करते हैं। उत्पादन संबंधों का समेकित स्वरूप समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण करता है, यह वह प्राथमिक आधार है, जिस पर न्यायिक एवं राजनीतिक अपर संरचनाओं का विकास होता है और जिससे निश्चित प्रकार की सामाजिक चेतना मुखातिब रहती है। अस्तित्व के लिए आवश्यक भौतिक संसाधनों के उत्पादन प्रकार ही सामाजिक, राजनैतिक और बौद्धिक जीवन की समस्त प्रक्रिया को निर्धारित करती है।''[6]

भारतीय परिपेक्ष्य में उत्पादन पद्धतियों को परिभाषित करते हुए मार्क्स ने 'एशियाटिक मोड ऑफ प्रोडक्शन' की अवधारणा को प्रस्तावित किया, जिसे भारत के समस्त प्राक औपनिवेशिक काल में प्रभावी कहा गया। इसके अनुसार भारत में निरंकुश राज्य के अन्तर्गत ग्राम्य-स्तर तक उत्पादन राज्य के पूर्ण स्वामित्व एवं नियंत्रण में था। प्रशासकीय अधिकारियों, कर्मचारियों की बड़ी संख्या, एक वर्ग के रूप में, राज्य को ग्राम उत्पादित अधिशेष का संग्रहण करने में सहायता करती थी। इस उत्पादन आकार की विशिष्टताओं में व्यक्तिगत भू-स्वामित्व का अभाव, वाणिज्यिक केन्द्रों की अनुपस्थिति, तथा ग्राम्य समाजों का स्थानीय स्तर पर छितराया हुआ अस्तित्व आदि प्रमुख घटक थे हालाँकि भारतीय परिपेक्ष्य में अधिकांशतः इतिहासकार इससे पूर्णतः सहमत नहीं हैं। तथापि, यूरोपीय ऐतिहासिक

❑ प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, ति.माँ. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

अनुभव के अनुरूप विश्व-स्तर पर उपरोक्त मॉडल का आकलन करने पर, प्राचीन तथा मध्ययुगीन दो उत्पादन पद्धतियों के विकास की एक सामान्य प्रक्रिया को सभी ने स्वीकार किया है। प्राचीन से मध्यकाल की और संक्रमण के मूल में परिवर्तित उत्पादन सम्बन्ध मौलिक कारण थे। उत्पादन पद्धतियों के आधार पर प्राचीन भारतीय इतिहास को चार कालखण्डों में विभाजित किया जा सकता है। (क) व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा के पूर्व का काल अथवा प्राक-सभ्यता काल, (ख) सभ्यता के उदय से प्रथम शताब्दी ई. तक का युग, (इस काल में समस्त भूमि पर सैद्धान्तिक रूप में राज्य का स्वत्व प्रभाव था) भू-स्वामी वास्तविक स्वामी होते हुए भी सिद्धान्ततः राज्य को भूमि कर आदाता कृषक था। (ग) भूमिदास प्रथा का आरम्भ प्रथम श. ई. में हुआ, जिसकी प्रमुख विशिष्टता थी, राज्य द्वारा भूमिदान के क्षेत्र पर अपना आंशिक स्वत्व का भूमिदान भोगी के हक में हस्तांतरण और (घ) छठी श. ई. से बारहवीं श. ई., भूमिदान प्राप्तकर्त्ता को भू-खण्ड पर आर्थिक उपभोग के साथ-साथ प्रशासनिक-न्यायिक अधिकारों का पूर्ण हस्तांतरण।

कृषक का इतिहास सभ्यता के युग में आरम्भ हुआ, जब वह भू-स्वामी एवं भूमि-कर आदाता दोनों बना। कृषि से जुड़े अन्य कार्य में लगे अन्य कृषक सरीखे कृषि-मजदूर अथवा कृषि दास इस काल में सामान्यतः मिलते हैं। यद्यपि नव-पाषाण युगीन कृषि क्रान्ति के फलस्वरूप कृषक जीवन आत्मनिर्भर ग्राम्य अर्थव्यवस्था के स्तर तक फला-फूला। धीरे-धीरे, अतिरिक्त कृषि उत्पादन (अधिशेष) का संकेन्द्रण कुछ उर्वर प्रदेशों में बड़ी मानव बस्तियों में होने लगा। यह बस्तियाँ अब अधिशेष के संग्रहण एवं उपभोग के केन्द्रों के रूप में विकसित होने लगीं तथा अन्ततः इन बहुमुखी बदलावों ने कृषि की उत्पादन पद्धति में कृषक परिवार को एक उत्पादन इकाई के रूप में स्थापित किया। तकनीकी आधार पर समय-समय पर कृषि उत्पादन की वृद्धि के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। छठी श0 ई.पू. में आर्थिक सामाजिक क्षेत्रों में दूरगामी बदलाव पुनः देखने को मिलते हैं। अखिल भारतीय उपमहाद्वीप में यह परिवर्तन कृषि में लौह यन्त्रों के व्यापक उपयोग के कारण बड़े पैमाने की कृषि तथा बेहतर कृषि उत्पादन से जीवन अधिशेष का उपभोग नगरों के विकास की ओर होने से संबंधित थे। अधिशेष उत्पादन की ओर उन्मुख यह कृषि-अर्थव्यवस्था, कई शताब्दियों तक किंचित तकनीक जनित बदलावों के बावजूद मौलिक रूप में समान बनी रही। मौर्योत्तर काल के पश्चात प्रथम श.ई. से भूमि-व्यवस्था में कतिपय ऐसी नवीनताओं का समावेश किया जाने लगा, जिन्होंने आने वाली तीन शताब्दियों के उपरान्त गुप्तोत्तर काल में सामन्ती उत्पादन पद्धति का आधार तैयार किया।

गुप्तोत्तर काल से भारतीय समाज में परिवर्तन की पृष्ठभूमि तैयार होने लगी थी। लेकिन यह निश्चित करना कठिन है कि कब प्राचीन काल का अंत और मध्यकाल का आरम्भ हुआ। मध्यकाल के संबंध में यूरोप और एशिया में घटनाक्रम समान नहीं था। यूरोप में प्राचीन से मध्यकाल की ओर संक्रमण मुख्यतः दास प्रथा का कृषि दास प्रथा में परिवर्तन था।[7] किंतु भारत में सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन को इस दृष्टि से नहीं देखा जा सकता, क्योंकि भारत में उत्पादन न तो दास-प्रथा पर आधारित था और न ही समाज विदेशी आक्रमणकारियों से यूरोप की भाँति अभिभूत हुआ था। हालाँकि यह निश्चित है कि चौथी शताब्दी से सातवीं शताब्दी ई. के बीच भारत की राज्य व्यवस्था, अर्थव्यवस्था और उसके समाज तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में कुछ बुनियादी परिवर्तन हुए।[8] इसमें यह भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है कि परिवर्तन के इस दौर में भी कुछ तत्व प्राचीन और मध्य काल दोनों में समान रूप से विद्यमान रहे। जिस चीज ने प्राचीन भारतीय समाज को मध्य काल में रूपांतरित किया, वह भूमि-अनुदान प्रथा थी। गुप्त युग की परिस्थितियों ने भूमिदान प्रथा को प्रोत्साहन दिया और भूमिदानों ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया। भूमि अनुदान प्रथा सामंती अर्थव्यवस्था का आधार बनी, और इसी ने अन्ततः प्राचीन काल को मध्यकालीन भारत में परिवर्तित कर दिया। इस प्रथा का उद्‌भव प्राचीन समाज व्यवस्था के आर्थिक आधार पर आए गंभीर संकट से हुआ। इस समय के वर्ण विभाजित समाज में वैश्य कहलाने वाले किसान तथा शूद्र कहलाने वाले श्रमिक उत्पादन में लगे रहते थे।[9] किन्तु चौथी श. ई. तक विभिन्न वर्ण या सामाजिक वर्ग अपने-अपने धर्म यानि निर्धारित कर्त्तव्यों से विमुख हो गए, विभिन्न स्रोतों में वर्णित किए गए हैं। निम्न वर्णों के लोगों ने उच्च वर्णों का स्थान प्राप्त किया और कर देना तथा श्रम के रूप में सेवा देना बंद कर दिया। इससे वर्ण संकट की उत्पत्ति हुई। आम लोग भारी करों एवं वसूलियों के बोझ से परेशान थे, और राजा उन्हें संरक्षण देने के लिए तैयार नहीं थे।

पुराणों के तीसरी-चौथी श. में लिखे ग्रंथों में इस युग को कलियुग कहा गया है।

इस संकट से उबरने के कई उपाय किये गए। इस स्थिति के निराकरण का सर्वाधिक उपयुक्त उपाय यह था कि पुरोहितों और राज्यधिकारियों को दान-दक्षिणा तथा वेतन-पारिश्रमिक पैसे या जिंस के रूप में न दिया जाए, बल्कि भूमिदान द्वारा दिया जाए। इस प्रथा के कारण दान में दिए गए क्षेत्रों में करों की उगाही तथा शांति-व्यवस्था का दायित्व अनुभोगियों के लिए चला जाता था। इस व्यवस्था से अनुर्वर क्षेत्रों को भूमिदान में देकर तथा निर्जन क्षेत्रों में भूमिदान भोगी ब्राह्मणों को बसाकर, राज्यहित में कृषि प्रसार तथा राज्य का सुदृढ़ीकरण किया जा सकता था। भूमिदान का, पूर्वतम अभिलेखगत प्रमाण पहली सदी ई.पू. में मिलता है। प्रशासनिक अधिकारों के परिहार का सबसे पहला उदाहरण दूसरी श. ई. में गौतमी पुत्र सातकर्णि के बौद्ध भिक्षुओं को दिए गये दान में मिलता है। उन्हें दान में दी गई भूमि को 'आप्रवेश्यम्' (जिसमें राजा के सैनिकों का प्रवेश वर्जित है), 'अनावर्श्यम्' (जिसमें सरकारी अमले कोई जोर-जबरदस्ती नहीं कर सकते) तथा 'अराष्ट्रसविनयिकम्' (जनपद आरक्षियों के हस्तक्षेप से मुक्त) कहा गया है।[10] चौथी शताब्दी ई. मध्य से ब्राह्मणों को ऐसे अनुदान देने के प्रसंगों में तेजी आ जाती है, जिनमें राजस्व के सभी स्रोत ग्रहीताओं को हस्तांतरित कर दिए जाते हैं। दूसरी शताब्दी तक अनुदान पत्रों में राजा द्वारा दान-भूमि पर केवल कुछ अधिकार ही गृहीताओं को दिए गए प्रतीत हुए हैं जबकि वाकाटक राजाओं के दान पत्रों में जमीन के ऊपर तथा नीचे सभी स्रोतों से आय पर भू-स्वामी को पूर्ण स्वत्व हस्तांतरित किया गया है। गुप्तकालीन अभिलेखों में अनुदान-क्षेत्र में रहने वाले लोगों पर शासन करने के अधिकार का भी राजा द्वारा परित्याग कर दिया गया है। छठी श. के दान-पत्रों में राजा, परिवार, सम्पत्ति, व्यक्ति के विरुद्ध किए गए समस्त अपराधों के लिए दंड देने का अधिकार अनुदान भोगियों को दे देता है।

सातवीं श. ई. तक राजस्व उगाही के साथ-साथ, सामाजिक क्षेत्र में भू-स्वामी वर्ग का बोलबाला बढ़ रहा था। यह वर्ग राजा और सामान्य जन के बीच एक प्रभावशाली वर्ग के रूप में पनप चुका था। इस भू-स्वामी वर्ग में बड़ी संख्या में भूमिदान प्राप्त धर्मेतर लोग भी सम्मिलित थे। इस काल के अभिलेखों में सामंत महासामंत, मांडलिक, महामाण्डलिक, आदि शब्दों का प्रयोग यह दर्शाता है कि सामंती व्यवस्था इस युग में पूर्णरूपेण विकसित हो चुकी थी। केन्द्रीय सत्ता के ह्रास के संकेत अनेक तथ्यों से ज्ञात होते हैं। राज्य की हृदयस्थली तक में करों की वसूली का अधिकार, अनुदान भोगियों को दे दिया जाना, राजा की चलंत राजधानी (स्कन्धावार अथवा जयस्कन्धावार), गढ़ों (दुर्ग) जैसी सामरिक, प्रभुसत्तात्मक प्रतीकों पर सामंतों, बड़े-भूस्वामियों द्वारा बहुतायत से अधिकार आदि राजा की स्थिति में कमजोरी तथा प्रभुसत्ता के विकेन्द्रीकृत होने के प्रमाण हैं। इस प्रकार नई राजनीतिक प्रणाली का सूत्रपात हुआ।

कृषि की उन्नति तथा सामाजिक संघर्ष के कारण शूद्रों की स्थिति में बदलाव आया। कृषि में संलग्न कृषक पट्टेदार थे जो भू-स्वामी को फसल का एक हिस्सा अदा करते थे। कौटिल्य ने शूद्रों का उल्लेख कृषक के रूप में किया है।[11] जनजातीय इलाकों में किसान धार्मिक दान भोगियों के अधीन हो गए। इन क्षेत्रों में बंटाईदारों, काश्तकारों को विशेष निर्देश दिए जाने लगे कि वह दान-क्षेत्र का परित्याग न करें।[12] अब दान में दिए जाने वाले गाँव जनता-समृद्ध, धन-जन-सहित और सप्रतिवासी समेत कहलाने लगे।[13]

सामंती व्यवस्था में शिल्पियों को छोटे-बड़े भू-स्वामियों के साथ बाँध दिया गया। इनके भरण-पोषण के लिए फसल की कटाई के समय जिन्स के रूप में वृत्ति दी जाने लगी। शिल्पी भी कृषकों की तरह ही अनुदान भोगियों के साथ बाँध दिए गये। इससे परवश कृषक और शिल्पी दोनों की ही गतिशीलता पर दुष्प्रभाव पड़ा, तथा यह एक प्रकार से 'कृषिदास' के समकक्ष माने जा सकते हैं। आत्मनिर्भर ग्राम-अर्थव्यवस्था के विकास के क्रम में इस प्रकार के कृषक संबंधों को सामाजिक मानवविज्ञानियों ने 'जजमानी' व्यवस्था कहा है।

छठी शताब्दी से विदेश व्यापार में भारतीयों की भागीदारी लगभग नगण्य हो चुकी थी। रोम, ईरान, बैजन्तिया साम्राज्यों के साथ भारतीय रेशम का व्यापार बन्द हो चुका था। पश्चिमी देशों के साथ भारतीय व्यापार पर अरबों ने लगभग एकाधिपत्य स्थापित कर लिया था।[14] छठी शताब्दी के बाद प्रायः तीन सौ वर्षों तक व्यापार की अवनति की पुष्टि इस बात से होती है कि इस दौर में, स्वर्ण मुद्राएं लगभग नगण्य हो जाती हैं। व्यापार के ह्रास के कारण नगरों की अर्थव्यवस्था चरमरा गई। अनेक पुराने व्यापारिक

नगर नष्ट हो गए।[15] सीमित बाजार होने के कारण शिल्पी एवं व्यापारी गाँवों में जा बसे और खेती बाड़ी में लग गए। **पूर्व मध्यकालीन** कृषि संरचना में उत्पादन, वितरण तथा उपभोग की एक विशिष्ट पद्धति से प्रभावित थे जिसे सामंतवादी व्यवस्था कहा जा सकता है जो मुख्य रूप से कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था में प्रकट होता है जिसमें एक वर्ग भूमिपतियों का होता है तथा दूसरा पराधीन किसानों का। इस व्यवस्था के अधीन भूमिपति सामाजिक, धार्मिक या राजनैतिक उपायों से, जिन्हें गैर-आर्थिक उपाय कहा जाता है, अतिरिक्त उत्पादन को हड़प लेते हैं। यह व्यवस्था सोपानबद्ध सम्पत्ति के स्वामित्व की जटिल संरचना को जन्म देती है जिसके निम्नतम स्तर पर कृषिदास तथा कृषक होते हैं। 'सोपानबद्ध सम्पत्ति' तथा 'विभाजित प्रभुसत्ता' विभिन्न वर्गों के परस्पर संबंधों का स्वरूप निर्धारित करती है। प्रभु-कृषक संबंध इस व्यवस्था का मर्म है और भू-सम्पदा के स्वामी, नियंत्रक या भोक्ता के द्वारा अपने काम के लिए उस सम्पदा का उपयोग इस प्रणाली का तत्व है।1[6]

सामंतवादी समाज में भू-स्वामियों के नियंत्रक वर्ग तथा किसानों के परवश वर्ग के मध्य विस्तृत सेवाओं एवं उत्पादन नियंत्रण तथा उपभोग की ऐसी व्यवस्था थी जिसमें अधिकारिता का नीचे से ऊपर आरोही क्रम तथा उपभोग में ऊपर से नीचे की ओर अवरोही क्रम था। वर्ग विभाजित प्राक-पूँजीवादी समाजों में भूमि तथा कृषि-उत्पादन का महत्व सबसे अधिक होता है। किन्तु भूमि के वितरण तथा कृषि-उत्पादों के अधिग्रहण की विशिष्ट परिस्थितियाँ अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग प्रकार की होती हैं। अलग-अलग क्षेत्रों के किसान अलग-अलग सीमा तक भू-स्वामियों के अधीन हो सकते हैं। कृषि, शिल्पों और जिन्सों के उत्पादन तथा वाणिज्य व्यापार में प्रगति और शहरीकरण के बढ़ने से कृषक वर्ग के अंदर फर्क पैदा हो सकते थे। जो किसान अपने गुजारे से कुछ अधिक पैदा कर सकते थे वे भू-स्वामियों को श्रम के रूप में दी जाने वाली सेवाओं के एवज में नकद जमा करके अपनी आजादी खरीद सकते थे। परन्तु इसके लिए राज्य का अनुमोदन तथा एक विशेष बाजार अर्थव्यवस्था का सुलभ होना आवश्यक था।[17] कृषि दासता सामंतवाद का पर्याय नहीं है, यह तो पराधीनता का एक रूप था, किसान जमीन से बँधा रहता था और उसे अपने प्रभु के खेत में काम करना पड़ता था। साथ ही जब किसान को राज्य और भू-स्वामी दोनों के प्रति निष्ठा रखनी है तो यह दोहरी पराधीनता का मामला बन जाता है।

पूर्वमध्यकालीन समाज के सन्दर्भ में यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है, कि क्या किसानों को उत्पादन की स्वतन्त्रता थी, क्योंकि उत्पादन के साधनों पर उसका पूर्ण नियंत्रण FkA[18] कृषक-भू-स्वामी संबंध की प्रक्रिया में कतिपय अन्य प्रश्न भी उठते हैं, जैसे- उत्पादन के साधनों के स्वामित्व का क्या महत्त्व है? क्या उसमें उत्पादन से होने वाले लाभ के उपभोग का समावेश नहीं है? उत्पादन से होने वाली आय का कितना हिस्सा और कैसे भू-स्वामी तक हस्तांतरित होता है? भू-स्वामी को अधिशोषण की शक्ति का अधिकार उत्पादन साधनों की वजह से अथवा वैचारिक कारणों से है। उत्पादन के साधनों पर किसका प्रभावी नियंत्रण था? इसको समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि भूमि के एक ही टुकड़े पर किसान के अधिकार निम्न श्रेणी के तथा भूस्वामी के अधिकार उच्च श्रेणी के हो सकते हैं। कर-लगान, बैठ-बेगार, बराबर मौके पर मौजूद अनुदान भोगियों का सतत् हस्तक्षेप- ये सभी बातें किसान के पास, श्रम, गाय-बैल, खेती के यन्त्र-औजार होते हुए भी, किसान के नियंत्रण को कितना कारगर होने देंगी?किसान भरण-पोषण तो कर सकता है परन्तु अपने श्रम का पूरा उपभोग कर उत्पादन के अन्य साधनों पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित नहीं कर सकता जबकि भू-स्वामी किसानों से विभिन्न प्रकार के लगानों एवं करों की माँग करते थे, उनसे तरह-तरह के करों की वसूली करते थे। राज्य करों की माँग इसलिए करता है क्योंकि वह भू-स्वामी है। पूर्वमध्य काल में राजा जमीन का मालिक है।[19] अब सनद के द्वारा वह यह राजाधिकार अनुदान भोगी को सौंप देता है और उसके आधार पर अनुदान भोक्ता करों की माँग करता था। राजा 'भूमिद' अर्थात् भूमि का देने वाला है।[20] भूमिदान के पुण्य का लाभार्थी केवल भू-स्वामी ही हो सकता है।[21]

आरम्भ के भू-दान पत्रों में उपभोक्ता को केवल सामान्य अधिकार ही हस्तांतरित किए गए हैं, परन्तु बाद के भूमिदान सनदों में समस्त संभावित आय का अधिकारी दानभोगी को बना दिया गया है। उदाहरणार्थ, दानभोगी सभी प्रकार के करों, हर प्रकार की आय, समस्त आपात करों और इन सबके अतिरिक्त अपरिभाषित 'सर्व के उपभोग का अधिकारी' बन जाना है।[22] इसी प्रकार वह उचित और अनुचित कर[23] नियत और अनियत कर[24]

वसूल करने का हकदार है। भूमिदान भोगी को दान में प्राप्त भूमि में पहले से बसे हुए काश्तकारों को हटाकर नए काश्तकार बसाने का अधिकार था। वह दान में मिली भूमि दूसरे को भी दे सकता था।[25] चोल काल में दान भोगी को नए प्रकार के कर लगाने तथा पूर्व से चले आ रहे करों की दरों में परिवर्तन करने का अधिकार था। इससे स्पष्ट होता है कि जमीन पर वास्तविक रूप में कृषक स्थापित था, परन्तु भू-स्वामी का अधिकार किसान से श्रेष्ठ था। **सातवीं सदी** के बाद के अधिकतर अनुदानों में प्रदत्त गाँव के अन्तर्गत सभी प्रकार के संसाधनों जैसे निम्नस्थ भूमि, उर्वर भूमि, जलाशय, सभी आकार के वृक्ष और झाड़ियाँ, पगडंडियाँ और चरागाह स्पष्ट रूप से शामिल किए गए हैं। इन शर्तों के कारण कृषक को सुगमता से प्राप्त सहायक संसाधन पर भी अधिकार समाप्त हो गया, और उसकी स्थिति अधिक दयनीय हो गई। दसवीं शताब्दी ई. के बाद नकदी फसलों का महत्त्व बढ़ गया और सामुदायिक संसाधनों को भी सामान्य कृषक के उपभोग की हद के बाहर कर दिया गया। दान भोगियों को चरागाहों पर अधिकार दे दिए जाने से किसानों की कृषि उत्पादन की स्वतंत्रता में भारी कमी आई। किसानों को भोक्ताओं के आदेश का पालन करने के लिए अधिकांश स्रोतों में कहा गया है।[26] दान भोगी के यह अधिकार अत्यन्त व्यापक थे तथा यह उत्पादन के साधनों तथा प्रक्रियाओं को भी समाहित करते थे। दान भोगी को ऐसा निरंकुश अधिकार किसान को एक तरह से उसके हुक्म का गुलाम बना देता है।

भू-स्वामित्व के प्रश्न पर राजा को नैसर्गिक रूप में राज्य की समस्त भूमि का स्वामी माना गया है। भूमि पर कब्जा तथा वैधानिक रूप में मालिकाना हक का प्रमाण आवश्यक माना गया है। यू. एन. घोषाल[27] ने समस्त भूमि पर राज्य के मालिकाना हक को, के. पी. जायसवाल[28] ने भूमि पर व्यक्तिगत रूप में उसका हक माना है जो उसको तैयार करता है अथवा उपभोग करता है। पी. वी. काणे[29] ने राजा को सिद्धान्ततः समस्त भूमि का स्वामी माना है, परन्तु जिस भू-खण्ड पर कोई व्यक्ति अथवा समुदाय लम्बे समय से काबिज हो तथा उसका विकास, उपभोग करने के प्रमाण हो, तो मालिकाना हक उन्हीं का रहेगा। राजा को केवल उस भूमि से सामान्य भू-राजस्व का निर्धारण एवं वसूली का अधिकार होता था।[30] बी. एन. एस. यादव के कात्यायन स्मृति की दो सूक्तों, जिनका विस्तृत उदाहरण लक्ष्मीधर के राजधर्मकाण्ड में वर्णित है, के आधार पर भूमि पर राज्य एवं व्यक्ति दोनों का समवर्ती अधिकार **ekuk gS**[31] आठवीं शताब्दी ई. में रचित नारद स्मृति पर असहाय की टीका में राज्य की समस्त भूमि को 'नरेन्द्रधन' अर्थात् राजा का निजी एवं पूर्ण स्वामित्व कहा गया है।[32] ललनजी गोपाल[33] जमीन के किसान द्वारा व्यक्तिगत स्वामित्व के सिद्धांत का समर्थन करते हैं। नारद-स्मृति के एक श्लोक को व्यवहारकाण्ड[34] तथा विवादरत्नाकर[35] में उद्धृत करते हुए राजा को तीन पीढ़ियों से अधिक लम्बे समय से निजी भू-खण्ड पर मालिकाना हक एवं कब्जा रखते हुए भी, भू-स्वामित्व के अधिकार से बेदखल करने के लिए अधिकृत किया है। यह दर्शाता है कि भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व को राज्य द्वारा निर्मूल किया जा सकता था। राजा को अधिकार था कि वह किसी भी व्यक्तिगत, सामूहिक अथवा सामुदायिक भू-स्वामित्व के दावे को खारिज कर सकता था। परन्तु राजा को किसानों को लम्बे समय से चले आ रहे भू-स्वामित्व एवं उनके घरों से बेदखल तभी करना चाहिये जब इसके अतिरिक्त कोई अन्य चारा न हो। राजतरंगिणी[36] में काश्मीर के शासक जयपीड़ ने अपने लालच के वशीभूत होकर लगातार तीन वर्षों तक किसानों की समस्त पैदावार, यहाँ तक कि किसान के हिस्सा को भी हस्तगत कर लिया।

पूर्वमध्यकालीन भारत में एक से अधिक स्वामियों का एक ही भू-खण्ड पर स्वामित्व होना, यह दर्शाता है कि भूमि पर अलग-अलग प्रकार के स्वामित्व एक साथ ही आरोपित किए जा सकते थे। याज्ञवल्क्य, बृहस्पति तथा व्यास की स्मृतियाँ एक ही भूमिखण्ड में भू-अधिकारों के चार-चार सोपानबद्ध स्तरों का उल्लेख करती हैं। उदाहरण के लिए हमें एक ही स्थल पर महीपति, क्षेत्र स्वामिन, कर्षक, उपकर्षक या पट्टेदार का उल्लेख मिलता है। स्वामित्व और स्वत्व का अंतर भी स्पष्ट है, स्वामित्व भूदान-भोगी था जबकि कर्षक या क्षेत्रक लगान देने वाला किसान। गुप्तकाल में भी इसके प्रमाण हैं कि भूमि पर सोपानबद्ध अधिकारों और हितों का समावेश होता था। खरीद-बिक्री के सौदों में केवल राजा के ही नहीं, वरन् उन स्थानीय अधिकारियों के हितों का भी उल्लेख हुआ है, जिनमें गाँव के बड़े लोगों का बोलबाला होता था। इसी प्रकार इनमें दानभोगियों तथा जमीन के कब्जेदारों के अधिकारों का भी उल्लेख है।[37] जमीन पर सोपानबद्ध नियंत्रण का उदय उपसामंतीकरण की व्यापक प्रकृति के

कारण विशेष रूप से आठवीं सदी में हुआ।[38] यह बात उत्तर भारत और दक्षिण भारत दोनों में देखने को मिलती है। चोलों के अधीन एक दौर में नौ भू-स्वामियों के पाँच-पाँच स्तर होते थे। उनमें शीर्ष पर राजा होता था। उसके बाद दोन-भोगी का स्थान था, जिसके नीचे दखलदार आता था। दखलदार जमीन को पट्टे पर उप-दखलदार को सौंप देता था, जो उसमें काश्तकार रैयत से खेती करवाता था।[39] उपसामंतीकरण के कारण ऊपर से नीचे तक श्रेणीबद्ध भू-स्वामियों के वर्ग का जन्म हुआ, जो जमीन को जोतने बोने वाले असली किसान नहीं थे। यह प्रक्रिया मार्क्स के इस कथन से मेल खाती है कि सामंती उत्पादन की विशेषता अधिक से अधिक उपसामंतों के बीच भू-स्वामित्व का विभाजन है।[40]

कृषि की जमीन के असमान वितरण ने कृषक वर्ग में आंतरिक असमानता को जन्म दिया। छोटे-बड़े अनेक प्रकार के काश्तकारों की कृषक वर्ग में विद्यमानता के संकेत मिलते हैं। भू-स्वामियों के लिए प्रयुक्त किए गए सम्बोधन शब्दों से ही उनके स्तर एवं रुतबे का आभास होता है, जो निश्चित रूप से उनके भू-स्वामित्व दर्जे के समानुपाती था। विभिन्न स्रोतों में ब्राह्मण, महन्तर, महत्तम, उत्तम, क्षेत्र-स्वामी, कुटुम्बिन, क्षेत्रेकर, कर्षक, और कारुक आदि का प्रयोग हुआ है। बड़े भू-स्वामी जो अपनी पूरी जायदाद में स्वयं खेती नहीं कर सकते थे, ऐसी स्थिति में वह अपनी कुछ जमीन बटाईदार कृषकों से कृषि कराते थे। भूमिदान पत्रों में हलिक या हलवाहा शब्द का उल्लेख मिलता है।[41] याज्ञवल्क्य के अनुसार कर्षक क्षेत्र स्वामी अथवा भू-स्वामी की सेवा में नियत मात्र एक काश्तकार था।[42] बंटाईदारों को आर्धिक, अर्द्धसीरिक या अर्द्धसीरिन कहा गया है। साहित्यिक स्रोतों में कीनाश[43] शब्द का आयोग हुआ है। स्पष्ट है कि इन शब्दों से भूमि पर नियंत्रण का कोई बोध नहीं होता। स्वयं किसान शब्द 'कृशान' से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है हल चलाने वाला।[44] मध्यकालीन ग्रंथों में 'कृषिक' या काश्तकार शब्द का प्रयोग बहुतायत से हुआ है। वृहत्संहिता में लागुलोपजीविनः शब्द का उल्लेख है[45] जिसका अर्थ होता है हल के वाहन से जीविकोपार्जन करने वाला। किसान के लिए प्रयुक्त शब्दों में यह स्पष्ट दिखलाई देता है कि एक तो वह किसान है जो केवल कृषि-उत्पादन में संलग्न रहते थे। दूसरे वह भू-स्वामी किसान है जो उत्पादन का केवल उपभोग करते थे। अतः यह माना जा सकता है कि उत्पादन में लगे किसानों का अपने उत्पादन स्रोतों पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित नहीं था। विभिन्न प्रकार के स्वामित्वों का एक ही भू-खण्ड पर प्रचलन सबसे ऊपर राजा को vfÌ f"Br djrkgSjkt kdsfy, iz.kr foflHkUu 'kCn[46] उसके भूमि पर सर्वोच्च स्वामित्व को स्थापित करते हैं।

पूर्वमध्यकालीन भारतीय समाज मुख्यतः सामंती उत्पादन पद्धति पर आधारित था। इसका आधार था उत्पादन के साधनों से किसान का नियंत्रण कमजोर होना या लगगग समाप्त हो जाना। उत्पादन के वह साधन जो अब तक किसानों के नियंत्रण में थे उनपर बिचौलियों के अधिकार थोप दिए जाने से जटिलता पैदा हो गई। उत्पादन-संबंधों में कुछ व्यापक परिवर्तनों की दिशा समस्त मध्यकाल में, उत्तरोत्तर रूप में किसान एवं राजा को कमजोर करती रहीं। सिद्धान्ततः भू-स्वामित्व के मामले में एक तो स्वयं स्रोत था, तथा दूसरा व्यावहारिक रूप में ऐसा भू-स्वामी जो न केवल भूमि पर काबिज था वरन उससे उत्पादन भी करता था। तथापि, राजा द्वारा थोपे गए (आरोपित) भू-स्वामित्व (मध्य में स्थित बिचौलिए) एक तरफ किसानों के अधिकारों का हरण कर रहे थे तथा दूसरी ओर राजा द्वारा प्रदत्त भूमिदान का राज्य के पक्ष के विपरीत दुरुपयोग। अनुदान क्षेत्र इस प्रकार केवल दानभोगियों की निजी जागीरें बनकर रह गए।

वाकाटक काल में ब्राह्मणों एवं मंदिरों को बड़े-बड़े भूमिदान दिए जाने का उल्लेख अभिलेखों में मिलता है।[47] प्रवरसेन ने चार सौ निर्वतन जमीन एक ही ब्राह्मण को दान में दी। फिर एक देवता को भी इतनी ही जमीन दी।[48] उस काल में एक निवर्तन भूमि एक सामान्य परिवार के भरण-पोषण के लिए काफी होती थी। इतने बड़े भू-खण्डों में यह ब्राह्मण स्वयं खेती नहीं कर सकते थे। इस प्रकार के भूमिदानों ने भोक्ता का उत्पादन साधनों पर सीधे नियंत्रण को स्थापित किया। उत्पादन के साधनों पर भोक्ता का सामान्य नियंत्रण स्थापित होने का बड़ा कारण यह था कि उसे भूमि या गाँव के साथ अनुदान क्षेत्र में सामंती अधिकार भी दे दिए जाते थे। दानपत्र में भोक्ता को परिवार, सम्पत्ति, व्यक्ति आदि के विरुद्ध किए गए दसों अपराधों के लिए दण्ड देने[49] और साथ ही दीवानी मुकदमों की सुनवाई करने[50] के अधिकार भी प्रदान कर दिए जाते थे। राज्याधिकारियों के लिए उनके क्षेत्र में प्रवेश करना[51] और उनके कार्य-प्रकार्य में किसी प्रकार का विघ्न डालना[52] वर्जित था। गैर आर्थिक प्रकार के इन राजनैतिक,

न्यायिक अधिकारों से भोक्ता को किसानों का शोषण करने में मदद मिलती थी। अक्सर भोक्ता को अनुदान गाँवों का सभी प्रकार से उपभोग करने का अधिकार दिया जाता था। जैसा कि 'सर्वोपाय संयुक्तम्'[53] पद से ध्वनित होता है। एक अन्य पद के अनुसार 'संभोग्या यावदिच्छा क्रियाफलम्'[54] से स्पष्ट होता है कि भू-स्वामी इच्छा के अनुसार जब और जैसे चाहे उत्पादन प्रक्रिया में हस्तक्षेप कर सकता था। कुछ प्रसंगों में गाँव के समस्त संसाधनों के उपभोग का अधिकार 'स्वयंभोग समेत'[55] दे दिया जाता था।

सामंती उत्पादन संबंधों को संरक्षित करने के लिए विभिन्न वैचारिक उपायों को अपनाया गया। राजा के उत्तराधिकारियों तथा शक्ति सम्पन्न तत्त्वों को दान की व्यवस्थाओं का पालन करने का निर्देश देने[56] के साथ ही दान में गड़बड़ी पैदा करने का प्रयत्न करने वालों को दण्ड का भय दिखलाया गया है।[57] दानपत्रों में बार-बार जीवन की अनिश्चितता की ओर संकेत किया गया है। लक्ष्मी की चंचलता का दान-पत्रों में उल्लेख बदलते उत्पादन संबंधों की वास्तविकता का सांकेतिक निरूपण है। एक विशिष्ट प्रकार की विचारधारा का प्रवर्तन इसलिए किया गया ताकि आरोपित उत्पादन संबंध और वितरण का नियमन भू-स्वामियों एवं सामंतों के पक्ष में किया जा सके। भू-स्वामी के स्वत्व की उत्तरोत्तर रूप से होने वाली सुदृढ़ता ने कालांतर में उन्हें इतना सशक्त किया कि भूमिदान को यह भोक्ता अपनी व्यक्तिगत जागीर समझने लगे।[58] दानपत्रों के संरक्षण एवं उन्हें दीर्घकाल तक सुपाठ्य रखने के लिए जिन क्षेत्रों में इनको भोजपत्र अथवा वल्कल अन्यथा ताड़पत्र पर जारी किया गया था, उनको ताम्र-पत्र के रूप में परिणत किया गया।[59] दानपत्रों में वर्णित भू-खण्डों के सीमांकन एवं सुस्पष्ट दस्तावेजीकरण का उल्लेख विभिन्न क्षेत्रों में मिलता है। मध्यकालीन विधिवेत्ताओं ने स्वत्वाधिकारों के जटिल विन्यास से पार पाने के लिए भू-स्वामित्व की नवीन परिभाषाएं गढ़ी। उदाहरण के तौर पर विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा में संपत्ति की लोकभिस्वीकृति के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया।[60] यह बदलते हुए उत्पादन संबंधों के आलोक में परस्पर विपरीत स्वत्व के दावों को समायोजित करने का सुगम उपाय सिद्ध हुआ, और जीमूतवाहन के दायभाग शास्त्रीय सिद्धान्त की तुलना में अधिक लोकप्रिय हुआ।

पूर्व मध्यकालीन सामंती उत्पादन पद्धति की विद्यमानता को कुछ विद्वान नकारते हैं, उनका कहना है कि दानभोगियों को केवल अधिशेष की उगाही से मतलब था, उत्पादन से नहीं। लेकिन अधिशेष की उगाही और उसके वितरण के प्रश्न को उत्पादन पद्धति से अलग करके नहीं देखा जा सकता। सामंती उत्पादन पद्धति में श्रम और नकद अथवा जिंसों में चुकाए जाने वाले लगान के रूप में प्रभु का भाग होगा और साथ ही किसान और प्रभु के बीच वितरण की ऐसी प्रणाली होगी जिसमें किसान आश्रित होगा और प्रभु उसका संरक्षक। किसान की जमीन में अनुदान भोगी का अपर-अधिकार अधिशेष की उगाही का आधार बन जाता है। गुप्त काल से पूर्व अधिशेष की उगाही राज्य के अमलों द्वारा करों के रूप में और पुरोहित-पुजारियों द्वारा दान-दक्षिणा के रूप में की जाती थी। बुद्ध के काल में कुछ भू-स्वामी थे, जो दासों या भाड़े के मजदूरों की सहायता से अपनी खेती-बारी सँभालते थे। कौटिलीय अर्थशास्त्र से बड़े राजकीय फार्मों की भी जानकारी मिलती हैं। लेकिन राजा का नियंत्रण छोटे इलाकों में ही कारगर हो सकता था। देश के बसे हुए इलाकों में मोटे तौर पर उत्पादन की स्वतंत्र कृषक इकाइयों की ही आधानता थी, जिन्हें एक सीमा तक बाजार व्यवस्था की सुविधा भी सुलभ थी। किंतु बाजार अर्थव्यवस्था इतनी सुदृढ़ नहीं थी कि सम्पन्न भू-स्वामी अपनी पूँजी का निवेश नए उद्यमों में करके लाभ कमा सकता, जिससे अंततः उसके कदम पूँजीवादी पथ पर आगे बढ़ते। किसान अनाज की बिक्री नकद कर सकता था और जरूरत की छोटी-छोटी चीजें स्वयं खरीद सकता था। प्राक-सामंती युग में पुरोहित, योद्धा और प्रशासक अपनी सेवाओं के बदले में सामान्यतः करों और दान-दक्षिणा के रूप में अधिशेष प्राप्त करने के हकदार थे, लेकिन इनमें से काफी कुछ अदायगियाँ राज्य द्वारा नकद की जाती थी। उत्पादन की कृषक इकाइयों का उदय सर्वप्रथम मौर्योत्तर काल में नहीं, बल्कि बुद्ध के काल में gqvkA[61] बुद्धकालीन कृषि-अर्थव्यवस्था के विकास के साथ-साथ कृषक समूह या आंतरिक विभाजन अधिक स्पष्ट हो गया।[62] ग्राम्य समुदाय में भू-स्वामियों, जिनके अस्तित्व पर श्रीमती राईज डेविड्स बल देती हैं।[63] जातकों में दासों एवं भाड़े के मजदूरों की मदद से जोते जाने वाले 100 करीषा की जागीरों, 80 करोड़ सम्पत्ति वाले भूपतियों तथा धनी ब्राह्मण भू-स्वामियों के साथ-साथ बड़े मवेशी समूहों के मालिकों का उल्लेख मिलता है।[64] प्रारंभिक पालि ग्रंथों में गृहपतियों का वर्णन है जो दासों और भाड़े के मजदूरों की मदद से खेती करवाते थे। वे गहपति सूदखोरी भी करते

थे जिससे कृषकों के दूसरे समूह अर्थात् कूस्सक[65] पर नियंत्रण बनाये रखने में यह सक्षम हो चुके थे। अतः साधारण किसान पर स्थानीय उच्च वर्ग की पकड़ बढ़ती चली गई। पालि ग्रन्थों में वर्णित गहपतियों में अनेक स्वयं हल जोतने, बीज बोने एवं फसल काटने[66] का कार्य स्वयं करते थे, अर्थात् वह कृषि कर्म स्वयं करने वाले किसान थे। पालि ग्रन्थों में खत्तियों, ब्राह्मणों एवं गहपतियों को महाशाल भी कहा गया है[67] क्योंकि इस चरण में कुछ राजकुमार, पुरोहित एवं गहपति बड़े भू-भागों के स्वामी बन चुके थे।[68] ये धनी गहपति कृषि-अर्थव्यवस्था में ऊपरी भू-स्वामी वर्ग के रूप में स्थापित हो चुके थे।[69] यह वर्ग दास-कम्मकारों के श्रम का उपयोग करते थे। श्रमजीवी वर्ग का विकास उपरोक्त उत्पादन पद्धति की स्वाभाविक परिणति था।[70] यही कारण है कि बौद्ध ग्रन्थों में राजतन्त्रों की कृषि अर्थव्यवस्थाओं के तहत गहपतियों और दास-कम्मकारों तथा गणतंत्रों में खत्तिय और दास-कम्मकारों के परस्पर विरोधों को रेखांकित किया है।[71] इस काल में बड़े भू-स्वामियों की उपस्थिति के बावजूद उत्पादन पद्धति में सामान्य कृषक परिवार उत्पादन की इकाई थे जिन्हें अपने उत्पादन स्रोतों पर प्रभावी नियंत्रण प्राप्त था। यह कृषक परिवार उत्पादन इकाईयाँ गुप्त काल तक सुचारु रूप से काम कर रही थीं।

पूर्वमध्यकाल में कृषिदास प्रथा की अनुपस्थिति, आंशिक उपस्थिति अथवा पूर्ण उपस्थिति की गवेषणा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बिन्दु रहा है। यूरोप के प्रकार की कृषिदासता भारत में कभी नहीं थी। इसको ही विद्वानों ने किसानों की पूर्ण परवशता तथा चरम शोषण की पराकाष्ठा एवं सामंतवाद का विशुद्ध स्वरूप माना है। परन्तु आर. एस. शर्मा ने माना है कि विभिन्न प्रकार की बेगार, तथा केवल भरण पोषण के निमित्त भू-स्वामी से कुछ जमीन प्राप्त कर उसके कृषि कार्यों के लिए श्रम देना आदि भी एक प्रकार से कृषि दासता ही है। दक्षिण भारतीय अभिलेखों में 'बेद्धि' शब्द बंधुआ मजदूर का पर्याय है। बेगार श्रम के माध्यम से स्वामी द्वारा विभिन्न प्रकार के उत्पादन कराया जाना भी एक प्रकार से कृषि दासता के समान है।[72] मध्य गंगा मैदानी क्षेत्र में पड़ने वाले मुंगेर, भागलपुर, सहरसा और नालंदा जिलों में प्राप्त पाल दानपत्रों में 'सर्वपीड़ापरिहृत' शब्द का उल्लेख हुआ है। यह दर्शाता है कि किसानों को अनेक प्रकार के बेगार करने पड़ते थे।[73] जब कोई गाँव दान में दिया जाता था तो दानभोगी राज्य के हस्तक्षेप से सर्वथा मुक्त रहकर इन तमाम सुविधाओं का उपभोग करने का अधिकारी बन जाता था। 'कृषिदासता' का एक अन्य स्वरूप किसानों को जमीन के साथ नत्थी कर देना (बाँध देना) था। इस प्रकार के अनेक उदाहरण अभिलेखों में मध्यप्रदेश, पूर्वी भारत, चम्बा और राजस्थान से मिलते हैं, जहाँ कई दानपत्रों में भोगियों की भूमि के साथ वहाँ के कृषक, शिल्पी यहाँ तक कि वणिक भी हस्तांतरत कर दिए गये हैं।[74] कृषि दासता की बेगार के माध्यम से एक अन्य प्रकार भी देखने को मिलती है। इसमें स्थानीय सामंत अथवा राज्य द्वारा सड़कों, किलों आदि के निर्माण में बलपूर्वक बेगार का कार्य स्थानीय किसानों से लिया जाता था। ऐसे दृष्टांतों के अभिलेखिक साक्ष्य कम ही मिलते हैं परन्तु यह एक शास्वत सत्य की तरह था। भू-स्वामी अपनी तरह-तरह की जरूरतों, भोग-विलास के साधनों आदि की पूर्ति कृषकों-शिल्पियों एवं अन्य श्रमिकों से बेगार के रूप में पूरी करते थे।

कलियुग संकट के निवारण के लिए समकालीन धर्मशास्त्रों द्वारा उपाय सुझाये गए। एक था दण्ड का प्रयोग तथा दूसरा था वर्णाश्रम धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा। पूर्वमध्यकालीन भूमिदान अभिलेखों में नवीन व्यवस्था के विरोधी अथवा उल्लंघन करने वाले को दैवीय प्रकोप, नारकीय दण्ड आदि का भय दिखलाया गया है। राजाओं के लिए सर्वोत्कृष्ट कर्त्तव्य वर्णाश्रम धर्म का अनुपालन हो गया। परन्तु यह उपाय भी कालान्तर में कारगर सिद्ध नहीं हुआ, करों की उगाही कठिन हो गई। इसलिए राज्य को चलाना और राज्य कर्मचारियों, सैनिकों और पुरोहितों को नकद वेतन देना असम्भव हो गया। इस राज्य संकट के निदान स्वरूप भूमिदान की प्रथा का व्यापक चलन आरंभ हुआ। भूमिदान की प्रथा के फलस्वरूप कृषि प्रसार के साथ-साथ कृषि उत्पादन को नवीन तकनीकों के प्रयोग के माध्यम से, जिसमें सिंचाई एवं उर्वरकों की नवीन प्रविधियों का विकास, फसल-चक्र, मवेशी पालन आदि भी सम्मिलित थे, तेजी से बढ़ाने के सभी उपाय किये गए। अर्थव्यवस्था का रुझान नगरोन्मुखी न होकर ग्रामोन्मुखी हो चला था। राज्य द्वारा इन सभी परिवर्तनों को संभालना तथा शांति एवं सुव्यवस्था बनाए रखना सुगम नहीं रह गया था। अतः राज्य द्वारा नागरिक एवं न्यायिक प्रशासन स्थानीय स्तर पर उन महत्त्वपूर्ण लोगों को हस्तांतरित कर दिया गया। इस प्राइवेट सरकार के स्थानीय एजेन्ट भूमिदान प्राप्त-भोक्ता थे। यह भोक्ता छोटे परवश किसानों, भूमिहीन मजदूरों,

शिल्पियों, छोटे व्यवसाइयों, व्यापारियों आदि के शीर्ष पर काबिज हो गए क्योंकि यह सभी राज्य द्वारा बाध्य किए गए स्थानीय भू-स्वामी की आज्ञापालन के लिए तथा राज्य ने एक प्रकार से जमीन के टुकड़े के साथ ही इनको आबद्ध मानकर भू-स्वामी को हस्तांतरित कर दिया। बड़े भू-स्वामियों को प्रभुसत्ता का हस्तांतरण पूर्णरूपेण व्यावहारिक रूप में कर दिया गया। यह भू-स्वामी प्रभुसत्ता का उपभोग शक्ति के बल पर ही कर सकते थे, अतः राज्य द्वारा इन्हें सामर्थ्यानुसार राज्य बल रखने तथा समय आने पर राजा को सैन्य सहायता उपलब्ध कराने का दायित्व भी सौंप दिया गया। इस प्रकार सामंती समाज में कृषि-उत्पादन प्रणाली, कृषक संरचना तथा अधिशेष के वितरण में युगान्तरकारी परिवर्तन हुए।

सन्दर्भ

1. मार्क्स, कार्ल, *'ग्रन्डरिसे, इंट्रोडक्शन'*, बर्लिन, 1953, पृ. 104.
2. हाब्सबाम, ई. जे. (संपा.), *'प्री-कैपिटेलिस्ट इकोनोमिक फोरमेशन्स'*, लण्डन, पृ. 121.
3. एण्डरसन, पैरी, *'इन दी ट्रेक्स ऑफ हिस्टोरिकल मैटिरियोलिज्म'*, लण्डन, 1983, पृ. 141.
4. गुरुक्कल, राजन, *'सोशल फॉरमेशन्स ऑफ अर्ली साउथ इंडिया'*, न्यू दिल्ली, 2010, पृ.. 21.
5. वही, पृ. 2 और 3.
6. हिन्डेस, बैरी एण्ड पॉल क्यू. ह्रिस्ट, *'प्री-कैमिटेलिस्ट मोड ऑफ प्रोडक्शन'*, लण्डन, 1977, पृ. 10-11.
7. एण्डरसन, पैरी, *'पैसेज फ्रॉम एण्टिक्विटी टू फ्यूडेलिज्म'*, लण्डन, 1971, पृ. 181.
8. शर्मा, आर. एस., *'पूर्व मध्यकालीन भारत का सामंती समाज और संस्कृति'*, राजकमल, नई दिल्ली, 1996, पृ. 186.
9. शर्मा, आर. एस., *'शूद्राज इन एंशियण्ट इंडिया'*, (द्वितीय संस्करण), नई दिल्ली, 1983, पृ. 233-391.
10. सरकार, डी. सी., *'सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स बेयरिंग ऑन इंडियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन'*, (दूसरा संस्करण), कलकत्ता विश्वविद्यालय, पृ. 198-1991.
11. अर्थशास्त्र, अधि. II, में शूद्र-कर्षक का उल्लेख किया गया है।
12. शर्मा, रामशरण, *'इंडियन फ्युडेलिज्म'*, पृ. 54-56.
13. वही, अध्याय-81.
14. बरदराजन, लतिका, *'इंडियन पार्टिसिपेशन इन ट्रेड ऑफ द सदर्न सीज'*, आर. एस. शर्मा (पूर्व मध्यकालीन भारत का सामंती समाज, पृ. 25 पर देखें)।
15. शर्मा, आर. एस., *'अर्बन डिके इन इंडिया'*, नई दिल्ली, पृ. 51.
16. शर्मा, रामशरण, पूर्वोक्त, पृ. 65.
17. वही, पृ. 661.
18. मुखिया, हरबंस, *'वाज देयर फ्युडेलिज्म इन इंडियन हिस्ट्री'*, दी जर्नल ऑफ पीजेण्ट स्टडीज, अंक 3, अप्रैल, 1981, पृ. 273-310.
19. कात्यायन स्मृति में राजा को 'भू-स्वामी' कहा गया है, राज धर्मकाण्ड, पृ. 10.
20. शर्मा, रामशरण, *'फ्राम गोपति टू भू-पति'*, (राजा की बदलती स्थिति की समीक्षा), स्टडीज इन हिस्ट्री, II (2), 1980, पृ. 6-8.
21. सरकार, डी. सी., *'सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स'*, भाग- III, नं0 49, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1965.
22. एपिग्राफिक्स इण्डिका, VI, नं0 5, पंक्ति 14.
23. शर्मा, रामशरण, इंडियन फ्युडेलिज्म, पृ. 98-100.
24. एपिग्राफिक्स इण्डिका, XII, नं0 36, पंक्ति 12.
25. तिरुमलै, आर., *'लैण्ड ग्रांण्ट्स एण्ड एग्रेरियन रिलेशन्स इन चोल एण्ड पांण्ड्य टाईम्स'*, मद्रास वि.वि., 1987, पृ. 31.
26. वही, पृ. 31.
27. घोषाल, यू. एन., *'दी एग्रेरियन सिस्टम इन एंशिएण्ट इंडिया'*, कलकत्ता, 1973, पृ. 126.
28. जायसवाल, के. पी., *'हिन्दू पॉलिटी'*, बेंगलोर, 1978, पृ. 1731.
29. काणे, पी. वी., हिन्दू धर्मशास्त्र, II, पृ. 868.
30. कार, सुनन्दा, *'एग्रेरियन सिस्टम इन नार्दन इंडिया'*, बॉम्बे, 1990, पृ. 91.
31. यादव, बी. एन. एस., एस. सी. एन. आई., पृ. 232.
32. नारद स्मृति, IV, 93, सुनन्दा कार, पूर्वोक्त, पृ. 10; यादव, बी. एन. एस., पूर्वोक्त, पृ. 252.
33. गोपाल, एल., *'इकोनॉमिक लाईफ ऑफ नार्दन इंडिया'*, वाराणसी, 1965, पृ. 12.
34. व्यवहारकाण्ड, पृ. 459-460.
35. विवादरत्नाकर, V, नं0 671, पृ. 226.
36. राजतरंगिणी, VI, 628; ललनजी गोपाल, *'इकोनॉमिक लाईफ ऑफ नार्थ इण्डिया'*, में पृ. 12 पर उद्धृत।
37. सरकार, डी. सी., पूर्वोक्त, भाग-3, नं. 16, 18, 19, 42, 43, आदि।
38. शर्मा, रामशरण, इंडियन फ्युडेलिज्म, (द्वितीय संस्करण), पृ. 73-75, 185-187..

39. तिरूमलै, आर., पूर्वोक्त, पृ. 50.
40. ekDZ.M,ßY] *'प्री-कैमिटेलिस्ट सोशोइकोनॉमिक फॉरमेशन्स',* मॉस्को, 1979, पृ. 22.
41. शर्मा, आर. एस., *'शूद्राज इन एंशिएण्ट इंडिया,* पूर्वोक्त, पृ. 98.
42. वही, पृ. 188.
43. यादव, बी. एन. एस., पूर्वोक्त, पृ. 5.
44. विलियम्स, मोनियर, *'ए संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी',* ऑक्सफोर्ड, 195, प्रविष्टि।
45. यादव, बी. एन. एस., पूर्वोक्त, पृ. 32.
46. शर्मा, रामशरण, *'फ्रॉम गोपति टू भू-पति',* स्टडीज इन हिस्ट्री', II (2), 1980, पृ. 8, फुटनोट, 81-82.
47. मिराशी, वी. वी., *'इंस्क्रिप्शन्स ऑफ वाकाटकाज, कॉर्पस इंस्क्रिप्शन्स इण्डिकेरम',* जिल्द 5, उटकमंड, 1955, नं. 6, पंक्तियाँ 19-20.
48. वही, नं. 13, पंक्तियाँ 22-23.
49. शर्मा, आर. एस., *'इण्डियन फ्युडेलिज्म',* पूर्वोक्त, पृ. 3.
50. वही, दीवानी मुकदमों की सुनवाई का अधिकार 'अभ्यन्तरसिद्धि' शब्द का प्रयोग भोक्ता के लिए किए जाने से स्पष्ट होता है।
51. वही, पृ. 2.
52. सरकार, डी. सी., पूर्वोक्त, भाग-III, नं. 62, पंक्तियाँ 21-22.
53. मुखर्जी, आर. और मैती, एस. के., *'कॉर्पस ऑफ बंगाल इंस्क्रिप्शन्स बेयरिंग ऑन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ बंगाल',* कलकत्ता, 1967, पृ. 47, पंक्ति 62.
54. वही, पंक्ति 63.
55. वही, पंक्ति 22, नं. 46.
56. सरकार, डी. सी., पूर्वोक्त, भाग III, नं. 48, पंक्तियाँ 18-28.
57. वही, नं. 61, पंक्तियाँ 22-24.
58. शर्मा, रामशरण, पूर्वोक्त, पृ. 75.
59. सरकार, डी.सी. इंडियन एपिग्राफी, दिल्ली, 1965, पृ. 97.
60. सेन, पी.एन., *'दी जनरल प्रिंसिपल ऑफ हिन्दू ज्युरिसप्रुडेन्स',* कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1918, पृ. 43-46, अलिखित, कानून को वरीयता देने वाला लोक-स्वीकृति सिद्धान्त 'लौकिक-स्वत्ववाद' के रूप में जाना जाता है। गुरु, कुमारिल तथा पार्थसारथि मित्र जैसे अनेक तर्कशास्त्रियों ने, जिन्होंने धर्मशास्त्रों की व्याख्या मीमांसा के आधार पर की है, लोक-स्वीकृति के सिद्धान्त का समर्थन किया जबकि इसके विपरीत जीमूतवाहन/दायभाग/धारकेश्वर आदि ने शास्त्रीय दृष्टि का समर्थन किया। भू-स्वामित्व के प्रश्न पर मध्यकाल में यह परस्पर विरोधी दावों को प्रतिबिंबित करता है।
61. शर्मा, रामशरण, पूर्वोक्त, 1996 पृ. 76.
62. ठाकुर, विजय कुमार, *'प्रारंभिक बिहार में कृषक समुदाय का अभ्युदय'* इतिहास, अंक-1, भाग-1, आई. सी. एच. आर. की शोधपत्रिका, जनवरी-दिसम्बर, 2003, पृ. 68.
63. थापर, रोमिला, 'अध्यक्षीय भाषण', *'प्रोसीडिंग्स ऑफ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, 44वाँ अधिवेशन',* बर्दवान, 1983, पृ. 61.
64. दीघ निकाय, 1.61; संयुक्त निकाय, 1.172.
65. बौधायन धर्मसूत्र, III, 2.1.4.
66. अंगुत्तर निकाय, जिल्द IV, भिक्खु जगदीश कश्यप, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा, 1959, पृ. 239.
67. शर्मा, रामशरण, पूर्वोक्त, पृ. 97.
68. जातक, III, 293, IV, 279.
69. शर्मा, रामशरण, 1983, पूर्वोक्त, पृ. 103.
70. मज्झिम निकाय, जिल्द II, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा, 1958, पृ. 24.
71. ठाकुर, विजय कुमार, पूर्वोक्त, पृ. 70.
72. यादव, बी.एन.एस., एस.सी.एन.आई., पूर्वोक्त, पृ. 164-66.
73. शर्मा, रामशरण, 1996, पूर्वोक्त, पृ. 79.
74. शर्मा, रामशरण, *'इंडियन फ्युडेलिज्म',* पूर्वोक्त, पृ. 188.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 20 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2018
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति

❑ डॉ0 नमिता मिश्रा

वर्तमान समय में महिलाओं को समाज में विशेष स्थान प्राप्त है। महिलाऐं धनोपार्जन कर समाज को सुदृढ़ तथा आर्थिक रूप से आत्म निर्भर बनाने में प्रयत्नशील हैं। ग्रामीण महिलाओं को असंगठित क्षेत्रों द्वारा रोजगार प्राप्त हो रहा है, जिससे समाज में महिलाओं की आर्थिक व सामाजिक स्थिति सुदृढ़ हुई है। ग्रामीण महिलाऐं घर की चाहरदिवारी के बाहर कार्य करके एक सम्मानित आय अर्जित कर रही हैं। इस कार्य में उनके परिवार के पुरुष सदस्य तथा अन्य सदस्यों की सहायता भी उन्हें मिल रही है। आधुनिक समाज में महिलाऐं न केवल परिवार अपितु आर्थिक क्रियाकलापों में संलग्न होकर धनोपार्जन का कार्य भी कर रही है। धनोपार्जन हेतु महिलाऐं सरकारी, गैर-सरकारी नौकरी के साथ-साथ असंगठित क्षेत्रों में भी कार्यरत हैं। परिवार एवं कार्यस्थल के मध्य सामंजस्य बैठाने में इन्हें अनेकों परेशानियों का सामना करना पड़ता है। महिलाऐं प्रत्येक परिस्थिति से सामंजस्य बैठाकर धनोपार्जन कर प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रही है। इनकी आर्थिक स्थिति कार्योजित होने के उपरान्त कही अधिक सबल हुई है, इससे स्पष्ट होता है कि वे आर्थिक रूप से सबल हुई हैं।

किसी भी राष्ट्र या समाज के समग्र एवं एवं सन्तुलित विकास के लिए महिला वर्ग का राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड़ा होना परमावश्यक है। महिलाऐं समाज का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। महिला अस्तित्व के बिना समाज की कल्पना नही की जा सकती है। किसी भी देश की प्रगति का प्रत्येक स्तर शिक्षा हो या संस्कृति, विज्ञान हो या कला, व्यवसाय हो या कृषि, महिलाओं ने उसे उन्नत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का मूल्यांकन इनके दायित्वों के द्वारा ही ज्ञात किया जा सकता है। परिवार में महिलाओं की भूमिका माँ एवं पत्नी के रूप में महत्वपूर्ण होती है, किन्तु वर्तमान समाज में महिलाऐं न केवल परिवार अपितु आर्थिक क्रियाकलापों में संलग्न होकर धनोपार्जन का कार्य भी कर रही हैं। धनोपार्जन हेतु महिलाऐं सरकारी, गैर-सरकारी नौकरी के साथ-साथ असंगठित क्षेत्रों में भी कार्यरत हैं।

असंगठित क्षेत्र से तात्पर्य उस क्षेत्र से है जहॉ पर कार्य करने वाले व्यक्ति अपने समान हितों की रक्षा के लिए एकजुट नहीं है। इसमें संगठनात्मक सहायता का अभाव पाया जाता है। क्योंकि उन पर विभिन्न प्रकार के दबाव होते हैं, जैसे-रोजगार का अनियमित स्वरुप, अज्ञानता, निरक्षरता, प्रतिष्ठानों का छोटे तथा बिखरे रूप में होना आदि। असंगठित क्षेत्र सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के प्रति निर्बल हैं, इसमें श्रम कानूनों का अभाव पाया जाता है। असंगठित क्षेत्र में आने वाले कार्यो में कृषि इकाइयों में मजदूरी, दुकानों पर कार्य, दूसरों के घरों में काम करना, स्वयं का लघु उद्योग, सिलाई-बुनाई आदि कार्यो में दिहाड़ी आदि हैं। वर्तमान में असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत रहने वाले व्यक्तियों में महिलाओं की संख्या सर्वाधिक है। आज के भौतिकवादी परिवेश में महिलाओं का कामकाजी होना एक अनिवार्यता सी बन गयी है। घर की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पति-पत्नी दोनों ही कार्यरत हो गये है।[1]

आधुनिकीकरण के प्रभाव से भारतीय समाजिक संरचना भी परिवर्तित हुई है, महिलाओं की पूर्व निर्मित स्थितियों व परिस्थितियों में परिवर्तन होने लगे हैं। परिणामस्वरूप महिलाऐं जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ने लगीं और इसी कारण परम्परागत समाज की चाहरदीवारी से बाहर निकलकर विभिन्न व्यवसायों को अपनाने में सफल हुई हैं। कार्यक्षेत्र में प्रवेश ने महिलाओं के विचारों में तार्किकता, परिवार में सम्मानजनक स्थान, आर्थिक निर्णय की क्षमता को बढ़ावा दिया है।[2]

ग्रामीण महिलाओं के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। महिलाओं एवं पुरूषों के अधिकारों में समानता आयी है। स्त्री एवं पुरूष मिलकर पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन कर रहे हैं। स्वतंत्रता एवं स्वावलम्बन को प्रोत्साहन मिला है। आज ग्रामीण महिलाऐं, अपने निजी कार्यों के लिए पुरूषों पर निर्भर नही हैं। वे पूर्ण स्वतंत्रता

❑ असिस्टेन्ट-प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानीखेत (उत्तराखण्ड)

के साथ अपने कार्यों को सम्पन्न कर रही हैं। सरकारी, अर्द्धसरकारी, औद्योगिक संस्थानों एवं स्वरोजगार द्वारा ग्रामीण महिलाऐं आत्मनिर्भर हो रही हैं।

सरकार द्वारा ग्रामीण महिलाओं के कार्यशील होने को बढ़ावा दिया गया है, जिसके लिए उन्हें स्वरोजगार के लिए विभिन्न व्यवसायों के तकनीकी प्रशिक्षण तथा सब्सिडी पर ऋण की सुविधा की प्रदान की है। इन सुविधाओं की जानकारी प्राप्त कर ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं ने व्यावसायिक कार्यों में अभूतपूर्व परिवर्तन किया है। व्यावसायिक कार्यों को करने में अब कम समय व श्रम लगता है जिससे धन की भी बचत होती है। वर्तमान समय में महिलाऐं घर बैठे-बैठे अपने समस्त व्यावसायिक कार्यों को सरलतापूर्वक सम्पन्न कर धनोपार्जन कर रही हैं।

प्रमिला कपूर ने अपने अध्ययन में बताया है कि आर्थिक लाभ के कारण महिलाऐं नौकरी नहीं करती बल्कि इसके पीछे अन्य कारण भी है, जैसे-प्रतिभा का सदुपयोग, उच्च दर्जा प्राप्त करना, आर्थिक रूप से स्वावलम्बी होना, आर्थिक निर्णयों में भूमिका आदि लाभार्थ कार्य करना है।[3]

पद्मनी सेन गुप्ता ने अपने अध्ययन में बताया है कि विभिन्न आधुनिक मान्यताओं के कारण महिलाओं को परम्परागत स्त्री क्षेत्र में बंधे रहना अब ठीक नहीं लगता, वे अपने वैयक्तिक विकास तथा आत्मसम्मान के लिए घर से बाहर निकलकर काम करना चाहती हैं।[4]

रजनीकान्त दास ने लिखा है कि महिलाओं का नौकरी में प्रवेश समाज और व्यक्तित्व की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, ऐसी परिस्थिति में बाधा उत्पन्न करने के बजाए श्रेयस्कर यही होगा कि धनोपार्जन के लिए घर से बाहर जाने वाली महिलाओं को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया जाए, ताकि वे स्वयं को एवं परिवार को आर्थिक रूप सुदृढ़ कर सकें।[5]

सरस्वती जोशी एवं रेणु प्रकाश ने ''जनजातीय महिलाएं और असंगठित क्षेत्र कार्यगत परिस्थितियाँ'' में नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत जनजातीय महिलाओं का अध्ययन किया। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि अधिकांश महिलाओं ने सामाजिक तौर पर महिलाओं की स्थिति को सम्मानजनक बताया, उनमें कार्य संतुष्टि का स्तर भी काफी उच्च पाया गया, अधिकांश उत्तरदाताओं के अनुसार पुरूष मानसिकता में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा है किन्तु अधिकांश उत्तरदाता दोहरे उत्तरदायित्व (गृहिणी एवं कार्यरत) से मानसिक तनाव से ग्रस्त रहती हैं साथ ही कार्य के प्रति स्वयं को असुरक्षित भी मानती हैं।

सुश्री बीना[7] द्वारा 'असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की स्थिति समाजशास्त्रीय अध्ययन' उत्तराखण्ड राज्य के जनपद ऊधम सिंह नगर के अंतर्गत असंगठित क्षेत्र में कार्यरत 50 महिला श्रमिकों पर आधारित है। अध्ययन में अधिकांश उत्तरदात्रियों ने महिलाओं की स्थिति को सामान्य स्वीकार किया है, किन्तु उन्होंने काम के बदले जो मजदूरी प्राप्त होती है वह न केवल पुरूषों की अपेक्षा कम होती है अपितु बहुत कम होती है। उन्होंने अधिकांशतः स्वीकार किया है कि असंगठित क्षेत्र में आर्थिक सुदृढ़ता नहीं होती है, काम से निकाल देने का भय उन्हें मानसिक रूप से परेशान करता रहा है और इन क्षेत्रों में काम का कोई निश्चित मूल्य भी निर्धारित नहीं होता। मालिकों द्वारा मनचाहे रूप से मजदूरी दी जाती है। उल्लेखनीय हे कि अधिकांश उत्तरादात्रियों का मानना है कि स्त्रियों का कार्यशीलता के प्रति पुरुष मानसिकता में परिवर्तन आया है।

वर्तमान समय में महिलाऐं अधिकाधिक संख्या में वैतनिक व लाभपूर्ण व्यवसायों एवं असंगठित क्षेत्रों में कार्य करने लगी हैं। भिन्न-भिन्न क्षमताओं के साथ विभिन्न व्यवसायों में आने वाली महिलाओं को पारिवारिक-आर्थिक निर्णयों में विशेष भूमिका प्राप्त होती है और शनैः शनैः यह प्रगति पथ पर अग्रसर हो रही हैं।

शोध प्रारूप- प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक शोध प्रारूप का प्रयोग करते हुए असंगठित क्षेत्रों मे कार्यरत ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है। अध्ययन के लिए उत्तराखण्ड राज्य के जनपद नैनीताल की रानीखेत तहसील के चिलियानौला क्षेत्र के असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत ग्रामीण महिलाओं में से 60 का चयन उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श पद्धति द्वारा किया गया है। प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची व असहभागी अवलोकन पद्धति तथा द्वैतीयक तथ्यों के संकलन हेतु पत्र-पत्रिकाओं का प्रायोग किया गया है।

उद्देश्य-

(1) असंगठित क्षेत्र में कार्यरत ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।

(2) असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिला श्रमिकों की समस्याओं का अध्ययन करना।

अध्ययन की उपलब्धियाँ- असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत

ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को ज्ञात करने के लिए उत्तरदाताओं से उनके परिवार की मासिक आय को ज्ञात किया गया जिसे निम्न सारणी द्वारा दर्शाया गया है-

तालिका संख्याः-1

मासिक आय का विवरण

आय	आवृत्ति	प्रतिशत
500 से कम	08	13.33
5,000 से 15,000	13	21.67
15,000 से 20,000	21	35.00
20,000 से अधिक	18	30.00
कुल योग	60	100

तालिका संख्या-1 से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 35 प्रतिशत उत्तरदाताओं की मासिक आय 15000-20000के मध्य, 30प्रतिशत की 20,000 से अधिक, 21.67 प्रतिशत की 5000 से 15000 के मध्य तथा 13.33 प्रतिशत की 5000 से कम है। अध्ययन द्वारा ज्ञात होता है कि अधिकतर उत्तरदाताओं की मासिक आय 15 से 20 हजार के मध्य है। जिसका प्रयोग वह अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं भविष्य की बचत के लिए करते है।

तालिका संख्या-2

महिलाओं के परिवार का स्वरुप

परिवार का स्वरुप	संख्या	प्रतिशत
संयुक्त	48	80
एकाकी	12	20
योग	60	100

तालिका संख्या-2 से स्पष्ट होता है कि 80 प्रतिशत ग्रामीण महिलाऐं संयुक्त परिवारों से हैं तथा 20 प्रतिशत एकांकी परिवारों से हैं। एकाकी परिवारों में जीवन व्यतीत करने वाली ग्रामीण महिलाओं को सुविधाऐं अधिक प्राप्त हैं जब कि संयुक्त परिवारों में सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण व्यक्ति अपनी प्रतिदिन की आवश्यकताऐं ही पूर्ण नहीं कर पाते हैं, इस कारण ग्रामीण महिलाओं को विलासितापूर्ण सुविधाऐं प्राप्त नहीं हो पाती हैं। ग्रामीण सामाजिक संरचना में संयुक्त परिवार का महत्व अभी भी बना हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में व्यावसायिक सुविधाओं के अभाव के कारण अनेक परिवार अभी भी महिलाओं की स्थिति उत्तम करने हेतु उचित प्रबन्ध करने की स्थिति में नहीं है। संयुक्त परिवार में प्राथमिकताऐं अलग-अलग होती है।

तालिका संख्या-3

पारिवारिक स्थिति का मूल्यांकन

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
उच्च	24	40.00
मध्यम	19	31.67
निम्न	17	28.33
कुल योग	60	100

तालिका संख्या-3 द्वारा ज्ञात होता है कि 40प्रतिशत उत्तरदाताओं की पारिवारिक स्थिति उच्च, 31.67 प्रतिशत की मध्यम तथा 28.33 प्रतिशत की निम्न है, अधिकतर उत्तरदाताओं की पारिवारिक स्थिति उच्च एवं मध्यम है। उत्तरदाताओं ने माना है कि यह स्थिति उनके कार्यशील होने के परिणामस्वरूप हुई है, जिसमें उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। ग्रामीण महिलाओं को असंगठित क्षेत्रों द्वारा रोजगार प्राप्त हो रहा है, जिससे समाज में महिलाओं की आर्थिक व सामाजिक स्थिति सुदृढ़ हुई है। ग्रामीण महिलाऐं घर की चाहरदिवारी के बाहर कार्य करके एक सम्मानित आय अर्जित कर रही हैं।

तालिका संख्या-4

रोजगार से प्राप्त मासिक आमदनी का प्राथमिकता के आधार पर खर्च

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
भोजन	21	35
वस्त्र	05	08.33
शिक्षा	14	23.33
चिकित्सा	07	11.67
मनोरंजन	03	05.00
बचत	10	16.67
योग	60	100

तालिका संख्या-4 रोजगार द्वारा प्राप्त मासिक आमदनी का प्राथमिकता के आधार पर खर्च को प्रदर्शित करती है। ग्रामीण महिलाऐं रोजगार से प्राप्त आमदनी का 35 प्रतिशत भोजन, 8.33 प्रतिशत वस्त्र, 23.33 प्रतिशत शिक्षा, 11.67 प्रतिशत चिकित्सा, 5 प्रतिशत मनोरंजन पर व्यय तथा 16.67 प्रतिशत बचत करती हैं। रोजगार द्वारा ग्रामीण महिलाओं को जो मासिक आमदनी प्राप्त होती है वह उनकी दैनिक आवश्यकताओं के साथ-साथ उनकी अन्य आवश्यकताओं की भी पूर्ति करती है।

तालिका संख्या-5
असंगठित क्षेत्रों में कार्य द्वारा आपका सशक्तीकरण हुआ है

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	57	95
नहीं	03	05
योग	60	100

तालिका संख्या-5 महिलाओं के सशक्तीकरण को प्रदर्शित करती है। सर्वाधिक 95 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि असंगठित क्षेत्रों में कार्य द्वारा उनका सशक्तीकरण हुआ है, वे आर्थिक तथा सामाजिक रुप से सशक्त हुई हैं। शेष 5 प्रतिशत ने ऐसा नही माना है। वर्तमान में महिलाऐं अवसर प्राप्त कर सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि प्रत्येक क्षेत्र में अपनी योग्यतानुसार सहयोग देने के लिए अग्रसर हुई हैं तथा विशेष रुप से आर्थिक क्षेत्र में अपनी सहभागिता सुनिश्चित करने लगी हैं। इसके परिणामस्वरूप निश्चित रूप से उनका सशक्तीकरण हुआ है।

तालिका संख्या-6
असंगठित क्षेत्रों में कार्य द्वारा किस प्रकार का सशक्तीकरण हुआ है

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
आर्थिक सशक्तीकरण	07	11.67
सामाजिक सशक्तीकरण	16	26.66
उपर्युक्त दोनों	37	61.67
योग	60	100

तालिका संख्या-6 असंगठित क्षेत्रों में कार्य द्वारा हुये सशक्तीकरण के प्रकार को प्रदर्शित करती है। 11.67 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि वे आर्थिक रुप से सशक्त हुई हैं, 26.66 प्रतिशत का मानना है कि वे सामाजिक रुप से सशक्त हुई हैं, जब कि सर्वाधिक 61. 67 प्रतिशत महिलाऐं मानती हैं कि वे आर्थिक एवं सामाजिक दोनो रुप से सशक्त हुई हैं। आज शहरी क्षेत्रों की महिलाओं के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाऐं भी अपने अधिकारों के प्रति सजग हो रही हैं एवं उनका लाभ प्राप्त कर स्वयं तथा समाज की प्रगति कर रही हैं।

तालिका संख्या-7
महिलाओं के सशक्तीकरण का स्वरूप

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
आर्थिक रुप से स्वतंत्र हुई है	08	13.33
सामाजिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित हुई है	05	08.33
परिवार में सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ है	11	18.34
उपर्युक्त सभी	36	60
योग	60	100

तालिका संख्या-7 ग्रामीण महिलाओं के असंगठित क्षेत्रों में कार्य द्वारा आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण को प्रदर्शित करती है। 13.33 प्रतिशत महिलाऐं मानती हैं कि असंगठित क्षेत्रों में कार्य द्वारा वे आर्थिक रुप से स्वतंत्र हुई हैं, अब वे अपनी दैनिक जरुरतों की पूर्ति के लिए अपने पति पर निर्भर नही हैं। 8.33 प्रतिशत मानती है कि वे सामाजिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित हुई हैं, 18.34 प्रतिशत का मानना है कि उन्हें परिवार में सम्मानजनक स्थान प्राप्त हुआ है, गृह कार्य के साथ-साथ आय अर्जन ने उनके प्रति परिवार के सदस्यों के दृष्टिकोण को परिवर्तित कर दिया है। सर्वाधिक 60 प्रतिशत मानती हैं कि वे उपरोक्त सभी प्रकार से सशक्त हैं। घर की चाहरदीवारी से बाहर जाकर कार्य करने से ग्रामीण महिलाओं के रहन-सहन के स्तर, व्यक्तित्व-व्यवहार एवं मनोवृत्तियों में सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं जिससे उनमें चेतना एवं जागरूकता का विकास हुआ है जिसका परिणाम है कि आज ग्रामीण महिलाऐं प्रत्येक क्षेत्र में अव्वल होती जा रही हैं। उनमें अपने सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों के प्रति चेतना एवं जागरूकता का विकास हुआ है।

तालिका संख्या-8
परिवार के आर्थिक निर्णयों में भूमिका

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
बढ़-चढ़ कर	38	63.33
बहुत कम	13	21.67
बिल्कुल नहीं	09	15.00
कुल योग	60	100

तालिका संख्या-8 द्वारा स्पष्ट होता है कि 63.33 प्रतिशत उत्तरदाता परिवार में आर्थिक निर्णयों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेती हैं। 21.67 प्रतिशत का मानना है कि बहुत कम तथा 15 प्रतिशत ने माना है कि परिवार के

आर्थिक निर्णयों में उनकी बिल्कुल भूमिका नहीं है। ऑकड़ों द्वारा ज्ञात होता है कि शनैः-शनैः महिलाओं के आर्थिक सशक्तीकरण के कारण उनकी स्थिति में सुधार हो रहा है। आर्थिक क्षेत्रों के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों में भी उनकी भूमिका दिनों-दिन बढ़ रही है। परिवार के दैनिक खर्चो से लेकर महत्वपूर्ण आर्थिक निर्णय महिलाऐं स्वयं लेने लगी हैं।

तालिका संख्या-9

परिवार में महिला की स्थिति

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
सम्मानजनक	21	35
सामान्य	32	53.33
अपमानजनक/तिरस्कृत	07	11.67
कुल योग	60	100

तालिका संख्या-9 द्वारा ज्ञात होता है कि 53.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि कार्यशील होने के उपरान्त भी उनकी परिवार में स्थिति सामान्य है। 35 प्रतिशत का मानना है कि सम्मानजनक है। शेष 11.67 प्रतिशत महिलाओं का मानना है कि उन्हें परिवार में अपमानजनक एवं तिरस्कृत स्थिति प्राप्त है। अध्ययन द्वारा ज्ञात होता है कि धीरे-धीरे परिवर्तन उत्पन्न हो रहा है, जिससे महिलाओं की स्थिति में सुधार की आशा की जा सकती है।

तालिका संख्या-10

कार्यशील होने के कारण परिवार में तनाव

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
नहीं	16	17.67
कभी-कभी	35	58.33
सदैव	09	15.00
कुल योग	60	100

तालिका संख्या-10 द्वारा ज्ञात होता है कि 58.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में कार्यशील होने के कारण कभी-कभी तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है, 17.67 प्रतिशत ने माना है कि कार्यशील होने से परिवार में तनाव नहीं होता है। शेष 15 प्रतिशत का मानना है कि परिवार में सदैव तनाव रहता है। महिलाओं का मानना है कि इस तनाव का परिवार पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जैसे बच्चों का लालन-पालन ठीक प्रकार से नही हो पाता, अनावश्यक झगड़ों के कारण अनेकों मानसिक समस्याऐं बनी रहती हैं। जब कि कुछ महिलाओं का मानना है कि उन्हें इस प्रकार की किसी भी समस्या का सामना नही करना पड़ता बल्कि परिवार के सदस्य उनको रोजगार करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। अध्ययन द्वारा ज्ञात होता है कि वर्तमान में लैगिंक विभिन्नता कम हुयी है तथा स्त्री-पुरूष के अधिकारों में समानता आयी है। आज पुरूष सदस्य घर के निजी कार्यो में महिलाओं की सहायता करते हैं। उन्हें गृह कार्य के साथ-साथ नौकरी करने के लिए भी प्रोत्साहित करते हैं। ऑकड़ों द्वारा ज्ञात होता है कि महिलायें अपने कार्यक्षेत्र एवं परिवार के मध्य सामंजस्य बनाये रखने में काफी सीमा तक सफल हुयी है तथा धनोपार्जन कर अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बना रही हैं।

तालिका संख्या-11

कार्योजित होने का परिवार का लाभ

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
गृह खर्चो में मदद	18	30
आर्थिक स्थिति उत्तम	21	35
भविष्य के लिए धन संचय	12	20
उपर्युक्त सभी	09	15
कुल योग	60	100

तालिका संख्या-11 द्वारा ज्ञात होता है कि 35 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि कार्योजित होने से उनकी आर्थिक स्थिति उत्तम हुई है। 30 प्रतिशत ने माना है कि गृह खर्चो में मदद हुई है। 20 प्रतिशत का मानना है कि भविष्य के लिए धन संचय करने में सहायता प्राप्त हुई है। शेष 15 प्रतिशत ने उपरोक्त सभी लाभ बताये हैं। उत्तरदाताओ ने माना है कि स्त्री पुरूष दोनों के धनोपार्जन के कारण परिवार की आर्थिक स्थिति उत्तम हुई है।

तालिका संख्या-12

परिवार एवं कार्यस्थल के मध्य सामंजस्य

प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
स्वयं से समझौता करके	16	26.67
परिवार के सहयोग से	21	35.00
उपर्युक्त सभी	23	38.33
कुल योग	60	100

तालिका संख्या-12 द्वारा ज्ञात होता है कि 38.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना है कि वह उपरोक्त सभी कारणों द्वारा परिवार एवं कार्यस्थल के मध्य सामंजस्य बैठा पाती हैं। 35 प्रतिशत ने परिवार के सहयोग से तथा शेष 26.67 प्रतिशत ने स्वयं से समझौता करके परिवार एवं

कार्यस्थल के मध्य सामंजस्य स्थापित किया है। अध्ययन द्वारा ज्ञात होता है कि परिवार एवं कार्यस्थल के मध्य सामंजस्य बनाने में उत्तरदाताओं को अनेकों समस्याओं का सामना करना पड़ता है, किन्तु पारिवारिक सहयोग द्वारा वह काफी सीमा तक इसमें सामंजस्य उत्पन्न करने में सफल हुई हैं।

निष्कर्ष- वर्तमान समय में महिलाओं को समाज में विशेष स्थान प्राप्त है। महिलाऐं धनोपार्जन कर समाज को सुदृढ़ तथा आर्थिक रूप से आत्म निर्भर बनाने में प्रयत्नशील हैं। ग्रामीण महिलाओं को असंगठित क्षेत्रों द्वारा रोजगार प्राप्त हो रहा है, जिससे समाज में महिलाओं की आर्थिक व सामाजिक स्थिति सुदृढ़ हुई है। ग्रामीण महिलाऐं घर की चाहरदिवारी के बाहर कार्य करके एक सम्मानित आय अर्जित कर रही हैं। इस कार्य में उनके परिवार के पुरुष सदस्य तथा अन्य सदस्यों की सहायता भी उन्हें मिल रही है।आज ग्रामीण महिलाऐं प्राचीन दकियानूसी परम्पराओं एवं प्रथाओं को न अपनाकर स्वयं एवं परिवार तथा समाज के लिए प्रगतिशील आधुनिक विचारों को अपना रही है। महिलाओं की विवेक, बुद्धि पर आधुनिक पाश्चात्य समाज की स्पष्ट छवि देखी जा सकती है, जो नये-नये विचारों की उत्पत्ति का कारण है।

असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत ग्रामीण महिलाओं को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। किन्तु अनेकों समस्याओं का सामना करने के पश्चात् भी यह अपने कार्य में संलग्न रहती हैं, इनके कार्योजित होने से इनकी पारिवारिक स्थिति सुदृढ़ हुई है। यह आर्थिक रूप से सबल हुई हैं। यद्यपि परिवार एवं कार्यस्थल के मध्य सामंजस्य बैठाने में इन्हें अनेकों परेशानियों का सामना करना पड़ता है, किन्तु परिवार के पुरूष सदस्य भी इनकी सहायता करने लगे हैं, जो परिवर्तित पुरूष मानसिकता को प्रदर्शित करता है। महिलाऐं प्रत्येक परिस्थिति से सामंजस्य बैठाकर धनोपार्जन कर प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रही हैं। इनकी आर्थिक स्थिति कार्योजित होने के उपरान्त कहीं अधिक सबल हुई है, इससे स्पष्ट होता है कि इनका आर्थिक जीवन स्तर उन्नत हुआ है।

संदर्भ

1. सक्सेना, ऋतु एवं प्रभा शर्मा, *'महिला उद्यमियों की पारिवारिक भूमिका एंव द्वन्द'*, राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 2016, अंक-1 जनवरी-जून 2014 पृ. 79,
2. साह, इला एवं गोविन्द लाल, *'कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक-सामाजिक स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन'*, राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 19, अंक 1, जनवरी-जून 2017, पृ. 85
3. कपूर, प्रमिला, *'मैरिज एण्ड दि वर्किंग वूमेन इन इंड़िया'*, विकास पब्लिकेशन, दिल्ली, 1970 पृ. 23
4. दास, रजनीकान्त, *'हिन्दू वूमेन एण्ड़ हर फ्यूचर', 'सोशियोलॉजी ऑफ इंडिया वूमेन'*, रिसर्च पब्लिकेशन जयपुर, पृ. 69
5. गुप्ता, पद्यमनी सेन, *'वूमेन वर्क्स इन इंडिया''* एशिया पब्लिकेशन हाऊस, बॉम्बे, 1960, पृ. 243
6. जोशी सरस्वती एवं रेनु प्रकाश, *'जनजातीय महिलाएं और असंगठित क्षेत्र : कार्यगत परिस्थितियाँ'*, राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 18, अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2016, पृ. 135-138
7. बीना, *'असंगठित क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की स्थिति-समाजशास्त्रीय अध्ययन'*, राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 20, अंक 1, जनवरी-जून 2018, पृ. 78-86

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 20 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2018**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

उत्तराखण्ड के शिल्पकारों में व्यवसायिक वर्गीकरण

❑ डॉ0 शंकर बिष्ट

आनुवांशिक रूप से व्यवसाय भारतीय जाति व्यवस्था में पृथक्करण के एक मुख्य आधार रहे हैं। जातीय संस्तरण में चार वर्णों का मुख्य आधार व्यवसाय ही हैं।[1] परम्परागत जाति आधारित समाज में भिन्न जातियों के व्यवसाय बँटे हुए हैं।[2] नियमानुसार व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि उसे वह व्यवसाय ही करना है जो उसकी जाति के लिए निर्धारित है। व्यक्ति को व्यवसाय परिवर्तन की स्वतन्त्रता नहीं है। जाति और जाति व्यवस्था के लिए व्यवासायों को ही जिम्मेदार माना जाता है। मुख्यतः जाति, व्यवसाय से ही चिन्हित होती है।[3] मेयर के अनुसार क्योंकि जाति का व्यवसाय से सम्बन्ध होता है, व्यवसाय न केवल परम्परागत बल्कि धार्मिक आधार पर जाति से सम्बन्धित होते हैं।[4] भारतीय समाज में परम्परागत व्यवसायिक संरचना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण परिवेश में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है।[5]

> आनुवांशिक रूप से व्यवसाय भारतीय जाति व्यवस्था में पृथक्करण के एक मुख्य आधार रहे हैं। जातीय संस्तरण में चार वर्णों का मुख्य आधार व्यवसाय ही हैं। परम्परागत जाति आधारित समाज में भिन्न जातियों के व्यवसाय बँटे हुए हैं। परम्परागत अर्थव्यवस्था में पेशों के आधार पर जातियों का विभाजन हुआ, जिसमें श्रम विभाजन व विशेषीकरण की विश्वविख्यात, अद्वितीय व सुन्दरतम व्यवस्था थी। आर्थिक रूप से भी जातियां एक दूसरे के लिए अपरिहार्य थीं, इसलिए भारतीय समाज में सभी जातियां और वर्ण एक दूसरे का सम्मान करते थे। उनमें एक दूसरे के प्रति आदर व श्रृद्धा थी इसी आदर व श्रृद्धा से वे लोग एक दूसरे के साथ रिश्तों में बंधे थे। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत उत्तराखण्ड के शिल्पकारों में जाति पर आधारित व्यवसायिक वर्गीकरण का विश्लेषण किया गया है।

प्रायः प्रत्येक जाति का एक परम्परागत व्यवसाय होता है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होता रहता है। कई जातियों के नाम से ही उनके व्यवसाय का बोध होता है। प्रत्येक जाति यह चाहती है कि उसके सदस्य निर्धारित जातिगत व्यवसाय ही करें। अन्य जातियों के लोग भी एक व्यक्ति को अपना जातीय व्यवसाय बदलने से रोकते हैं, किन्तु कुछ व्यवसाय ऐसे हैं जैसे कृषि, व्यापार एवं सेना में नौकरी जिसमें सभी जातियों के व्यक्ति काम करते हैं। मुगलकाल से ही जाति पर पेशे सम्बन्धी नियन्त्रण शिथिल हो गये थे। जाति का पेशा परम्परागत होता है, परन्तु यह किसी अर्थ में आवश्यक नहीं कि उसी के द्वारा सब या अधिकतर जातियाँ आज अपनी जीविका-निर्वाह करती हैं।[6] श्रीनिवास के अनुसार ''जाति एक वंशानुगत अन्तर्विवाही समूह है जो कि प्रायः स्थानीय होते हैं, इसका एक विशिष्ट व्यवसाय से परम्परागत सम्बन्ध होता है तथा जाति के स्थानीय पदक्रम में इसकी विशिष्ट प्रस्थिति होती है। जातियों के मध्य सम्बन्ध अन्य बातों के अलावा छुआछूत की अवधारणाओं और प्रायः खान-पान सम्बन्धी निषेधों से नियन्त्रित होते हैं, अर्थात् जाति के अन्दर ही साथ बैठकर भोजन किया जा सकता है''।[7]

''सम्पूर्ण भारत में यह देखा गया है कि जाति सम्बन्धी निषेधों का पालन आज उतनी कड़ाई से नहीं हो रहा है जितना कि कुछ दशकों पूर्व होता था। जाति का वंशानुगत व्यवसाय के साथ सम्बन्ध, जाति व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता हुआ करती थी। जाति का यह इतना अभिन्न अंग था कि कुछ समाजशास्त्रियों ने यहाँ तक कहा कि जाति व्यवसायिक विभेदीकरण के व्यवस्थीकरण से अधिक कुछ नहीं है''।[8]

मैकाइवर एण्ड पेज के अनुसार ''जाति जैसी जटिल एवं विचित्र व्यवस्था की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, इस बात को लेकर विद्वानों में विवाद पाया जाता है। जाति सदैव परिवर्तनशील संस्था रही है, अतः इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में निश्चितता पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता''।[9] ''उत्पत्तियाँ सदैव अगम्य होती हैं'' इस अर्थ में किसी भी संस्था की उत्पत्ति ढूँढना एक कठिन कार्य है। मजूमदार के अनुसार ''जाति संरचना के सम्बन्ध में एक शताब्दी के परिश्रम और सावधानीपूर्ण किये गये अनुसन्धान के पश्चात् भी हम निश्चित रूप से उन परिस्थितियों की

❑ सहायक अध्यापक, सल्ट, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

व्याख्या नहीं कर पाये हैं जिन्होंने इस विशिष्ट व्यवस्था के निर्माण और विकास में योग दिया है''।[10]

कितने ही भारतीय एवं विदेशी विद्वानों ने जाति प्रथा के उद्‌भव के प्रश्न को सुलझाने के लिए अपने-अपने सिद्धान्तों को जन्म दिया। किसी ने जाति को कर्मकाण्डों का प्रतिफल माना, तो किसी ने इसे ब्राह्मणों का स्वार्थ-जाल, किसी ने आर्यों को इसके लिए उत्तरदायी ठहराया तो किसी ने आर्यों एवं अनार्यों के साँस्कृतिक सम्पर्क को। कुछ ने भारत में होने वाले प्रजातीय मिश्रण में जाति का उद्‌गम पाया तो कुछ ने पेशा एवं जाति की घनिष्ठता में।

आधुनिक भारत के प्रत्येक भाषायी क्षेत्र में सैंकड़ों जातियाँ अथवा अन्तर्गामी समूह हैं। चार या पाँच वर्ण केवल मोटी-मोटी अखिल भारतीय श्रेणियाँ सूचित करते हैं जिनमें असंख्य जातियों को कुछ अत्यन्त सीमित उद्‌देश्यों के लिए ही समूहित किया जा सकता है। वर्ण आदर्श (मॉडल) के अनुसार, हरिजन या अछूत जाति व्यवस्था के बाहर हैं और हरिजनों से सम्पर्क अन्य चार वर्णों के सदस्यों को अपवित्र करता है। यदि किसी प्रदेश की जातियों के बीच आर्थिक, सामाजिक ही नही कर्मकांडीय सम्बन्धों को भी देखा जाए तो हरिजन उस व्यवस्था के अभिन्न अंग हैं, वे कृषि में कुछ आवश्यक आर्थिक कार्य पूरा करते हैं, और गाँव के उत्सवों-त्योहारों पर ढोल पीटते हैं, तथा सामुदायिक भोज की पत्तलें उठाते हैं। ''वर्ण आदर्शों में किसी जाति-श्रेणी के स्थान के बारे में कोई सन्देह नहीं होता। किन्तु पद-क्रम में स्थान का निश्चित होना जाति मात्र की विशेषता नहीं है। वास्तव में, जाति व्यवस्था के दोनों छोर भी उतने अचल नहीं हैं जितने बताए जाते हैं। कुछ ब्राह्मण समूहों को इतना नीचा माना जाता है कि हरिजन तक उनके हाथ का बना नहीं खाते''।[11]

भारत की सामाजिक व्यवस्था में जाति की भूमिका न केवल महत्वपूर्ण बल्कि निर्णायक भी है। यह दुखद स्थिति है कि आज भी समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा और उसका स्थान काफी सीमा तक उसकी जाति पर निर्भर करता है। कुछ जातियाँ प्रतिष्ठा और विशेषाधिकार प्राप्त हैं जबकि कुछ अन्य जातियों को तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है और उन्हें बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता रहा है। जाति पर आधारित सामाजिक विभाजन मूलतः वर्ण-व्यवस्था का ही विकृत रूप है। वर्ण-व्यवस्था की जड़ें अतीत के अंधकार में कहीं छुपी हैं। अतः अधिकांश समाजशास्त्री इस विषय पर एकमत नहीं हैं कि जाति भेद की इस अनूठी प्रथा का आरम्भ और विकास कैसे हुआ। परन्तु लिखित इतिहास में वर्ण-व्यवस्था की रूप-रेखा स्पष्ट है और इस विषय में भी मतभेद नहीं हैं कि प्रारंभिक वैदिक काल में वर्ण-व्यवस्था पर आधारित समाज में मुख्य चार वर्ग थे-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जिनके भिन्न-भिन्न व्यवसाय थे।[12] पर वैदिक काल में वर्ण-व्यवस्था के प्रवर्ग अंदर से खुले थे और व्यक्ति की सामाजिक स्थिति जन्म-निर्धारित नहीं थी। इन वर्णों में से प्रत्येक का एक विशेष सामाजिक कृत्य, संस्कृति और जीवनशैली का अपना-अपना अलग स्तर था। ऋषि मुनियों ने वर्ण-व्यवस्था को सनातन और शाश्वत की संज्ञा दी और धीरे-धीरे लोगों में यह विश्वास फैल गया कि जाति प्रथा ईश्वर प्रदत्त व्यवस्था है।[13]

कुमाऊँनी लोकगीतों की भाँति कुमाऊँ में परम्परागत व्यवसाय भी पीढ़ी दर पीढ़ी विकसित होते हुए और शिष्ट समाज के संघातों को सहते हुए भी अपना मूलभूत अस्तित्व कायम रखते हुए हमें प्राचीन परम्पराओं से अवगत कराते हैं, जिससे प्राचीन व्यवस्था पर प्रकाश पड़ ही जाता है तथा इतिहास को समझने के लिए एक पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है।[14] वर्तमान में आजीविका चलाने के लिए अन्य जातियों द्वारा भी परम्परागत व्यवसाय किए जाने लगे हैं। अधिकतर अनुसूचित जातियों के लोगों द्वारा परम्परागत व्यवसाय के साथ कृषि कार्य भी आय के एक साधन के रूप में मुख्यतः किया जाता है। ग्रामीण परिवेश होने की वजह से कृषि कार्य अन्य उच्च जातियों द्वारा भी किये जाते थे, लेकिन परम्परागत व्यवसाय ही एक ऐसा प्रमुख कारण था जो अनुसूचित जातियों की एक विशिष्ट पहचान चिन्हित करता था। आज कई परम्परागत व्यवसाय विलुप्त हो चुके हैं तथा कई विलुप्त होने की कगार पर हैं और कई आज भी किए जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में स्पष्ट कर पाना काफी कठिन है कि कौन-कौन से परम्परागत व्यवसाय अभी जीवित हैं और कौन-कौन से परम्परागत व्यवसाय विलुप्त हो गये हैं। हो सकता है कि कोई व्यवसाय कहीं चल रहा हो और दूसरी जगह बिल्कुल समाप्त हो गया हो।

साहित्य समीक्षा :

शुक्ला और नाझून[15] ने अपने लेख ''सोशियल अपलिफ्टमेंट इन उत्तराखण्ड'' में सरकार द्वारा संचालित विभिन्न परियोजनाओं से होने वाले सामाजिक-आर्थिक विकास को जानने का प्रयास किया है। इस लेख में मुख्यतः सरकार

द्वारा उत्तराखण्ड में अनुसूचित जातियों व जनजातियों के शैक्षिक स्तर व जीवन स्तर को सुधारने के लिए चलाई जा रही अलग-अलग परियोजनाओं का अध्ययन किया गया है।

एच0 सी0 उपाध्याय[16] ने अपनी पुस्तक 'हरिजन ऑफ हिमालय' में उत्तराँचल के हरिजनों की बदलती परिस्थिति व उनकी समस्याओं का उल्लेख किया है। अनुसूचित जातियों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति को बहुत अच्छी तरह से समझाने का प्रयास किया है।

द पीपुल ऑफ इण्डिया जो सर एच0 रिजले[17] द्वारा लिखी गई है में जाति को परिभाषित कर स्पष्ट किया है कि '' जाति एक विशिष्ट व्यवसाय से जुड़ी होती है या उससे चिन्हित होती है'' इस तथ्य को उजागर करता है कि विभिन्न जातियों को प्राचीन काल से उसके व्यवसाय के आधार पर पहचाना जा सकता है। रिजले के अनुसार 'जाति को एक परिवारों का समूह कहा जा सकता है, जो एक विशिष्ट व्यवसाय से जुड़े होते या उससे चिन्हित होते हैं।

जी0 एस0 घुर्ये[18] ने अपनी पुस्तक 'कास्ट, क्लास एण्ड ऑक्यूपेशन' में अनुसूचित जातियों के व्यवसाय के बारे में समझाने का प्रयास किया है। घुर्ये द्वारा प्रतिपादित कास्ट, क्लास एण्ड ऑक्यूपेशन में अनुसूचित जातियों के विभिन्न व्यवसायों का वर्गीकरण कर इनके द्वारा किये जाने वाले अलग-अलग कार्यों के महत्व को दर्शाया है।

एम0 डी0 देसाई[19] द्वारा अपनी पुस्तक प्राब्लम ऑफ लो इनकम सैक्शन्स इन रूरल एरियाज में ग्रामीण भारतीय समाज में अनुसूचित जातियों की विशेषताओं व समस्याओं का समाज में निम्न जातियों के प्रतिनिधि के रूप में अध्ययन किया है।

अध्ययन के उद्देश्यः प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य शिल्पकारों में व्यवसायिक वर्गीकरण व उसके महत्व के विषय में जानकारी प्राप्त करना है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक और अनुभवात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित है।

अध्ययन में यह पाया गया कि परम्परागत व्यवसायों व उन पर आश्रित अनुसूचित लोगों की स्थिति काफी दयनीय है। नई पीढ़ी द्वारा परम्परागत व्यवसायों को न किये जाने के कारण ये व्यवसाय धीरे-धीरे समाप्त हो रहे हैं। इसके अलावा नवीन आविष्कारों, मशीनों के उपयोग व संचार साधनों की उपलब्धता ने भी परम्परागत व्यवसायों को काफी नुकसान पहुंचाया है।

प्राचीन काल में परम्परागत व्यवसाय अनुसूचित जातियों के लिए पूर्ण रूप से आजीविका के साधन हुआ करते थे, वर्तमान में मात्र इन्हीं से आजीविका अर्जित कर पाना बहुत कठिन है, इसलिए इन परम्परागत व्यवसायों के साथ-साथ परम्परागत व्यसायियों द्वारा जीविकोपार्जन के लिए कृषि व अन्य व्यवसाय भी किए जाते हैं। शोध कार्य के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान में अनुसूचित जातियों द्वारा किये जाने वाले लगभग सभी परम्परागत व्यवसाय संकट के दौर से गुजर रहे हैं। अगर सरकार द्वारा इनके संरक्षण एवं संवर्द्धन में तथा परम्परागत व्यवसायियों द्वारा इनको करने में रूचि नहीं दिखाई गई तो आने वाले कुछ वर्षों में ये पूर्णतया समाप्त हो जायेंगे। जिसके परिणाम काफी घातक होंगे।

एटकिन्सन ने कार्यों के आधार पर शिल्पकारों को मुख्यतः चार श्रेणियों में विभक्त किया है[20]:-

प्रथम श्रेणी :

(1) कोली :कोली कपड़ा बुनने का कार्य करते थे और कृषक भी होते थे। इसके अलावा ये लोग सुअर पालन, मुर्गी पालन व अन्य जानवरों को भी अपने जीवीकोपार्जन के लिए पालते थे। सन् 1872 में इनकी संख्या 14209 थी।

(2) लोहार (ल्वार) : लोहे का कार्य करने वाले लोहार कहलाते थे। कुमाऊँ में इन्हें ल्वार कहा जाता है। इनका प्रमुख कार्य लोहे की मदद से बर्तन, खेती व अन्य काम के औजार आदि बनाना था। ये लोग कृषक भी होते थे, कार्य के बदले ये जमीन लेते थे जिसे खंडेला कहा जाता था। 1872 में इनकी संख्या 18688 थी।

(3) टम्टा : टम्टा ताँबे का कार्य करते थे। ताँबे की मदद से ये बर्तन व अन्य दैनिक उपयोग की वस्तुओं का निर्माण करते थे। इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं को काफी पसन्द किया जाता था। ये संख्या में काफी कम थे। 1872 में इनकी संख्या 140 थी।

(4) ओढ़ : लकड़ी और पत्थर का कार्य करने वाले ओढ़ कहलाते थे। इनका मुख्य कार्य भवन निर्माण करना था। इसके अलावा लकड़ी की मदद से अन्य उपयोग की वस्तुएं भी निर्मित करते थे। 1872 में इनकी संख्या 11000 थी। इनके अलावा तिरूवा और ढाड़ी भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।

द्वितीय श्रेणी :

(1) **रूड़िया :** निंगल व बाँस की मदद से टोकरी बनाने वाले रूढ़िया कहलाते थे। इसके अलावा ये लोग कुमाऊँ में पाये जाने वाले पेड़ (भिख्खू) की मदद से चटाई भी बनाते थे। ये कृषक भी होते थे।

(2) **चिम्यार :** ये लकड़ी की मदद से घरेलू उपयोग में प्रयुक्त होने वाले जरूरी बर्तनों का निर्माण करते थे। लकड़ी के बर्तनों का उपयोग दूध रखने, दही जमाने, मट्ठा बनाने आदि में किया जाता था। दही जमाने वाले बर्तन को 'ठेकी' व 'डौकुली', घी जमाने वाले बर्तन को 'हड़पिया', नमक रखने वाले बर्तन को 'डबिया', बच्चों को दूध पिलाने वाले बर्तन को 'गडुवा' मट्ठा बनाने वाले बर्तन को 'मटेरूआ' या 'डौकई' कहा जाता था। इसके अलावा ये अनाज संग्रहण के लिए बड़े आकार के बक्सों का भी निर्माण करते थे जिसे 'भखार' तथा 'दुनका', पके भोजन के संग्रहण के लिए प्रयुक्त होने वाले बर्तन को 'छापरा' कहा जाता था। इसके अलावा ये तम्बाकू पीने के लिए प्रयुक्त होने वाले 'नारूक' का भी निर्माण करते थे।

(3) **अगरी :** धातु का कार्य करने वाले अगरी कहलाते थे। धातुओं को पिघला कर ये दैनिक उपयोग की वस्तुओं का निर्माण करते थे। 1872 में इनकी संख्या 806 थी।

(4) **पहाड़ी :** गाँव में संदेशवाहक का कार्य करने वाले को पहाड़ी कहा जाता था। इसका प्रमुख कार्य गाँवों में सामान पहुंचाने का प्रबन्ध करना, कोई कार्य करने के लिए मजदूरों की व्यवस्था करना व संदेशवाहक का कार्य करना था।

(5) **भूल :** तेल का कार्य करने वाले भूल या तेली कहलाते थे। ये कृषक भी होते थे। इसके अलावा ये सुअर पालन, मुर्गी पालन व अन्य जानवरों को पालने का कार्य भी करते थे। 1872 में इनकी संख्या 9892 थी।

तृतीय श्रेणी :

(1) **मोची :** चमड़े का कार्य करने वाले मोची कहलाते थे। ये मैदान से लगे क्षेत्रों में ज्यादातर निवास करते थे। 1872 में इनकी संख्या 2323 व 1881 में 6974 थी।

(2) **धुना :** ये रूई का कार्य करने वाले होते थे, इनका कार्य रूई धुनना व उसकी मदद से अन्य उपयोग की वस्तुओं का निर्माण करना था। ये संख्या में कम थे और अधिकतर मैदान क्षेत्रों में पाये जाते थे।

(3) **हनकिया :** ये मिट्टी का कार्य करते थे। मिट्टी की मदद से ये दैनिक उपयोग की वस्तुओं का निर्माण करते थे। ये मैदान क्षेत्रों की कुम्हार की तरह थे। ये संख्या में काफी कम थे।

चतुर्थ श्रेणी :

(1) **बादी :** गाँव का गवैया बादी कहलाता था। इनका कार्य एक गाँव से दूसरे गाँव जा संगीत व गाने से लोगों का मनोरंजन करना था। ये एक प्रकार से गाँवों में बिना बुलाये मेहमान की तरह होते थे। गाँवों में लोगों द्वारा मनोरंजन करने के एवज में लोगों द्वारा दिये जाने वाले पुरूस्कार या अन्य मदद से प्रसन्न न होने पर ये गाली देते थे। इसके अलावा मछली पकड़ना, चिड़िया पकड़ना, सुअर पालन और मुर्गी पालन इनके प्रमुख व्यवसाय थे।

(2) **हुड़किया :** हुड़का (एक प्रकार का ड्रम) बजा लोगों का मनोरंजन करने वाले हुड़किया कहलाते थे। उच्च जातियों द्वारा देवी-देवताओं के पूजन में भी इनको बुलाया जाता था। शादी-ब्याह जैसे समारोहों में भी इन्हें बुलाया जाता था।

(3) **दर्जी (औजी) :** कपड़ा सिलाई का कार्य करने वाले दर्जी कहलाते थे। इन्हें कुमाऊँ में औजी कहा जाता था। ये कृषक भी होते थे।

(4) **ढोली :** शादी-ब्याह व अन्य उत्सवों में ढोल बजा लोगों का मनोरंजन करने वाले ढोली कहलाते थे। ढोली कपड़ा सिलने(दर्जी) व कृषि कार्य भी मुख्य रूप से किया करते थे।

(5) **हलिया :** हलिया हल जोतने व खेतों की सफाई का कार्य करते थे। हलिया प्रमुख रूप से उच्च जाति के लोगों के खेतों में कार्य किया करते थे, कार्य के एवज में इन्हें भोजन, वस्त्र, अन्य दैनिक उपयोग की वस्तुएँ या कृषि कार्य हेतु जमीन दे दी जाती थी।

(6) **बागुड़ी :** ये लोग जीविकोपार्जन के लिए जंगली जानवरों का शिकार कर उसे बेचते थे।

(7) **डमजोगी :** ये दूसरों से माँग कर अपनी आजीविका चलाते थे। इन्हें ''माँगखाणी'' भी कहा जाता था। बाद में ये कृषक बन गये।

कुमाऊँ के शिल्पकारों का यह चौथा वर्ग लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति के संरक्षण की दृष्टि से विशेष महत्व का है। इस संबंध में त्रिलोचन पाण्डे ने लिखा है-''ढोली, बादी आदि हमारे लिए विशेष महत्व के हैं क्योंकि कुमाऊँ के लोकसंगीत, लोकनृत्य, लोकगीत, लोकगाथा और लोकधर्म v kfn l sbudk t hou ?kfu"B : i l st qMk gqvk gS''[21] **जहाँ डूम** लोग रहते हैं, वह जगह डुमगेला, डुमौड़ा या

मुल्यूड़ा इत्यादि कही जाती है। पहली व दूसरी कोटि के अन्त्यजों में विवाह हो सकते हैं तथा दूसरी व तीसरी में विवाह होते हैं, यद्यपि कहीं-कहीं रूकावटें सामान्य हैं। पत्थर तोड़ने का काम कोई भी कर सकता था। पत्थर तोड़ने वाले 'ढुंड़फोड़' कहलाते थे। प्रत्येक शूद्र को अपने-अपने पेशे के अनुसार काम करना होता था, न करने पर गाँववाला शिकायत कर सकता था। एटकिन्सन कहते हैं- ''कुछ शूद्र अपने को गोरखनाथ ब्राह्मण की संतान बताते हैं, और अभक्ष्य गोमांस खाने के कारण पतित समझे गये।''[22] वे इन ग्राम देवताओं को पूजते हैं:- गंगानाथ, मसान, खबीस, ग्वाल्ल, क्षेत्रपाल, संम, ऐड़ी, कलबिष्ट, कलुवा, चौमू, वधान, हरू, लाटू, मेलियाँ, कत्यूरी राजा, रूनियाँ, बालचन, कालचनभौसी, छुरमल्ल आदि जिनका वृतान्त अलग मिलेगा। जिनके बदन में ये देवता 'अतराते' हैं, वे कूदते हैं, उछलते हैं, चिल्लाते हैं और राख, कोयले फेंकते हैं और बिच्छूघास से अपने को ही पीटते हैं।[23] ये तिल व चावल चबाते हैं। ये बिल्कुल पागल से दिखाई देते हैं, तब ढोली व बादी बुलाये जाते हैं। कुछ लोग 'पुछ्यार' (जिनसे बातें पूछी जावें) होते हैं। वे देवता की बात बताते और ये चीजें देवता को चढ़ाते हैं- खड़े उर्द (ज्यादातर उर्द की) व चावल, पकाया दाल-भात, बकरी की मेंगनी, रोली, सिन्दूर, सफेद, पीला, लाल, नीला, वस्त्र अलग-अलग देवताओं को चढ़ता है। हलुवा, बताशे, सुपारी, मसाले, कौड़ी, ताँबें के पैसे, नारियल, कीलें, त्रिशूल, दूध, दही, जवान भैंसें, बकरी, मुर्गे व सूअर भी मारे जाते हैं। देवता का मंदिर व मढ़ी जिसे 'देवथान'' कहते हैं, एक टीले पर होता है। उसमें 10-12 पत्थर लगे रहते हैं, और एक झंडी होती है। यहाँ एक पत्थर सादा या तराशा हुआ होता है। इसी की पूजा होती है। यह पत्थर कभी-कभी घर की छत (धूरी) में रखा रहता है। जन्म, विवाह व गृह प्रवेश में अर्थात् नये घर में जाने के वक्त देवता की पूजा की जाती है।

शूद्रों के पहले शिखा तो होती थी, पर सूत्र न होता था। अब सुधारक दल वाले पहनने लगे हैं। त्योहारों को वे रोली लगाते हैं, पर वे नाक से कपाल तक रोली लगाते हैं। द्विज केवल मस्तक ही में लगाते हैं। वे श्राद्ध कनागतों की अमावस्या को करते हैं। भांजा या जमाई उनका ब्राह्मण होता है। उसे ही दक्षिणा मिलती है। शूद्र लोग मरी गाय का मांस खाते थे, पर गाय मारते नहीं थे। अन्य सब मांस खाते हैं। अब गाय खाने की चाल सुधारक दल उठाते जा रहे है। वे भी भंगी, ईसाई व मुसलमान की छूत मानते थे। विवाह का कोई समय निश्चित नही। जब जी में आया, कर लिया। बड़े भाई की स्त्री छोटा भाई रख लेता है। किस्सा है कि ''माल भिड़ उधर बेर ताल भिड़ ऊँछ'' ऊपर की दीवार टूट कर नीचे आती है। जब बड़ा भाई मर जाता है, तो कुटुम्ब का भार छोटे पर पड़ता है। बड़ा भाई छोटे भाई की स्त्री को घर में नहीं रखता। यदि रखता है, तो बदनामी होती है। वह उसे बिरादरी में दूसरे को दे देता है। वह जी चाहे, दूसरे घर जा सकती है। दाम चुकाने पड़ते हैं। वर्जित कुल लड़की, बहिन, चाचा, चाची व भाई के हैं या जिनके साथ वे खा-पी नहीं सकते। बहुत लोग अपनी कन्याओं को वेश्या बनाते हैं।[24]

शूद्रों को छोड़कर अन्य सब जातियाँ प्रायः भारतवर्ष में जातियों के केन्द्रस्थल मध्य एशिया से आई। वहीं से वे सर्वत्र फैली।[25] यहाँ के सबसे प्रथम निवासी दस्यु या शूद्र माने गये हैं। उनके बाद शायद राजी या राज्य किरात आये। पश्चात् वीर व शक्तिशाली खस-जाति ने इन सबको मार भगाया, और उनको अपनी प्रजा बनाया। वैदिक आर्यों ने आकर दोनों खस व शूद्रों को जीता, और इनको अपने से कुछ कम समझा। जैसा कि जीतनेवाले तथा जीते जानेवाले लोगों के बीच के संबंध में कुछ राजनीतिक ऊँच-नीच का भेद-भाव होता ही है। आर्य या हिन्दुओं ने अन्य जातियों को अनार्य, यवन, म्लेच्छ, वृषल शब्दों से पुकारा, तो मुसलमानों ने उनको काफिर, गुलाम आदि नीच संज्ञाओं से संबोधित किया।

प्राचीन लेखक तथा इतिहासकारों ने पूर्व-काल में भिन्न-भिन्न जातियों को जिन कोटियों में विभाजित किया है, उनका दिग्दर्शन यहाँ पर किया गया है। अर्वाचीन काल में सिद्धांत बदल गये हैं। अब ऊँच-नीच, खान-पान तथा परस्पर व्यवहार की बाबत विचारों में परिवर्तन हो गया है। अब लोग कहते हैं कि मनुष्य-मात्र सब एक ही हैं। कोई जाति न बड़ी, न छोटी। हिन्दुओं में जो चार वर्ग (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) माने गये हैं, उनमें कोई ऐसा कठिन भेद-भाव प्राचीन-काल में न था, जो अब माना गया है। ये सब वर्ग एक ही मूलशाखा की विशाखा व प्रशाखा हैं। हिन्दू-मात्र सब एक ही सूत्र में बँधें हैं। उनमें न कोई छोटा, न बड़ा। जो जितना पराक्रम व पुरूषार्थ दरसावेगा, उसी के अनुसार उसको समाज में सम्मान का पद प्राप्त होगा, जो समाज का तिरस्कार करेगा, वह स्वयं तिरस्कृत होगा। अतः दस्यु, डोम तथा

खस शब्दों का जहाँ कहीं भी प्रयोग किया गया है, वह केवल ऐतिहासिक विवेचन के रूप में है। वे शब्द किसी भी प्रकार अनादर-सूचक न समझे जावें, क्योंकि अब जाति धार्मिक व सामाजिक सिद्धान्तों के अनुसार नहीं, वरन् राष्ट्रीय साम्पत्तिक सिद्धान्तों तथा परस्पर प्रेम, ऐक्य व जातीय सम्भावनाओं से ही प्रकट होती है। एक भेष, एक भाषा, एक भाव तथा एक देश यही जातीयता के चिन्ह हैं। अब कोई भी मनुष्य-मात्र अमुक जाति का होने से ऊँच-नीच न गिना जावेगा। गुण, कर्म तथा स्वभाव से ही वह ऊँच या नीच गिना जावेगा।

जब राष्ट्रीयता के नाते पारसी, मुसलमान, यहूदी तथा अँग्रेज भी अपने भाई हैं, तब हिन्दू मात्र को अपने सम्प्रदाय के सब अँगों को एक ही सूत्र में बँधा हुआ न मानना विडंबना होगी। कूर्मांचल में जो भी जातियाँ आकर बसी हैं, वे सब भ्रातृ-भाव के बंधन से बँधी हैं। हरिजन, खस, किरात, राज्य-किरात, शक, हूण, आर्य सब जातियों की जन्मभूमि अब एक हैं। उनके अधिकार एक हैं। उनमें कोई भेदभाव नहीं है। वे सब एक ही जननी जन्म -भूमि की संतान हैं। भगवान् करें, ऐसी धारणा सबके हृदय में हो।[26]

प्राचीन काल से ही भारतीय हिन्दू समाज अलग-अलग जातियों और उपजातियों में बँटा रहा है। उत्तराखण्ड में वर्ण व्यवस्था के अनुरूप चार प्रमुख वर्ण पाये जाते हैं। ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनमें से प्रत्येक जाति के अन्तर्गत अनके उपजातियाँ भी पाई जाती हैं। उत्तरॉचल में शिल्पकारों की गिनती शूद्र वर्ण के अन्तर्गत होती है। हरिजन अथवा शूद्र वर्ण को यहां का सबसे प्राचीन निवासी माना जाता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसे अपनी प्रत्येक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। कोई भी मनुष्य चाहकर भी अकेले जीवनयापन नहीं कर सकता। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज में विद्यमान विभिन्न जातियों व वर्गों के बीच प्रकार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित हुए। अनुसूचित जातियां भले ही वर्ण व्यवस्था के अनुरूप जरूर सबसे निम्न श्रेणी में आती हैं, लेकिन सामाजिक जीवन में सभी जातियां चाहे वो किसी भी स्तर में हों एक दूसरे की पूरक हैं। एक दूसरे के सहयोग के बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। पूर्व से ही कृषि, भवन निर्माण तथा दैनिक जीवन के अधिकांश साधनों के निर्माता अनुसूचित जाति के ही लोग होते थे। जहां पूर्व में अनुसूचित जातियों का सामाजिक स्तर काफी निम्न था, वहीं वर्तमान में इस में काफी परिवर्तन आया है। समाज में अलग-अलग स्तर पर होते परिवर्तनों ने जाति आधारित व्यवस्था को कमजोर किया है।

जाति आधारित व्यवस्था के कमजोर पड़ने से सामाजिक आधार पर होने वाले भेदभावों में कमी आ रही है। पहले जहां अनुसूचित जातियों को उनके व्यवसाय के आधार पर पहचाना जाता था, वहीं वर्तमान में अनुसूचित जातियों द्वारा किये जाने वाले कई व्यवसाय अन्य जातियों द्वारा भी किए जाने लगे है जिससे कि व्यवसाय आधारित सामाजिक व्यवस्था कमजोर पड़ी है। अनुसूचित जातियों के मध्य शिक्षा का स्तर बढ़ने से इन लोगों का सरकारी व गैर सरकारी नौकरियों में भी प्रतिनिधित्व बड़ा है। अलग-अलग जाति वर्ग के लोगों का एक साथ काम करने से रिश्ते काफी सौहार्द्रपूर्ण हुए हैं जिससे जातीय संस्तरण में कमी दिखाई देती है। वर्तमान में समाज में जाति की अपेक्षा व्यक्ति को उसकी आर्थिक स्थिति के अनुरूप सम्मान दिया जाता है। अगर एक निम्न जाति का व्यक्ति किसी उच्च पद पर है तो उसे सामाजिक रूप से काफी सम्मान दिया जाता है।

परम्परागत अर्थव्यवस्था में पेशों के आधार पर जातियों का विभाजन हुआ जिसमें श्रम विभाजन व विशेषीकरण की विश्वविख्यात, अद्वितीय व सुन्दरतम व्यवस्था थी। आर्थिक रूप से भी जातियां एक दूसरे के लिए अपरिहार्य थीं, इसलिए भारतीय समाज में सभी जातियां और वर्ण एक दूसरे का सम्मान करते थे। उनमें एक दूसरे के प्रति आदर व श्रृद्धा थी इसी आदर व श्रृद्धा से वे लोग एक दूसरे के साथ रिश्तों में बंधे थे। चाहे ब्राह्मण हो या शिल्पकार एक दूसरे को सम्मान सूचक शब्दों से सम्बोधित करते थे। ग्राम समुदाय एक क्रियाशील इकाई थी जहां पर प्रत्येक जाति के काम धन्धे बंटे हुए थे। प्रत्येक जाति अपने-अपने कार्य से जानी जाती थी। ग्रामीण समुदाय की प्रमुख विशेषता थी कामगारों के विभिन्न समूह के कार्य fo'kssk dk l eUo; i wkZ, dhdj.kA[27]

निष्कर्ष : प्राचीन काल में परम्परागत शिल्पों के आधार पर अपनी पहचान बनाने वाले अनुसूचित जाति के ये शिल्पी वर्तमान में स्वयं की 'पहचान के संकट' से गुजर रहे हैं। प्राचीन सरल समाज में जहाँ परम्परागत व्यवसाय से उत्पन्न आय जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त थी वहीं वर्तमान में इन व्यवसायों के आधार पर परम्परागत

शिल्पियों के लिए जीवन निर्वाह के न्यूनतम साधन जुटाना मुश्किल हो रहा है। वर्तमान में प्रौद्योगिकी एवं संचार के युग में जातिगत व्यवसाय संबंधी प्रतिबन्ध पूर्ण रूप से समाप्त हो गये हैं। अतः अनुसूचित जातियों द्वारा किये जाने वाले परम्परागत व्यवसाय तथा शिल्पियों द्वारा तैयार माल की बाजार में निरन्तर खपत कम होती जा रही है। आज मशीनीकरण का प्रभाव प्रत्येक वस्तु के निर्माण में अपनी पैठ बना चुका है। इसमें समय की बचत के साथ-साथ गुणवत्ता अधिक होती है जिसके कारण परम्परागत पेशों पर आश्रित शिल्पकारों के समक्ष रोजी-रोटी की समस्या उत्पन्न हो रही है। कई परम्परागत शिल्पी बेरोजगार हो रहे हैं। इनकी व्यवसाय/शिल्प आधारित पहचान धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही है, जो परम्परागत पेशों से जुड़े इन अनुसूचित जाति के लोगों के लिए एक गम्भीर समया है।

सन्दर्भ

1. Cox. O.C., *'Cast, Class and Race',* Monthly Review Press, New York, 1968, pp.60-61
2. Lal, S.K., *'Occupational Aspiration of Scheduled Cast Students, in Social Change',* Journal of the Councel for Social Development, New Delhi, vol. 5 No.1 & 2, March-June, 1976 p.26
3. Mukherji, R.K., *'Ancient India',* Indian press, Allahabad, 1956, pp.92-93
4. Mayor, A.C, *'Cast and Kinship in Central India',* University of California Press Anjels, 1965, pp. 61-63
5. Paneru, M., *'Changing Status of Backward Community in Rural Kumaon',* Nainital, 2004, Pg. 157
6. Ghurye, G.S., *' Caste, Class and Occupation',* Popular Publication, Bombay, 1961.
7. Srinivas M.N., *'Caste in Modern India and Other Essays,* Media Publishers Bombay, 1962.
8. Srinivas M.N., *'The Gazetteer of India,'* Vol. I, 1965.
9. Macluer RM and C.H. Page, *'Society : An Introduclory Analysis'.,* Mac Millan & Co. London, 1959
10. Mazumdar, D.N., *'Races and Cultures of India',* Asia Publishing House, Bombay, 1952, pg.284
11. श्रीनिवास, एम.एन., *'आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन',* राजकमल प्रकाशन, 2003, पृ.19
12. Shrinivas, M.N., *'India: Social Structure',* Hindustan Publishing Corporation, Delhi, 1980, p.3
13. यादव, एस. एण्ड आर.ए. शर्मा, *'भारतीय राजनीति',* हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली 1994, पृ.82
14. साह, आई., *'कुमाऊँनी लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन',* अप्रकाशित शोध प्रबंध, कुमाऊ विश्वविद्यालय, नैनीताल, 1986, पृ.26
15. Shukla A and S.K Najhoon, *'Studies on Kumaon Himalaya',* Indus Pulication Company, New Delhi, 1997.
16. Upadhaya H.C., *'Harijans of Himalaya',* Ghyanodya Publication, Nainital, 1990.
17. Rishley H.H., *'The People of India,'* W. Thakar and Company, London, 1915.
18. Ghurye, op. cit.
19. Desai M.D., *' Problems of Low Income Sections in Rural Areas'* in Rural Development for Weaker Sections.
20. Atkinson, T.A., The Himalayan gazzetire, vol. 3, part-2, Natraj Publishers Dehradun, 1996, pp.444 - 446
21. पाण्डेय त्रिलोचन, *'कुमायूनी लोकसाहित्य की पृष्ठभूमि',* साहित्य भवन आगरा, पृ. 65-66
22. Akkinson, op.cit
23. पाण्डे, बी.डी., कुमाऊँ का इतिहास, श्याम पब्लिकेशन, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, 1997, पृ,620
24. पाण्डे, बी.डी., पूर्वोक्त, पृ.621
25. पाण्डे, बी.डी., पूर्वोक्त, पृ.511
26. पाण्डे, बी.डी., पूर्वोक्त, पृ.513
27. देवी शीतल, *'आगरा सूबे का ग्रामीण समुदाय 17वीं शताब्दी एक अध्ययन'* राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष 19 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर, 2017, पृ. 111

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 20 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2018
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

ग्रामीण परिवेश में लैंगिक असमानता

❑ तृप्ति रानी

भूमिकाः कहने को तो हमारे समाज में महिलाओं को लेकर बहुत परिवर्तन आया है। किन्तु अब भी एक बड़ा हिस्सा इन परिवर्तनों की आंच से वंचित ही है। लड़कियां और लड़के एक दूसरे से भिन्न हैं पर इस कारण किसी भी मायने में कम या ज्यादा नहीं है। इसका यह अर्थ लगाना जल्दबाजी होगा कि इस विचार पर हमारे समाज में आम सहमति बन गयी है। यदि कुछ सहमति दिखाई देती है तो उसका आधार सोच समझ में कम और बात करने के आम तरीके में अधिक है। निम्न लिंग अनुपात और जन्म ले चुकी बेटियों के जीवन को अगर हम समझने की कोशिश करें तो हम समझ पाएंगे उस मानसिकता को जिसने इन समस्याओं को इतना विकराल बना दिया है। सवाल सिर्फ लड़की के अस्तित्व का नहीं है वरन समाज में निर्धारित कर दी गयी विभिन्न लैंगिक भूमिकाओं का है। स्त्रीलिंग की परिधि में शामिल और पुल्लिंग की परिधि से इतर मानी जाने वाली सामाजिक भूमिकाओं एवं धारणाओं का भी सवाल है। क्योंकि उससे पता चलता है कि हमारी मानसिकताएं कितना बदली हैं एवं कितना नहीं। भारत के सन्दर्भ में देखें तो नारी एक जटिल सामाजिक रचना है। मानव के रूप में वह पैदा भर होती है पर जन्म के साथ ही उसकी इस पुनर्रचना का उपक्रम संस्कृति के कठोर औजार से आरम्भ हो जाता है। बेटियों को पूरा इंसान न मानने की हमारी मानसिकता उस स्थिति को और बल देती है जिसकी बदौलत समाज के लिए वह अन्य बना दी जाती है जबकि वास्तविकता में उसकी स्थिति अनन्य की है। अतीत के सामाजिक ताने-बाने ने सम्मान और अधिकार के भाव से स्त्रियों को वंचित रखा । इस परिप्रेक्ष्य में समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता एक बड़ी चुनौती है। किसी भी समाज में समानता की यह आवश्यकता निःसंदेह नयी नही है परन्तु इस समानता को पाने की दिशा में किये जा रहे प्रयास निश्चित रूप से आधुनिक समय की पहचान हैं। इस आवश्यकता को समझते हुए इस लैंगिक भेद भाव की खाई को कम करने एवं आधी आबादी के लिए बेहतर जिंदगी को सुनिश्चित करने को सरकार द्वारा नए-नए कार्यक्रमों के द्वारा प्रयास किये जा रहे हैं। धीरे धीरे इस समस्या की ओर आधुनिक राष्ट्र और समाज की दृष्टि गयी एवं इस ओर संगठनात्मक राष्ट्र सरकारों ने भी उचित ध्यान दिया है। भारत में आजादी के बाद इस विषय पर विशेष ध्यान दिया गया है। संविधान में स्त्रियों और पुरषों को समान अधिकार दिए गये हैं। किन्तु यह समान अवसर अभी पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हो सके हैं। इसके लिये भारत सरकार अलग -अलग आयामों से विभिन्न योजनाओं के माध्यम से स्त्रियों के जीवन स्तर में सुधार लाने का प्रयास कर रही है। समाज में लिंग भेद समाप्त करने के लिए अनेक उपाय किये गए है संविधान में अनेक परिवर्तन किये गए और नियम कानून में भी अनेक बदलाव लाये गए जिससे नारी पुरुष के समकक्ष खड़ी हो सके। शिक्षा और कैरियर में विशेष आरक्षण देने के बाद भी आशानुरूप उनकी स्थिति में बदलाव नहीं हो रहा है। कारण इन सभी प्रयासों में स्त्री ने सरकारों और समाज से अपेक्षा की पर स्वयं को

किसी भी समाज में समानता की आवश्यकता निःसंदेह नयी नहीं है परन्तु इस समानता को पाने की दिशा में किये जा रहे प्रयास निश्चित रूप से आधुनिक समय की पहचान है। इस आवश्यकता को समझते हुए इस लैंगिक भेद भाव की खाई को कम करने एवं आधी आबादी के लिए बेहतर जिंदगी को सुनिश्चित करने को सरकार द्वारा नए-नए कार्यक्रमों के द्वारा प्रयास किये जा रहे हैं। धीरे धीरे इस समस्या की ओर आधुनिक राष्ट्र और समाज की दृष्टि गयी एवं इस ओर संगठनात्मक राष्ट्र सरकारों ने भी उचित ध्यान दिया है। भारत में आजादी के बाद इस विषय पर विशेष ध्यान दिया गया है। संविधान में स्त्रियों और पुरषों को समान अधिकार दिए है। किन्तु यह समान अवसर अभी पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हो सके हैं। प्रस्तुत अध्ययन भारतीय समाज में लैंगिक असमानता की इसी स्थिति को उजागर करने का एक प्रयास रहा है।

❑ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, ललित नारायण मिश्र मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

बदलने के लिए कभी प्रयत्न नहीं किया। महिलाओं को अपनी शक्ति और क्षमताओं का अनुभव स्वयं को कराना होगा। शक्ति का अनुभव करना एक मानसिक अवस्था है स्त्री का पुरुष से भिन्नता ही उसकी खूबसूरती है, शक्ति है। स्त्रियों को बौद्धिक स्तर पर सम्मान मिलना चाहिए केवल स्त्री होने के नाते नहीं। समाज से इतनी अपेक्षा होनी चाहिए कि उनके साथ कोई तुलनात्मक व्यवहार न हो। परिवार और समाज के पूरक के रूप में उन्हें लिया जाना चाहिए, हिस्से के रूप में नहीं।

कुछ हद तक शहरी महिलाओं ने अधिकारों का प्रयोग करना सीखा है अभिव्यक्ति के आधार को गांव देहात तक ले जाना होगा। आंतरिक भूभागों को देश की मुख्य धारा से जोड़ने का काम अभी बाकी है। सामाजिक और आर्थिक सुधार जब तक अंतिम व्यक्ति तक न पहुंचे, कुछ लोगों तक उनका पहुंचना सुधारों की असफलता ही कही जाएगी। कानून तभी प्रभावशाली होते हैं, जब उन्हें समाज की चेतना एवं सम्वेदनशीलता का अवलम्बन मिलता है। इसलिए समाज को अधिक संवेदनशील बनना होगा। लेकिन एक ऐसा समाज जहाँ झूठी इज्जत के लिए बच्चों के कत्ल किये जाते हैं, जहाँ अपनी बच्चियों को ही उनका जीवन साथी और व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता न हो, जहाँ नदियों को चुनरी ओढ़ाने का रिवाज तो हो, लेकिन स्त्री को नग्न घूमने में शान समझा जाय, देवी के रूप में बच्चियों को पूजा जाना धार्मिकता हो किन्तु नन्ही बच्चियों के साथ बलात्कार को न्याय संगत ठहराने को नित नए बहाने गढ़े जाते हों, वह समाज किसी स्त्री के साथ न्याय करेगा? जिस देश में सुअर, मगरमच्छ, उल्लुओं, बैलों और चूहों तक को देवताओं के अवतारों और वाहन का दर्जा प्राप्त है वहां स्त्रियों को सिर्फ इसलिए अपमानित किया जाता है कि उन्होंने अपनी पसंद के कपड़े पहन रखे हैं, स्त्रियों को सिर्फ इसलिए गर्भ में मार दिया जाता है कि वे कुल का दीपक नहीं हैं कि उसने घर की दहलीज से बाहर कदम रखने की कोशिश की।

स्त्रियों की प्रति हमारे विचारों और कर्म में यह विरोधभास हमेशा से हमारी संस्कृति का सबसे बड़ा संकट रहा है। आज जरुरी हो चला है कि हम बेटियों को पूर्ण इंसान समझना शुरू करें, उनके जीवन को बोझ न समझें, उनके सपनों को पंख दें, उनके हौसले को उड़ान दें, तो खुद ब खुद हम समझ जायेंगे बेटियां दरअसल जीवन से लबरेज रोशनी हैं, वो समतामूलक समाज के खूबसूरत सपनों को सच करने का हौसला रखती है।[1]

कई समाज सुधारकों ने यह विचार व्यक्त किया है कि महिला प्रगति के अभाव में समाज की प्रगति असंभव है। कार्ल मार्क्स ने यह भी कहा था की किसी काल में समाज की प्रगति को जानना हो तो उस काल विशेष में महिलाओं की स्थिति पर नजर डालो।[2] इस दृष्टि से देखा जाये तो भारतीय समाज की स्थिति काफी संकटपूर्ण और भयावह प्रतीत होती है। क्योंकि महिला शक्ति, प्रगति और नारी स्वातंत्र्य सभी की अनदेखी करते हुए हमारे समाज में कन्या भ्रूण हत्या बड़े पैमाने पर की जा रही है।

आज भी हमारे देश की जनसँख्या का दो तिहाई भाग को जो गांव में निवास करता है, अब तक शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं हो सकी है। साक्षरता का प्रतिशत विशेषकर महिलाओं में काफी कम है। ऐसे ग्रामीण पिछड़े समाज में प्रायः यह देखा गया है कि पुत्र प्राप्ति की लालसा में अधिकांश महिलाएं ही पुरुषों को प्रोत्साहित करती हैं। अन्य शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि एक नारी में भी पुत्री के प्रति सकारात्मक सोच का सर्वथा अभाव है।

आज देश की कुल आबादी में महिलाओं की संख्या केवल 48 प्रतिशत है इसका एक बड़ा हिस्सा अपने मूलभूत अधिकारों से बंचित है, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में।[3] आज देश में ऐसी महिलाओं की संख्या बहुत है जो शिक्षा, स्वास्थ, आर्थिक अवसर जैसे कई क्षेत्रों में पुरुषों की तुलना में निम्न दशा में है। इसके अलावा महिलाओं के प्रति जन्म से मृत्यु पर्यन्त हिंसा की घटनायें आम है। महिलाओं के प्रति हिंसा का सबसे घिनौना पक्ष यह है कि उनके प्रति दूसरे दर्जे की सामाजिक मानसिकता के कारण बेटियों के जन्म के दौरान, पूर्व या पश्चात उन्हें मार दिया जाता है।

आजादी के बाद के 70 सालों में देश में काफी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक प्रगति की है। आर्थिक मोर्चे पर तो इसकी प्रगति की गवाही दुनिया भर के अर्थशास्त्री दे रहे हैं। लेकिन बिडम्बना यह है कि हमारे देश को आजादी के इतने वर्ष बीतने के बाद भी आधी आबादी कहलाने वाली महिलाओं को बेहद सशक्त देखते हैं और पुरुषों के कंधे से कंधे मिलाकर होड़ करती भी दिखती हैं। लेकिन छोटे शहरों, कस्बों, या गांव का रुख करते ही उलट दिखाई देते हैं। वहाँ महिलाओं के पास ना तो आर्थिक आजादी नजर आती है और ना ही सामाजिक बंधनों से उन्हें मुक्ति मिलती है।

भारतीय संस्कृति और परम्परा में नारी, नारायणी एवं 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' कह कर नारी को विशेष सम्मान दिया गया है और उसके महत्व को रेखांकित किया गया है। महिलाओं को दिए जाने वाले सम्मान व स्त्रियों के प्रति हमारी संस्कृति कि आस्था व समर्पण भाव से हम सभी अवगत हैं। लेकिन इन आदर्शात्मक व शैक्षणिक बातों से दूर धरातल कि सच्चाई कुछ और ही स्थिति का वर्णन करती है। जन्म लेने के पूर्व से ले कर, जन्म लेने, किशोर अवस्था व प्रौढ़ अवस्था तक हर कदम पर भिन्न प्रकार कि चुनौतियों से दो चार होती इस देश की महिला आबादी अपने सहअस्तित्व को लेकर संघर्षरत है।

नारी तू नारायणी की बात करने वाले इसी भारत देश में 1961 से लेकर अब तक बाल लिंग अनुपात, जो शून्य से छह वर्ष कि उम्र तक के प्रति एक हजार बालकों की तुलना में बालिकाओं की संख्या दर्शाता है, घटता जा रहा है। 2011 की जनगणना के अनुसार यह आंकड़ा 919 पर आ गिरा है।[4]

उपर्युक्त आंकड़े यह दर्शाने के लिया काफी हैं कि जो देश तीव्र विकास करने और दहाई अंक की विकास दर को प्राप्त करने की नीतियां बनाने में व्यस्त है वहां की आधी आबादी किस प्रकार विकास से वंचित है। मुख्यधारा में महिलाओं की हिस्सेदारी सुनिश्चित करने के मामले में भारत अभी भी दुनियाँ के बहुत देशों से पीछे है। आर्थिक विकास और शिक्षा का स्तर बढ़ने के बाबजूद महिलाओं के पास इच्छा के अनुरूप निर्णय लेने की स्वत्रंतता बहुत कम है।

सबको बिना किसी भेदभाव के समान अधिकार देने का दावा करने वाले इस देश में लड़कियों को जन्म लेने से रोका जाना और उनके साथ जीवन पर्यन्त भेदभाव एक बड़ी त्रासदी है। महिलाओं को कमतर आंकने की हमारी सड़ी गली सोच के कारण ही सरकार को बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ जैसी योजनाओं को शुरू करना पड़ रहा है। हमारा संविधान लड़कियों को लड़कों के बराबर अधिकार देता है। लेकिन समाज लड़कियों के खिलाफ भेदभाव करता है। ज्यादातर परिवारों में शिक्षा पोषण और चिकित्सा सुविधाओं के मामलों में लड़कों को ही प्राथमिकता दी जाती है। पोषण की जरूरत पुरुषों की तुलना में महिलाओं को अधिक होती है। गांव हो या शहर महिलाएं घर के साथ साथ बाहर का काम भी करती हैं। बच्चे जनने और उनके पालन पोषण की जिम्मेदारी भी उसकी ही होती है। फिर भी महिलाओं को वह देखभाल और पोषण नहीं मिल पाता जो पुरुषों को मिलता है। देश की 50 प्रतिशत से अधिक महिलाएं कुपोषित हैं एवं उनमें आयरन की कमी आम बात है।[5]

ऐसा नहीं है कि बेटियों को लेकर उदासीनता केवल आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों में ही सीमित है, बल्कि निम्न मध्यमवर्ग या मध्यम वर्ग परिवार, जो भले ही आर्थिक रूप से ठीक हों, पर मानसिक अवधारणा यहां भी बेटियों को बोझ मानने की ही है।

किसी देश की प्रगति और वास्तविक स्थिति का यदि अध्ययन करना हो तो वहां महिलाओं की शिक्षा का स्तर देखना चाहिए। एक शिक्षित नागरिक से जो अपेक्षाएं की जाती हैं उसी के आधार पर समाज का विकास निर्भर करता है। यदि किसी समाज या राष्ट्र में पर्याप्त संसाधन नहीं हों तो उसकी प्रगति के सारे मार्ग अवरुद्ध हो सकते हैं। आज भारत में महिलाओं के बीच साक्षरता दर करीब 65 प्रतिशत है जिसमें ग्रामीण महिलाओं का हिस्सा और भी कम है। 2011 में महिलाओं की साक्षरता दर 64.46 प्रतिशत और पुरुष साक्षरता दर82.14 प्रतिशत दर्ज की गई है। बिहार में यह दर सबसे कम यानी 46.40 प्रतिशत उत्तर प्रदेश में 51.36 प्रतिशत हरियाणा में 56. 91 प्रतिशत तथा राजस्थान में 46.76 प्रतिशत है।[6]

वास्तव में अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में तमाम बेटियाँ शिक्षा से वंचित रह जाती हैं। कुछ बेटियां इसीलिए स्कूल नहीं जा पाती हैं कि उन्हें घर पर छोटे बहन भाइयों की देखभाल करनी होती है तो कुछ स्कूल जाने के बाद पांचवी और आठवीं तक पढ़ाई छोड़ देती हैं क्योंकि जागरूकता के तमाम प्रयासों के बावजूद उनके आसपास का परिवेश शिक्षा को लेकर अधिक जागरूक नहीं होता है। वहीं हमारे देश की कुछ बेटियां ऐसी भी हैं जो चाह कर भी उच्च शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाती हैं। क्योंकि उन्हें भी उच्च शिक्षा के लिए दूरदराज के स्कूलों में जाना पड़ता है जहां उनके परिवार के लोग इजाजत दे देते हैं, लेकिन उनके आसपास का माहौल उच्च शिक्षा ग्रहण करने देने में बाधा उत्पन्न करता है। हालांकि इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि भारत में महिला साक्षरता दर धीरे-धीरे बढ़ी है लेकिन यह भी सत्य है कि आज भी लड़कों की तुलना में बहुत ही कम लड़कियां स्कूल में प्रवेश लेती हैं और उनमें से कई बीच में ही अपनी पढ़ाई छोड़ देती है। अतः उच्च शिक्षा

के मामले में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की स्थिति कहीं अधिक खराब है।

स्वतंत्रता के बाद प्रथम पंचवर्षीय योजना से 12वीं पंचवर्षीय योजना तक बजट में शिक्षा के लिए अलग प्रावधान भी किए गए लेकिन लड़कियों के प्रति आम लोगों की स्वस्थ मानसिकता ना होने, स्कूलों, कालेजों में सुविधाओं के अभाव में लड़कों की अपेक्षा लड़कियां काफी पीछे रहीं। गांव के हालात तो और खराब रहे। एक आंकड़े के अनुसार देश के लगभग 6 लाख विद्यालयों में 86 प्रतिशत विद्यालय गांव में हैं[7] लेकिन अधिकतर ग्रामीण स्कूलों को सरकारी योजनाओं का लाभ नहीं पहुंच रहा है।

लड़कियों की शिक्षा के मामले में देश अब भी बहुत अच्छी स्थिति में नहीं है। इंडिया स्पेंड की पिछले दिनों आई रिपोर्ट के अनुसार 2012-13 में व्यवसायिक एवं तकनीकी शिक्षा तथा प्रशिक्षण के माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों में लड़कियों की संख्या केवल 7 प्रतिशत थी। इनमें भी ज्यादातर नर्सिंग एवं सिलाई सीखने में लगी थीं। शहरों में भी केवल 2.9 प्रतिशत लड़कियाँ तकनीकी शिक्षा ले रही थीं।[8] इतना ही नहीं उच्च शिक्षा बीच में ही छोड़ने वाली लड़कियों की संख्या भी बहुत अधिक है और केरल तथा गुजरात जैसे समृद्ध कहलाने वाले राज्य भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। इससे निपटने के लिए लड़कियों की शिक्षा के लिए अधिक से अधिक प्रयास करने आवश्यक है।

महात्मा गांधी जी ने वर्षों पहले कहा था यदि आप एक आदमी को शिक्षित करते हैं, तो मूल रूप से आप एक व्यक्ति को ही शिक्षित करते हैं, लेकिन जब आप एक महिला को शिक्षित करते हैं, तो आप पूरे परिवार एवं समाज के साथ-साथ एक राष्ट्र को भी शिक्षित बनाते हैं। यदि हमें अपने राष्ट्र को ऊंचा उठाना है तो हमें बालिकाओं को शिक्षा के माध्यम से सशक्त बनाने की आवश्यकता पर जोर देने की आवश्यकता है।[9]

इस सब के अलावा महिलाओं के कार्यस्थल की स्थिति भी उनकी धुंधली तस्वीर को सामने लाती है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन यानी आईएलओ ने कृषि कर्म को स्वास्थ्य की दृष्टि से सबसे जोखिम भरा धंधा माना है। कारण यह है कि इसमें कर्मियों को खुले में खराब मौसम के बावजूद तमाम तरह के संक्रामक तत्वों के बीच काम करना होता है। विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार हिमालय इलाकों में लगभग एक एकड़ खेत में हर साल एक बैल 1064 घंटे, पुरूष 1212 और एक महिला खेतिहर 3485 घंटे काम करते हैं। इनमें से 10 फ़ीसदी से भी कम औरतें ही खेत की मालकिन हैं।[10]

अधिकतर महिलाएं मौसमी कामगार दिहाड़ी पर ही काम करती है। दिहाड़ी भी न्यूनतम से कम ही होती है या वे मनरेगा जैसी सरकारी योजनाओं के अंतर्गत खेतीबाड़ी का काम कर रही हैं। यू.एन. के रपटों के अनुसार भारत जैसे विकासशील देशों में आज 60 से 80 फ़ीसदी खाद्य उत्पादन महिलाएं करती हैं।[11] आर्थिक व्यवस्था के कारण हर साल 3 महीने लगातार प्रदूषित वातावरण में मिट्टी, गोबर, कीचड़, पानी और कीड़े मकोड़े से भरी जंगली कांटों के बीच काम करना हमारी खेतिहर महिलाओं की स्वास्थ्य की दशा को लगातार बद से बदतर बना रहा है।

अगर भारत में कामकाजी महिलाओं की स्थिति का अवलोकन किया जाए तो स्पष्ट होता है कि उनके प्रति संपूर्ण कार्य व्यवस्था असंवेदनशील है। देश में एक जैसा काम करने के बाद भी महिलाओं को पुरुषों की तुलना में 25 प्रतिशत कम वेतन मिलता है। 68.5 प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि वे अपने कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव को लेकर चिंतित रहती हैं। 62.4 प्रतिशत महिलाएं यह भी मानती हैं कि उनके पुरुष सहकर्मियों को जल्दी प्रमोशन मिलता है।[12] एक तरफ हम यह मानकर चल रहे हैं कि स्त्री आत्मनिर्भर हुई है और दूसरी ओर यह आंकड़े उनकी खराब स्थिति को बता रहे हैं। दुनिया की लगभग आधी आबादी महिलाओं की है, फिर भी इंटरनेट उपयोग करने वाली महिलाओं का अनुपात पुरुषों की तुलना में 12 प्रतिशत कम है। जीएसएमए (ग्लोबल सिस्टम मोबाइल एसोसिएशन) की 2015 की कनेक्टेड वूमेन रिपोर्ट बताती है कि निम्न या मध्य आय वर्ग वाले देशों में पुरुषों की तुलना में 14 प्रतिशत कम महिलाओं के पास अपना मोबाइल है भारत में भी हालात बेहतर नहीं है। इंटरनेट इस्तेमाल करने वाली आबादी में महिलाओं की हिस्सेदारी मात्र 29 प्रतिशत है।[13] इसका बड़ा कारण महिलाओं के सामने पुरुषों का द्वारपाल के रूप में खड़े रहना है। फोन इस्तेमाल करने, अपने पास मोबाइल रखने, दोस्त व परिजनों से बात करने जैसे सभी कामों के लिए उन्हें पुरुषों की अनुमति लेनी पड़ती है।

साहित्य का पुनरावलोकन : पंकज कुमार चौधरीः (2012) ने अपने शोध पत्र "सामाजिक असमानता के परिप्रेक्ष्य में दरभंगा नगरीय परिवेश की अनुसूचित जाति

की महिलाओं की परिस्थिति का अध्ययन'' में कहा है कि अनुसूचित जाति की महिलाओं के बीच विकास की रोशनी के नहीं पहुँच पाने के कारण इनकी स्थिति निम्न है।

जब तक अनुसूचित जाति की महिलाओं की परिस्थिति, शिक्षा, अर्थव्यवस्था एवं राजनीतिक व्यवस्था में उच्चवर्ग की महिलाओं के समान नहीं हो जाती तब तक समाज में समानता की स्थिति उत्पन्न नहीं होगी।[14]

मीणा राय का "सामाजिक असामानता के परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण हरिजन महिलाओं की सामाजिक परिस्थिति का अध्ययन'' ग्रामीण हरिजन महिलाओं की परिस्थिति की लैंगिक असमानता के सन्दर्भ में अध्ययन प्रस्तुत करता है कि अब हरिजन समाजों में भी जागरूकता आयी है एवं यदि किसी दबंग व्यक्ति द्वारा इनके शोषण का प्रयास किया जाता है तो उसके विरोध में खुलकर संघर्ष करने की भी हरिजनों में चेतना आयी है।[15]

मणिशंकर झाः द्वारा प्रस्तुत शोध "जेंडर इनइक्वालिटीज़ इन सोसाइटी एंड एजुकेशन : ए स्टडी आफ़ स्कूल गोइंग गर्ल्स आफ़ दरभंगा डिस्ट्रिक'' का लक्ष्य स्कूल जानेवाली लड़कियों या बच्चियों की सामाजिक पृष्ठ्भूमि अभिभावकों का अपनी बच्चियों की शिक्षा के प्रति जागरूकता का स्तर, ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा में लैंगिक भेदभाव का स्तर एवं अपनी बच्चियों की शिक्षा के प्रति अभिवावकों की सामान्य सोच एवं मानसिकता को जानना है। अध्ययन निष्कर्ष बताते हैं कि निम्न जाति की लड़कियां विशेषतः अनुसूचित जाति में स्कूल में अध्ययन के अवसर कम होते है।[16]

मैरी मुथु शिवकुमार (2008) के शोध शीर्षक ''जेंडर डिस्क्रिमिनेशन एंड विमेंस डेवलपमेंट इन इंडिया'' में लैंगिक भेद-भाव और महिला विकास के मुद्दे पर विस्तार से बताया गया है। दुनियाँ की पूरी आबादी का लगभग आधा हिस्सा महिलाएं हैं एवं विश्व के सभी कार्यो का दो तिहाई कार्य उनके द्वारा सम्पादित होता है। फिर भी विश्व की कुल आय का दसवां भाग या हिस्सा ही उन्हें मिल पता है । करीब दो तिहाई महिलाऐं अशिक्षित हैं एवं विश्व की कुल संपत्ति का केवल एक प्रतिशत ही उनके पास है या उनकी वे मालकिन हैं। इस पत्र में लैंगिक भेदभाव के अर्थ, कारण, विकास में महिलाओं के महत्व, इनके लिए बने कानूनों एवं लैंगिक भेदभाव को काम करने के उपायों जैसे शिक्षा, रोजगार, आर्थिक स्वतंत्रता, सशक्तीकरण, आत्मविश्वास, निर्णय लेने की योग्यता या क्षमता इत्यादि कि चर्चा की है। निष्कर्ष में बताया की अगर हम महिलाओं को लैंगिक भेदभाव जैसी समस्याओं से प्रभावित न करें तो ही महिलायें अपनी पूरी क्षमता, बुद्धि एवं ज्ञान के द्वारा परिवार, राष्ट्र और समस्त विश्व को विकास की प्रक्रिया esa viuk ;ksxnku ns ik,axsA[17]

बनारसी लाल और शाही अहमद (2015) ने अपने शोध ''जेंडर डिस्क्रिमिनेशन इन रूरल एरियाज'' में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी से जुड़े मुद्दे एवं महिला उत्थान में 73 वें संविधान संशोधन की भूमिका और प्रभाव पर चर्चा की है।

अपने शोध में स्पष्ट किया है की 73वां पंचायती राज अधिनियम के लागू होने के बाद भारत के विभिन्न प्रदेशों में शिक्षा, शिक्षण या परीक्षण के क्षेत्र में एक नए दौर का आरम्भ हुआ है। उनके अनुसार बिहार में पंचायती राज में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है। फलतः जन प्रतिनिधियों के द्वारा महिलाओं की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। सर्व शिक्षा योजना के अंतर्गत भारी संख्या में महिलाओं को रोजगार भी प्राप्त हुआ है। अतः इससे शिक्षा तथा प्रशिक्षण में एक नई गतिशीलता उत्पन्न हुई है।[18]

एम कादिर दोगान, टोलगा यूरेट(2011): द्वारा लिखित शोध पत्र"द काजेज आफ़ जेंडर इनइक्वालिटी इन कालेज एजुकेशन इन तुर्की" में कालेज शिक्षा में महिलाओं की कार्य सहभागिता के कारणों का विश्लेषण छात्र चुनाव एवं प्लेसमेंट वयवस्था के आंकड़ों (वर्ष 2005) के आधार पर किया है। कालेज शिक्षा में महिलाओं की निम्न उपस्थिति को तालिका के माध्यम से स्पस्ट किया गया है एवं इसके लिए सात कारण बताये गए हैं। तालिका द्वारा स्पष्ट परिणाम बताता है कि प्राथमिक एवं द्वितीयक शिक्षा दर में महिलाओं की सहभागिता दर पुरुष की सहभागिता दर का 9 प्रतिशत ही है, जबकि पुरुष सहभागिता दर का प्रतिशत 73 है। तुर्की में प्लेसमेंट व्यवस्था के अंतर्गत छात्र-छात्राओं को अपने ओ.एस.एस. स्कोर प्राप्त करने के बाद उसे केंद्रीय विभाग को एक वरीयता फार्म जमा करना पड़ता है, जिसमे में उन्हें अपनी इच्छा के अनुरूप पाठ्यक्रम एवं रैंक का चुनाव करने होते हैं। वरीयता फार्म में पुरुष विद्यार्थी के लिए औसतन 14 पाठ्यक्रम संख्या रखने की हिदायत होती है एवं महिला अभ्यर्थियों के लिए यह संख्या 13 तक सीमित होती है। निष्कर्ष रूप में यह सुझाव दिया गया है कि चूँकि शाब्दिक एवं विदेशी भाषा स्कोर में महिलायें पुरुष की अपेक्षा अधिक सुग्राही होती हैं, जबकि इसकी

क्षमता सिर्फ 20.2 प्रतिशत ही है। इसीलिए इसे बढ़ाना चाहिए एवं वरीयता फार्म में महिलाओं की अधिक संख्या में पाठ्यक्रम चुनने की आजादी दी जानि चाहिए।[19]

अनीश कुमार मुखोपाध्याय ने अपने शोध पत्र "जेंडर इनइक्वालिटि एंड चाइल्ड न्यूट्रिशनल स्टेटसः ए क्रॉस कंट्री एनलाइसिस" में लिखा कि विकासशील देश के लिए भोजन सम्बन्धी सुरक्षा महिलाओं के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। कुपोषण एवं स्वास्थ संबंधी संकटों से वे पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्रभावित होती हैं। वास्तव में यह स्थिति घरेलू संसाधनों का भेदभावपूर्ण बटवारे का परिणाम होता है।

प्रस्तुत शोध बताता है कि महिला सशक्तीकरण, भुखमरी में कमी, शिक्षा के भविष्य की आधारभूत आवश्यकताओं, स्वास्थ, आय आदि को सीधा प्रभावित करता है। प्रस्तुत अध्ययन उपर्युक्त समस्याओं का विश्लेषण करता है एवं दो अलग-अलग समयावधि के बीच तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास करता है। अध्ययन विशेष रूप से यह जानने का प्रयास करता है कि किस माध्यम से विपरीत राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में आहार का पोषक या पोषण स्तर या स्थिति लिंग के साथ जुड़े विशेष उन्नति या प्रगति संकेतक के क्षेत्र में सुधार को दिखाए या प्रदर्शित करे। इसके साथ ही इसमें खाद्य सुरक्षा, लैंगिक असमानता एवं विकास के बीच परस्पर सम्बंधित क्रमिकता के बारे में विचार व्यक्त करने का प्रयास करता है एवं इसके अंतर्गत लैंगिक असमानता एवं पोषण स्थिति के लिए उत्तरदायी कई कारकों को वर्णित किया गया है।

अर्चना श्रीवास्तवः(2011) द्वारा लिखित पुस्तक "नारीवाद, महिला सशक्तिकरण एवं लैंगिक न्याय" में मुख्यतः नारीवादी आंदोलन एवं लैंगिक न्याय के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में लेखिका के अनुभवों का सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया है।

आगरा शहर के कतिपय चयनित शैक्षणिक संस्थाओं एवं चिकित्सा संस्थाओं में सेवारत महिलाओं का आनुभविक समाजशास्त्रीय शोधकार्य है। सेवारत महिलाओं से सम्बंधित पारिवारिक एवं परिवार के बाह्य क्षेत्रो में लैंगिक न्याय की स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।[20]

शोध के उद्देश्य

1. लैंगिक भेदभाव को ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में समझना
2. महिलाओं की अपने अधिकारों के प्रति उदासीनता के कारणों को जानना
3. लैंगिक भेदभाव पर महिलाओं की राय जानना
4. लैंगिक भेदभाव और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के परस्पर सम्बन्धों को स्पष्ट जानना

शोध प्राकल्पना

1. निम्न जाति के लोग लैंगिक असमानता से अधिक प्रभावित हैं।
2. ग्रामीण एवं अशिक्षित इससे अधिक प्रभावित हैं।
3. तुलनात्मक दृष्टि से अधिक उम्र की महिलाएं भेदभाव बढ़ाने में सहायक होती हैं।
4. पुरूष लैंगिक भेदभाव को बनाये रखना चाहते हैं।

शोध प्रारूप

प्रस्तुत शोध कार्य मुख्यतः वर्णात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित है। शोध में बिहार राज्य के मुजफ्फरपुर जिले के तेहवारा गांव का अध्ययन किया गया है। सुविधाजनक निदर्शन पद्धति के द्वारा उत्तरदाताओं के रूप में दो सौ महिलाओं का चयन किया गया है। अध्ययन की इकाई के रूप में महिलाओं से साक्षात्कार अनुसूची एवं सामान्य अवलोकन द्वारा अध्ययन सम्बन्धी सूचनाएं प्राप्त की गई हैं। अध्ययन के अंतर्गत द्वितीयक श्रोतों की भी सहायता ली गई है। द्वितीयक श्रोतों के अंतर्गत पुस्तकालय, सम्बन्धी शोध, इंटरनेट, समाचार पात्र, पत्रिकाएं आदि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के अंतर्गत विभिन्न धर्मो, वर्गो एवं जातियों में व्याप्त लैंगिक असमानता का अध्ययन किया गया है।

सूचनादाताओं की सामाजिक-साँस्कृतिक पुष्ठभूमिः प्रस्तुत शोध के लिए निदर्शन पद्धति के आधार पर 200 उत्तरदात्रियों का चयन किया गया है। इनके सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य संबंधित पृष्टभूमि का प्रमाणिक सूचनाओं के आधार पर विवेचन किया गया है। चूँकि तथ्यों के सत्यापन में और सूचनाओं के विवेचन में उत्तरदाताओं की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना अपेक्षित होता है।

आयु : व्यक्ति के विचारों को निर्धारण में आयु एक महत्वपूर्ण घटक होता है। अतः अध्ययन के अंतर्गत सूचनादात्रियों की आयु को जानने का प्रयास किया गया। विभिन्न उम्र की महिलाओं को अध्ययन में सम्मिलित किया गया है। जिसमें सबसे अधिक संख्या 35 से अधिक उम्र की महिलाओं की है।

शिक्षा : व्यक्ति के विचारों एवं दृष्टिकोणों पर शिक्षा की भूमिका अतिशय प्रभावी होती है। अतः अध्ययन में सूचनादात्रियों की शैक्षिक स्थिति पर विचार किया गया। अध्ययन में देखा गया कि 60 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ

निरक्षर और 40 प्रतिशत साक्षर हैं। जो पांचवी तथा दसवीं कक्षा से ऊपर की पढ़ाई नहीं कर पाई।

परिवार का स्वरूप : मानव जीवन में परिवार सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्धारण में अद्वितीय भूमिका का निर्वहन करती है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में सूचनादात्रियों की पृष्ठभूमि के अंतर्गत उनके परिवार की संरचना पर भी विचार किया गया। अध्ययन में एकाकी परिवार वालों की संख्या संयुक्त परिवार से आनेवाली उत्तरदात्रियों की तुलना में अधिक नहीं है। 55 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के परिवार का स्वरूप संयुक्त है जबकि 45 प्रतिशत एकाकी परिवार से जुड़ी हुई हैं।

आर्थिक प्रस्थिति : सूचनादात्रियों की आर्थिक प्रस्थिति पर विचार करते हुए देखा गया कि 70 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ किसी भी प्रकार के रोजगार से संबंधित नहीं हैं। जबकि 30 प्रतिशत महिलाएं उत्तरदात्रियाँ सरकारी एवं गैर सरकारी सेवा क्षेत्रों में रोजगार से जुड़ी हुई हैं। स्पष्ट है कि अधिकांश महिलाएं घरेलू कार्यों में है अथवा गृहिणी हैं।

विश्लेषण

सारणी संख्या - 1

आयु और लैंगिक असमानता

उम्र समूह स्तर	अभिमत			
	हाँ		नहीं	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
20 से 35	50	25	35	17.5
35 से अधिक	70	35	45	22.5
योग	120	60	80	40

तालिका संख्या 1 का अध्ययन करने पर पता चलता है कि स्त्रियों के पुरूषों के आधीन होने की व्यवस्था से अध ययन की अधिसंख्यक (60 प्रतिशत) महिलाएं सहमति व्यक्त करती हैं जिनमें अधिक आयु वर्ग की महिलाओं की संख्या (35 प्रतिशत) कम आयु की महिलाओं (25 प्रतिशत) से अधिक है जो इस तथ्य की ओर इशारा करते है एवं इस शोध प्राकल्पना को सही ठहराते है कि अधिक उम्र कि महिलाएं भेद-भाव बढ़ाने में सहायक होती है।

सारणी संख्या - 2

शिक्षा और लैंगिक असमानता

पारिवारिक निर्णयों में स्त्रियों की राय

शैक्षिक स्थिति	हाँ		नहीं	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
शिक्षित	58	29	22	11
अशिक्षित	40	20	80	40
योग	98	49	102	51

महिलाओं में शिक्षा की कमी के कारण पारिवारिक निर्णयों में उनसे सलाह नहीं ली जाती है जैसा कि प्रस्तुत तालिका से स्पष्ट हो रहा है कि अध्ययन के अंतर्गत अधिसंख्यक (51 प्रतिशत) सूचनादात्रियों से पारिवारिक निर्णय में राय नहीं ली जाती जिसमें अधिक संख्या (40 प्रतिशत) अशिक्षित सूचनादात्रियों की है जबकि शिक्षित महिलाओं की संख्या मात्र 11 प्रतिशत है। उससे अध्ययन की उपकल्पना लैंगिक असमानता से अशिक्षित महिलाएं अधिक प्रभावित हैं कि पुष्टि होती है।

सारणी संख्या - 3

जाति और लैंगिक असमानता

लड़कियों की तुलना में लड़कों को अधिक महत्व

जाति	हाँ		नहीं	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
उच्च जाति	30	15	30	15
पिछड़ी जाति	40	20	15	7.5
अनुसूचित जाति	40	20	15	7.5
अन्य	10	5	20	10
योग	120	60	80	40

तालिका संख्या 3 के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि निम्न जाति के लोग लैंगिक असामानता से अधिक प्रभावित है कुल 200 उत्तरदाताओं में उच्च जाति के 60 उत्तरदाताओं में से 30 ने सकारात्मक जबकि पिछड़ी जाति के 55 उत्तरदातों में से 40 और अनुसूचित जाति के 55 उत्तरदातों में से 40 ने सकारात्मक उत्तर दिया है। इससे स्पष्ट होता है कि तुलनात्मक रूप से निम्न जाति की महिलाएं लैंगिक असमानता का अधिक समर्थन करती हैं। इससे अध्ययन की उपकल्पना कि निम्न जाति के लोग लैंगिक असमानता से अधिक प्रभावित हैं की पुष्टि होती है।

सारणी संख्या - 4

पुरूषों द्वारा लैंगिक असमानता बनायें रखना होता है

उत्तर	संख्या	प्रतिशत
हाँ	134	67
नहीं	66	33
योग	200	100

प्रस्तुत प्रश्न के आधार पर महिला उत्तरदात्रियों द्वारा

लैंगिक असमानता के बारे में पुरुषों के सोच एवं मानसिकता को सामने लाया गया है। तालिका के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि इस व्यवस्था को बनाये रखने में पुरुष मानसिकता ज्यादा सहायक होती है चूँकि सकारात्मक पक्ष में उत्तर देने वालों की संख्या 134 अर्थात् 67 प्रतिशत है जो कि नकारात्मक पक्ष में उत्तर देने वालों की संख्या 66 अर्थात् 33 प्रतिशत से अधिक है। उससे अध्ययन की उपकल्पना कि पुरूषों द्वारा लैंगिक असमानता को बनाये रखना होता है कि संपुष्टि होती है।

निष्कर्षः भारतीय समाज एक ग्रामीण प्रधान समाह है जिसमें महिलाओं की उन्नति को बिना किसी भी समाज या देश की प्रगति की बातें हास्यास्पद प्रतीत होती है। महिला सुधारवादी कानूनों, सशक्तिकरण कार्यक्रमों एवं विभिन्न जागरूकता अभियानों के बावजूद भी ग्रामीण क्षेत्रो में आशानुरूप सुधार देखने को नहीं मिल रहे हैं। महिलाओं को जागरूक और सचेत बनाने की प्रक्रिया में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है । जितनी तेजी से हमारे गावों की महिलाओं में शिक्षा की रौशनी फैलेगी , उतनी ही तेजी से वह हर मुद्दे पर न केवल जागरूक बल्कि सक्रिय होती जाएँगी। ऐसी स्थिति में महिलाओं की दशा एवं दिशा को सुधारने के लिए इस विषय पर गंभीर विश्लेषण एवं शोध की आवश्यकता है जिससे इनसे जुड़े उन तमाम पहलुओं पर ध्यान आकर्षित किया जा सके, जिनको और बेहतर बनाने का विकल्प हो और महिलाओं में चेतना जगा कर उनके अधिकारों से अवगत करने की आवश्यकता है क्योंकि यह समय की मांग है एवं इसी में समाज का कल्याण है।

सन्दर्भ

1. आर्येन्दु अखिलेश, *'बालिका सशक्तिकरणः भ्रम और सत्य'*, कुरुक्षेत्र, जनवरी, 2016 अंक 3, नई दिल्ली, भारत, पृ. 36
2. झा, मणिशंकर उद्‌धृत, *'जेंडर इनइक्वालिटीज़ इन सोसाइटी एंड एजुकेशन'*, ल. ना. मि. विश्वविद्यालय, अप्रकाशित पी-एच. डी. शोध प्रबंध, पृ. 30-35
3. कुमारी, सोनी *'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ, बालिकाओं को सशक्त करने कि अनूठी पहल'*, कुरुक्षेत्र, जनवरी, 2016 अंक 3, नई दिल्ली, पृ. 28
4. कश्यप, जगन्नाथ, *'समग्र प्रयास से ही सुधरेगी बेटियों की दशा'*, कुरुक्षेत्र, जनवरी, 2016, अंक 3 नई दिल्ली, पृ. 5
5. शुक्ला, पश्यन्ति(2016)ः भारत में महिलाओं की सामाजिक आणथक स्थिति, कुरुक्षेत्र, जनवरी अंक.3, नई दिल्ली, भारत, पृ. 41
6. कुमारी, सोनी, पूर्वोक्त, पृ. 28
7. आर्येन्दु अखिलेश, *'शिक्षित बालिका से ही होगा सशक्त देश'*, कुरुक्षेत्र, जनवरी, 2016 अंक 3, नई दिल्ली, पृ. 15
8. सक्सेना ऋषभ, *'बालिका सशक्तिकरण हेतु योजनाओ का आंकलन'*, कुरुक्षेत्र, 2016, जनवरी अंक 3, नई दिल्ली, पृ. 10
9. पासी, सांतोस जैन एवं सुरिन्द्रा जैन, *'बालिका सशक्तिकरण में बालिकाओं के स्वास्थ्य एवं पोषण का महत्व'*, कुरुक्षेत्र, जनवरी अंक 3 नई दिल्ली, भारत, पृ. 19
10. पाण्डे मृणाल, *'महिला खेतिहर की भी सुध लीजिये'*, हिदुस्तान, दैनिक पत्रिका 25 जुलाई पृ. 8
11. वही, पृ. 8
12. सारस्वत, ऋतु, *'क्या काम काज की बाधादौड़ ही सशक्तिकरण है'*; हिदुस्तान, दैनिक पत्रिका, 22 जुलाई पृ. 14
13. मंजर, ओसामा, *'डिजिटल दुनियां में अब भी पीछे क्यों है महिलाए'*; हिदुस्तान , दैनिक पत्रिका , 25 नवंबर, पृ. 14
19. चौधरी, पंकज कुमार, *'सामाजिक असमानता के परिप्रेक्ष्य में दरभंगा नगरीये परिवेश की अनुसूचित जाति की महिलाओं की परिस्थिति का अध्ययन'*, ल. ना. मि. विश्व विद्यालय अप्रकाशित पी-एच. डी. शोध प्रबंध, पृ. 5-10
20. राय, मीणा, *'सामाजिक असमानता के परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण हरिजन महिलाओं की सामाजिक परिस्थिति का अध्ययन'*, ल. ना. मि. विश्व विद्यालय अप्रकाशित पी- एच. डी. शोध प्रबंध पृ. 15-20
22. शिवकुमार, मैरी मुथु, *'जेंडर डिस्क्रिमिनेशन एंड वीमेंस डेवलपमेंट इन इंडिया'*,2008 shivkumarmarimuthu@yahoo-co-in
23. लाल, बनारसी और शाही अहमद, *'जेंडर डिस्क्रिमिनेशन इन रूरल एरियाज'*, डेली एक्सेलसियर - 21/05/2015
24. दोगन एम कदीर और टोल्गा यूरेट, *'द काजेज आफ़ जेंडर इनइक्वालिटी इन कालेज एजुकेशन इन तुर्की'*, प्रोसडीए-सोशल एंड बिहेवियरल साइंस, वाल्यूम 15, 2011, पृ. 611-695.
25. मुखोपाध्याय, अनीश कुमार, *'जेंडर इनक्वालिटी एंड चाइल्ड न्यूट्रिशनल स्टेटस'*, ए क्रास कंट्री एनालिसिस इंडियन कौंसिल आफ़ सोशल साइंस रिसर्च, सेंटर फार स्टडीज इन सोशल साइंसेज, कलकत्ता, पृ. 2-8
26. श्रीवास्तव, अर्चना, *'नारीवाद महिला सशक्तिकरण एवं लैंगिक न्याय'*, श्रीयांशी प्रकाशन आगरा, 2011 पृ. 5-10
20. शुक्ला, पश्यन्ति पूर्वोक्त, पृ. 41

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

आदिवासियों की धार्मिक विरासत– झारखण्ड के संदर्भ में

❑ **ब्रह्मनाथ**

मनुष्य अपनी सृष्टि से धर्म से जुड़ा रहा है। धर्म से मनुष्य की गतिविधियाँ और उपलब्धियाँ उनकी सोच आदि सब कुछ प्रस्फुटित, संचित और नियंत्रित हुई है। कहा जा सकता है कि धर्म ने मनुष्य को काफी प्रभावित किया है और उसके जीवन को नई दिशाएँ दी हैं। अतः मानव सभ्यता और संस्कृति के क्रमिक विकास में धर्म की बहुत बड़ी भूमिका रही है। संथाल विद्रोह की पृष्ठभूमि में भी धर्म की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इसके दूरदर्शी नेता विदेशी शासक से मुक्त होना चाहते थे, और गरीब वर्ग का राज स्थापित करना चाहते थे। उनके द्वारा यह प्रचारित किया गया कि उन्हें दैवी शक्ति 'ठाकुर' का दर्शन हुआ और उन्हें इस बात का निर्देश दिया कि वे अपनी दासता की जंजीर को तोड़ने की हिम्मत करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आदिवासियों को हथियार उठाने के लिए उत्साहित करें, क्योंकि दुश्मनों के बंदूक की गोलियाँ पानी हो जाएगीं और उनका शासन समाप्त हो जाएगा।[1] आज का सभ्य समाज इन बातों को नहीं मानता है, रीति-रिवाज पुराने मूल्यों आदि से परे एक प्रतिस्पर्धित जीवन व्यतीत कर रहा है जिसमें उन्हें अनेक चिंता, तनाव और कष्ट से गुजरना पड़ रहा है, पर कम से कम संथाल समाज इन अभिशापों से बचा हुआ है, भले ही उसे बोंगा का अभिशाप ही क्यों न सहन करना पड़े। सभ्यता का अभिप्राय बोंगा के अभिशाप से कठोर नहीं है। प्रस्तुत आलेख इसी तथ्य को उजागर करने के प्रयास पर आधारित है।

मनुष्य अपनी सृष्टि से धर्म से जुड़ा हुआ है। धर्म से मनुष्य की गतिविधियाँ और उपलब्धियाँ उनकी सोच आदि सब कुछ प्रस्फुटित, संचित और नियंत्रित हुई हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि धर्म ने मनुष्य को काफी प्रभावित किया है और उसके जीवन को नई दिशाएँ दी है। अतः मानव सभ्यता और संस्कृति के क्रमिक विकास में धर्म की बहुत बड़ी भूमिका रही है।

संथाल विद्रोह की पृष्ठभूमि में भी धर्म की भूमिका महत्वपूर्ण थी। इसके दूरदर्शी नेता विदेशी शासक से मुक्त होना चाहते थे, और गरीब वर्ग का राज स्थापित करना चाहते थे। उनके द्वारा यह प्रचारित किया गया कि उन्हें दैवी शक्ति 'ठाकुर' का दर्शन हुआ और उन्हें इस बात का निर्देश दिया कि वे अपनी दासता की जंजीर को तोड़ने की हिम्मत करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आदिवासियों को हथियार उठाने के लिए उत्साहित करें, क्योंकि दुश्मनों के बंदूक की गोलियाँ पानी हो जाएगीं और उनका शासन समाप्त हो जाएगा।[1]

संथालों का विश्वास है कि सिदो को ''मरांगबुरू'' ने दर्शन दिया था– एक दिन जंगल में उन्हें दूध के समान साफ कपड़ा पहने हुए एक स्त्री का भी दर्शन हुआ था जिसने सिदो को आदिवासियों का राजा घोषित किया एवं संथालों का दुखः दूर करने को कहा। इसके बाद वह स्त्री अर्न्तध्यान हो गयी। यह ''जोहर एरा'' देवी थी। ऐसे नाजुक समय में धार्मिक विश्वासों, मान्यताओं, भावनाओं और घोषणाओं ने आग में घी का काम किया और विद्रोह को प्रज्वलित किया। प्रसिद्ध विद्वान के. के. बसु प्रसिद्ध कारण को महत्वपूर्ण नहीं मानते पर प्रख्यात इतिहासकार के0 के0 दत्त का विचार है, कि ''धर्म अक्सर औसत लोगों में एक बड़ी उद्दीपनकारी ताकत के रूप में काम करता है और यहाँ की चमत्कारी देवी प्रकरण की कथा ने संथालों का अपने दुःख तकलीफों को दूर करने के लिए तत्काल खुली कार्रवाई'' करने के लिए प्रेरित किया। उनके भव्य ठाकुर का दिव्य दर्शन केवल एक ही बार नहीं हुआ कुछ समय तक सप्ताह में एक दिन अपने प्रिय पटशिष्यों को वे अपनी उपस्थिति से अवगत कराते रहें[2] एक बार एक लपट या आग में एक किताब, कुछ सफेद कागज और एक चाकू के साथ दूसरी बार .... एक ठोस गाड़ी के पहिये के आकार में किताब के रूपहले पृष्ठों पर तथा कागज के एक टुकड़े सफेद पत्तियों पर लिखे, कुछ शब्द लिखे हुए थे। बाद में पढ़ने एवं व्याख्या करने में सक्षम पढ़े-लिखे लोगों ने उनका अर्थ निकाल कर बताया। लेकिन सिदो और कान्हू के उनके अर्थ का पर्याप्त संकेत पहले ही मिल चुका था।[3]

सिदो और कान्हू ने अपने घर की बाड़ी में ठाकुर की एक मूर्ति खड़ी करके उनकी कायदे से पूजा करने की व्यवस्था की। दूर-दूर गाँव से आदिवासी लोग चावल, दूध, मेमने आदि चढ़ावा लेकर आने लगे। दोनों भाइयों

❑ शोध अध्येता, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय,भागलपुर (बिहार)

को ठाकुर का दूत माना जाने लगा। इसी बीच शाल पेड़ की एक टहनी के प्रतीक द्वारा उक्त रहस्यमयी प्रकरण का प्रचार किया। उनके ठाकुर के आदेश को सुनने के लिए सभी आदिवासियों के लिए एक दिन तय किया गया। **ऐसे में** सिदो-कान्हु के धार्मिक संदेश ने उनकी भावना को और उत्तेजित कर दिया और वे लोग विद्रोह के लिए अग्रसर हुए। इस विद्रोह में निचले और गरीब वर्ग के लोग बहुत बड़े पैमाने पर शामिल हुए और सिदो कान्हू के नेतृत्व में अपनी स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र संघर्ष किया। इसमें संथालों के अलावा पहाड़िया, ग्वाले, डोम, कुम्हार, तेली, लोहार, जुलाहे, चमार, कहार, नाई, भूइयां, माल, मल्लाह, धानुक, मोमिन आदि वर्ग के लोगों की बड़ी हिस्सेदारी थी।[4] इसलिए इसके नेता सिदो, कान्हू, चाँद और भैरव आदिवासी, पिछड़े और दलित लोगों के नेता थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह संथालों का विद्रोह था क्योंकि इसमें संथालों की महत्वपूर्ण और केन्द्रीय भूमिका थी। महाजन, जमींदार और ब्रिटिश सरकार के पुलिस और न्यायिक कर्मचारियों और अधिकारियों से मूल रूप से संथाल सबसे ज्यादा प्रताड़ित थे। अतः उनमें असंतोष और विद्रोह की भावना अधिक थी।

संथाल विद्रोह के वीर सिदो और कान्हू का जन्म संथाल परगना के वर्तमान साहिबगंज जिला के बरहैट ''पहाड़ियों की राजधानी शहर'' थानान्तर्गत भोगनाडीह ग्राम में हुआ था।[5] पिता का नाम चुनुमांझी एवं उनके दो अन्य छोटे भाई चांद एवं भैरव थे। अपने जन्म स्थान भोगनाडीह से उन्होंने अंग्रजों के विरूद्ध रणघोष किया और जमींदार, महाजन, दारोगा एवं अन्य अधिकारियों के माध्यम से उन पर अत्याचार और उनका शोषण करने वाले अंग्रेजों को भारत छोड़ने को कहा। उन्होंने गरीबों, पिछड़ों और दलित वर्ग के लोगों पर किये जा रहे अत्याचार को भी देखा। महाजनों के अत्याचार का वर्णन करते हुए सिदो ने कहा था- महाजन एक रूपये उधार देकर पाँच रूपये वसूलते हैं और अपनी मनमानी दरों में हमारी फसल खरीदते हैं। अगर कोई उनका विरोध करता है तो उसे पकड़कर पीटते हैं। इसलिए वे विदेशी शासन से मुक्त होना चाहते थे और गरीब वर्ग का राज स्थापित करना चाहते थे।

अपने राज की स्थापना के विचार से प्रेरित होकर संथालों ने सिदो और कान्हु को अपना नेता स्वीकार कर लिया, उनके निर्देश पर गाँवों का शुद्धिकरण किया गया। इसके बावजूद विद्रोह की शुरूआत नहीं हुई, क्योंकि सिदो और कान्हू ने अपनी समस्याओं का निराकरण शांतिपूर्वक तरीके से करने की घोषणा की।[6] इसलिए स्टेफन यूक्स का विचार है कि यदि ब्रिटिश अधिकारी संथालों के प्रति सहानुभूति रखते तो इस स्थिति में भी उग्र विद्रोह को टाला जा सकता था। पर संथालों की सभी अपीलें घमंडी ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा शीघ्रपूर्वक निरस्त कर दी गयीं, क्योंकि कोर्ट के प्लीडरों और जमींदारों की दी रिर्पोटों ने उनके दिमाग को विषाक्त कर दिया था। दामिन-ई-कोह के अधीक्षक और भागलपुर के कमिश्नर से भी उन्होंने अपनी शिकायतों को दूर करने का निवेदन किया, पर इन अधिकारियों ने भी कुछ नहीं किया। उनके आह्वान पर संथालों की एकता का प्रतीक साल वृक्ष की शाखा विभिन्न गाँवों में घुमायी गयी।[7] इसका जबरदस्त प्रभाव पड़ा। फलतः 30 जून 1855 को लगभग 400 गाँवों का प्रतिनिधित्व करने वाले 10,000 संथाल भोगनाडीह में जमा हुए[8] और वहाँ सिदो कान्हू ने घोषणा की थी कि संथालों को उनके उत्पीड़कों के नियंत्रण से निकल जाना चाहिये।

18 आषाढ़, 1263 बंगाली संवत्, शनिवार को संथाल विद्रोही भोगनाडीह के पड़ोस में पंचकोढिया बाजार की तरफ बढ़े ताकि अपना अभियान शुरू करने के पहले वहाँ की स्थानीय जनता द्वारा काफी श्रद्धा की जाने वाली एक स्थानीय देवी को संतुष्ट कर लिया जाय।

उनकी गतिविधियों से उस बाजार के महाजनों के दिलों में काफी बैचेनी पैदा हो गयी। संथालों ने उनमें से पाँच मानिक चौधरी, गोराचन्द्र सेन, सार्थक रक्षित, निमाई दत्ता और हिरू दत्ता को निर्ममता पूर्वक मार डाला। दिग्घी का दारोगा महेश लाल दत्ता अपने दल के साथ 7 जुलाई, 1855 को उस जगह पहुँचा। उन लोगों ने पहले सभ्यतापूर्वक दरोगा से मुलाकात कर उसे अकेले में बैठने दिया, लेकिन उन्होंने उस पर ताना मारा कि तो हाँ, तुम हमें पकड़ने आये हो, हिम्मत हो तो वह उनको पकड़े। दारोगा ने कहा कि बेहतर होगा कि वह सिपाहियों को लौटा दे तब उन लोगों ने मांग की कि वह प्रत्येक बंगाली पर 5 रूपये का टैक्स लगाये और उनकों, उनकी (संतालों की) दया पर छोड़ दे। दारोगा काफी समझदारी से पेश आया, उन लोगों को शांतिपूर्वक अपने-अपने घर जाकर अपने खेत जोतने की सलाह दिये ताकि वे लगान चुका सकें। तब दारोगा वापस जाने के लिए उठा ही था कि तभी अचानक चारों भाइयों में से सबसे छोटे भाई ने आदेश

दिया कि उसको पकड़ लिया जाय और पीटा जाय।[9]

वे खुद धक्का खाकर गिरने के बाद अपने बच निकलने के प्रयास में थे लेकिन उनके भागने के पहले दारोगा, दो बरकदाजों और 5 या 6 अन्य लोगों के सिर काट डाले गये थे।

शीघ्र ही विद्रोहियों ने बरहेट बाजार को लूट लिया जो उस समय (आज भी) कई सम्पन्न महाजनों से भरा हुआ था और फिर वहाँ से धनुष, जहर बुझे तीरों, कुल्हाड़ियों और तलवारों को हाथ में लिए विभिन्न दिशाओं में चल दिये और रास्ते में लूट मचाते और अत्याचार करते रहे। जान-जाने के डर से उन जगहों में रहने वाले बंगाली और हिन्दुस्तानी भाग निकले। बाबूपुर से पंचकोठिया जाते समय कान्हू ने एक नायब सुझवाल और एक खान साहेब की हत्या कर दी।[10]

इस प्रकार संथालों का आन्दोलन शीघ्र ही सार्वजनिक शान्ति-व्यवस्था के लिए खतरा साबित हो गया। चारो ओर आतंक फैल गया था विद्रोह को कुचलने के लिए कम्पनी का ध्यान खींचा गया। जो भी इसके बारे में सुना उस पर मानों बिजली गिरी, कि बंगाल के मध्य में एक विद्रोह फूट पड़ा है और एक जाति के लोग इलाके में चारो तरफ इस तरह हाथों में हथियार लिए हत्यायें करते हुए अनियंत्रित घूम-फिर रहे हैं, जैसा कभी सुना नहीं गया और कभी किसी ने सोचा तो नहीं ही था।[11]

भागलपुर के कमिश्नर सी0 एफ0 ब्राउन को 8 जुलाई की दोपहर उपद्रवों के बारे में रिपोर्ट मिली। ब्राउन ने तुरंत एफ0 डब्ल्यू0 वर्रोस से अनुरोध किया[12] कि वे उपद्रव को कुचल डालने के लिए सैन्य बल भेजें क्योंकि विद्रोहियों ने घोषणा कर रखी है कि वे उस स्थान पर हमला करना चाहते हैं, लेकिन 9 जुलाई को सुबह खबर मिली कि विद्रोही लोग बोरियों और कोलगोंग के नीचे कई गाँवों को लूटने के बाद भागलपुर और राजमहल की ओर बढ़े रहे हैं वे राजमहल से 20 मील की दूरी के अन्दर आ भी गये हैं, तब उन्होंने अपने पहले के आदेशों को बदला और मेजर बर्रोस से कहा कि वह सेना की एक टुकड़ी राजमहल भेजने की व्यवस्था करे और इस बात का ख्याल रखें कि जरूरत पड़ने पर भागलपुर की रक्षा के लिए पर्याप्त बल बचा रहे। उसके बाद उसने पहाड़ी सरदारों पड़ोसी परगनों के जमींदारों और पड़ोस के दरोगा को विद्रोह को दबाने के लिए आदेश जारी किये और शहर की पुलिस को पर्याप्त बल प्रदान करने के लिए मेजर बर्रोस ने एक सौ बंदूक उधार लिया क्योंकि भागलपुर जेल में संथाल कैदियों (काला-पानी की सजा प्राप्त) ने घोषणा की थी कि उस केन्द्र पर हमला किया जाएगा और इसके चलते वहाँ के लोग आतंकित थे।

जुलाई 1855 के बीच एक आन्दोलन उग्ररूप धारण कर चुका था और विद्रोही लोगों ने आदिवासियों की हत्या करना आरंभ कर दिया था।[13] 13 जुलाई को पीरपैंती के निकट एक गाँव में 6 या 8 रेल कर्मचारियों के साथ एक मुठभेड़ हुयी थी, जिसमें कर्मचारी हार गये थे और उनके तीन आदमी घायल हो गये थे।[14] भागलपुर और राजमहल के बीच डाक का आना-जाना और रेलवे का काम रोक दिया गया था, पीरपैंती और सकरीगली के बीच की मुख्य सड़कें विद्रोहियों के प्रभाव में थी, जो आदमी, औरत और बच्चों की हत्या कर रहे थे। उन अत्याचारों से बचकर भागे हुए प्रत्यक्षदर्शियों का कहना था कि ''विद्रोही लोग बड़े जोर से शेखी बघार रहे है कि कम्पनी का राज खत्म हो गया है और उनके सूबा का राज कायम हो गया है''।[15] दुमका के थानेदार किशुजीवन सिंह ने भागलपुर के कमिश्नर के सामने यह रिर्पोट दी कि 13 जुलाई को जब वह दुमका से भागलपुर आ रहा था तब रास्ते में उसने काठीकुंड में 500 और पकड़ा पारा में 400 संथालों को जमा देखा, फिर उसके दूसरे दिन केंदोवा और पुरगाड़ी (केंदोवा से 3 मील दूर पर स्थित) के बीच से गुजरते समय उसने करीब 1500 संथालों को देखा और उसी दिन दोपहर को कोदायने और धूमपुत्र के बीच एक जगह 1000 संथालों को जमा देखा। बरकोपे (गोड्डा सब डिवीजन में) की रानी के दीवान, चित्रापट सिंह ने भी कमिश्नर को बताया कि 14 और 15 जुलाई को उसने आमरेहा और चुंखाली के बीच एक जगह पर करीब 1500 संथालों को जुटे हुए देखा।[16]

16 जुलाई, 1855 को दिन के 2 बजे पीरपैंती के निकट हथियार बन्द संथालों के एक दल के साथ मेजर बर्रोस के सैनिकों की एक जर्बदस्त मुठभेड़ हुई, जिसमें मेजर बर्रोस के सैनिक हार गये। विद्रोहियों ने जमकर लड़ाई लड़ी। उन्होंने न केवल साधारण हाथ के धनुषों से तीर चलाये बल्कि जमीन पर रखकर खींच कर चलाने वाले धनुषों का भी इस्तेमाल किया और वे एक प्रकार के फरसे से भी लड़ाई लड़े। नतीजा यह हुआ कि क्वार्टर मास्टर-सार्जेन्ट, ब्राडोन (रेलवे से संबंधित एक सज्जन), कुछ देशी अधिकारी, और करीब 25 सिपाही मारे गये तब सैनिक

दल पीरपैंती गया जहाँ वे तख्तों की नौकाओं पर चढ़कर कोलगोंग की ओर बढ़े।[17] पूर्णिया के मजिस्ट्रेट जी. ए. पियर नदी पार करके पीरपैंती जाने के उद्देश्य से पहाड़ी रेंजरों के 58 सिपाहियों के साथ कारा-गोला आये हुए थे लेकिन मेजर बर्रोस के सैनिकों की हार की बात सुनकर उन्होंने अपने आदमियों को कोलगोंग भेज दिया। काफी तेजी से दूसरे इलाकों में उपद्रव फैले। गोड्डा में रहने वाले एक बहुत मेधाबी नील खेतिहर जॉन फिट्जपैट्रिक ने 11 जुलाई को भागलपुर के कमिश्नर को लिखा कि 7 तारीख की बर्बर हत्याओं के समय पड़ोस के इलाकों में रहने वालों में एक भयानक आतंक फैल गया है, और कुल 20 हजार से अधिक संख्या में संथालों की 6 टोलियाँ उस जगह की ओर बढ़ रही हैं जहाँ उनके तथाकथित सूबा की ध्वजा फहरायी गयी है, संथालों ने उस क्षेत्र के निवासियों, बंगालियों को धमकी दी है कि वे सूबा से उनका सम्पूर्ण नाश करने के लिए वापस आयेंगे। अंबर परगना (पाकुड़ राज की जमींदारी में) की तरह लक्षणपुर का एक सिंनाराई संथाल गोचो मांझी के साथ जा मिला उक्त गाँव को लूटने के बाद वे लिट्टीपाड़ा की ओर बढ़े, जहाँ दूसरी भकत और तिलक भकत नाम के दो धनी महाजन रहते थे जो बेईमानी की कमाई से काफी अधिक समृद्ध हो गये थे। ये दोनों महाजन संथालों की नजर में सबसे अधिक खटकते थे। संथालों का एक ही मन था कि इन दोनों का खून पी लें। पंचकोठिया में उपद्रवों के बारे में पहले से खबर पाकर ये महाजन अपने घरों से भाग गये थे। संथालों ने दूसरी व तिलक भकत की दुकानों को लूटा और उसके गुमाश्ता को मार दिया। इसके बाद विद्रोही संग्रामपुर की ओर बढ़े जो पाकुड़ से उत्तर दो मील की दूरी पर था। वहाँ उन्होंने रहमदी मंडल नामक एक धनी मुसलमान, किसान के घर को लूटा व जला दिया।

संग्रामपुर लूटने के बाद संथाल विद्रोही पाकुड़ पहुँचे और पूरे तीन दिन व तीन रात वह स्थान दखल में रहा, चौथे दिन यानि 12 जुलाई, 1855 को सिदो कान्हू, चाँद और भैरव स्थानीय जमीदार के घर घुसे, लेकिन उसको वहाँ उम्मीद के अनुसार धन नहीं मिला क्योंकि सर्वाधिक धन अन्यत्र कहीं ले जाया गया था, जिसमें एक खास बहुमूल्य रत्न भी था जिससे राजा लोग अपने इस्ट देव मदन मोहन को अलंकरण किया करते थे।[18]

पाकुड़ की तत्कालीन जमींदार रानी क्षेम सुन्दरी ने आरम्भ में अपने पारिवारिक इस्टदेव मदन मोहन की प्रतिमा के साथ में जंगीपुर में शरण लिया, लेकिन बाद में वह झिकरहाटी वापस लौट आयी।

पाकुड़ छोड़ने के बाद संथाल विद्रोही पाकुड़ की पूर्वी सीमा पर अवस्थित बल्लमपुर की ओर बढ़े और वहाँ जाकर एक लोहार घनश्याम मारिया, दो वैरागियों यानि पेशेवर भिखारियों और एक वरगद के पेड़ के नीचे खाना पका रहे दो मुसलमान फकीरों की हत्या कर दी। उसके बाद उन्होंने कालिकापुर, बल्लमपुर, बलिहारपुर, शाहवाजपुर और नवीननगर को लूटा[19] और तब मुर्शिदाबाद जिले की सीमा की ओर बढ़े। मुर्शिदाबाद का मजिस्ट्रेट टू-गुड वहाँ रखी गयी 7वीं रेजिमेंट एन. आई. के 400 सैनिकों के एक दल को लेकर बरहमपुर से आरैगाबाद की ओर चला। संथालों के आगे बढ़ने की खबर सुनकर घुलियाँ में नील कारखाने के एच. मसेक ने उसको रोक दिया। तब वहाँ से उसने कदमसायर में सी. मसेक (एच. मसेक का भाई) के कारखाने की रक्षा के लिए 160 बरकंदाजों के एक दल को भेजा। महाराजपुर के निकट त्रिभुवन संथाल के नेतृत्व में विद्रोहियों के एक दल ने आगामी अंग्रेज महिलाओं श्रीमती थॉमस और सुश्री पेल और तीन यूरोपियन सज्जन हेनेस्सी और उनके दो बेटों की हत्या कर दी। वीरभूम में नलहाटी, रामपुरहाट, नागोर, सिउड़ी लांलूसिया, गुजौरी एवं अन्य स्थानों में विद्रोह भयानक हो गया था। असम में 20 जुलाई तक वीरभूम के दक्षिण-पश्चिम में ग्रैंड ट्रंक रोड पर तालडंगा और दक्षिण-पूरब में सैंथिया से भागलपुर और राजमहल तक तथा भागलपुर जिले के पूर्वोतर तक विद्रोह फैल गया था और विद्रोही गतिविधियाँ चल रही थीं। दामोदर नदी और ग्रैड ट्रंक रोड से दक्षिण संथालों को बढ़ने से रोकने के लिए तथा लगे हुए इलाकों की बचाव के लिए रामगढ़ दूरेंग्युल लाइट होर्स, गर्वनर जेनरल के अंगरक्षक, 37वीं रेजिमेंट के नबाव की ओर से 200 निजामत सिपाही, 30 हाथी और 32 घोड़े और बाद में 63वीं एन. आई. रेजिमेंट भी लगायी गयी।

समय-समय पर विद्रोह दमन के लिए अतिरिक्त कुछ उपाय के लिए मंजूरी दे दी थी। सैनिक सहायता अनुपलब्ध दूर-दराज के गाँवों की रक्षा के लिए तथा विभिन्न केन्द्रों के बीच में गश्त लगाने के लिए सशस्त्र बल को नियोजित करके वीरभूम जिले के विभिन्न उपद्रवग्रस्त जनता की मदद करने के लिए इन अतिरिक्त पुलिस व्यवस्था की जरूरत थी।

हालात क्रमशः बिगड़ते चले गये और विद्रोह तेजी से

विभिन्न इलाकों में फैलता गया, इसलिए सरकार ने 10 नवम्बर, 1855 को मार्शल लॉ की घोषणा की।

मार्शल लॉ की घोषणा से प्रभावित क्षेत्रों में तैनात सिपाही को संथाल विद्रोहियों के विरूद्ध शक्ति पूर्वक दंड देने को बल मिला। बहुत सारी चौकियाँ कायम की गयी थीं, जिसमें कभी-कभी बारह से चौदह हजार सैनिक तैनात रहते थे। इन चौकियों ने विद्रोहियों को खुले आम ग्रामांचल में खदेड़ दिया। सरकार ने तब 3 जनवरी 1856 को मार्शल लॉ की कार्यवाही स्थगित कर दी लेकिन मार्शल लॉ स्थगन के बाद कुछ इलाकों में करीब तीन महीने और स्थिति अशांत बनी रही। 3 फरवरी, 1856 से एक पखवारे के अंदर साइबसाह के नेतृत्व में भागे हुए संथालों ने जयपुर के आस-पास और मुंगेर की सीमा पर फिर से अत्याचार किये। उन्होंने मार-काट तो नहीं की लेकिन 12 और 13 जनवरी 1856 को सरकार को घोषणा पत्र भेजकर पाकुड़ के निकट संग्रामपुर में एक यूरोपीय कारलोन को लूटा।[20]

हजारीबाग में नियुक्त छोटानागपुर के कमिश्नर के स्थानान्तरण पर प्रधान सहायक कैप्टेन शिशमोर ने 2 मार्च, 1855 को बंगाल की सरकार को सूचना दी कि 21 और 22 फरवरी को वीरभूम जिले से आकर लूटमार कर रहे संथालों के एक बड़े दल ने खईफडिया में सिरामपुर के पास कई महाजनों को लूटा।[21] कैप्टेन ई. शिशमोर ने लेटिनेंट गर्वनर को निर्देश दिया कि वहाँ बाँकुरा और वीरभूम में फौज की विशेष कमान संभालने के लिए नियुक्त ब्रिगेडियर एल. एस. वर्ड और संथाल परगना के डिप्टी कमिश्नर से सम्पर्क कायम रखे। 37 वीं रेजिमेंट वास्तव में कोई टुकड़ी खड़गडिहा भेज नहीं सकी।[22] इसलिए कैप्टेन शिशमोर की 8वीं रेजिमेंट के आने तक इंतजार करना पड़ा। 8वीं रेजिमेंट 26 फरवरी को वर्धमान पहुँचकर 27 मार्च को दिनांपुर के लिए रवाना हुआ, मार्च की शुरूआत में वहाँ पहुँचा। लेकिन एक-दो दिन में लेटिनेंट गर्वनर ने पाया कि वहाँ फौज भेजने की कोई आवश्यकता नहीं थी।[23] उपद्रव और आतंक शीघ्र ही शांत हो गये थे। फरवरी के तीसरे सप्ताह में[24] कुजरा घटवाल ने जामताड़ा से पूर्वोत्तर की दिशा में ऊपरबंधा के निकट कान्हू को पकड़वा दिया और थोड़े ही दिनों के अन्दर 23 फरवरी, 1856 को कान्हू को भोगनाडीह के ठाकुरबाड़ी के प्रांगण में फाँसी दे दी गयी।[25] दूसरी ओर कान्हू के बड़े भाई सिदो 1855 के दिसम्बर माह में ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। सिदो पर भागलपुर के न्यायालय में मुकदमा चलाया गया। सिदो लम्बा, लंबे केशवाला और संथालों से dN lkQ jakdk ;fDr Fkk[26] इन्हें भागलपुर के स्पेशल कमिश्नर विडवेल के द्वारा 32-33 वर्ष की उम्र में जुडिशियल प्रोसीडिंग नं. 83/1855 के तहत् 5 दिसम्बर 1855 को फाँसी दी गयी।[27]

6 माह से अधिक समय यह विद्रोह सरकार, जमींदारों और प्रभावित इलाकों की जनता के लिए खतरा बना रहा। विद्रोह के दमन में कलकत्ता, बरहमपुर,सिउड़ी, रानीगंज, देवघर, भागलपुर, पूर्णिया, मुंगेर, बाढ़ और पटना के सरकारी अफसरों पर काफी जोर पड़ा। विद्रोहों से सरकार को धन और जन का भीषण नुकसान हुआ और सरकार के राजस्व में गंभीर क्षति हुयी।

सिदो और कान्हू शहीद को गए। वे संतालों के मसीहा बन गये। इनके नेतृत्व में हजारों आदिवासियों और दलितों की कुर्बानी आने वाली पीढ़ी के लिए प्रेरणा स्रोत बन गयी।

धार्मिक क्रिया-कलाप

आज के आधुनिक युग में विभिन्न जाति और समुदाय के लोग अंधविश्वास, पुराने रीति-रिवाज, वंदिशों तथा वर्जन से किसी हद तक मुक्त होकर जीना सीख चुके हैं, परन्तु वे आधुनिक युग में सामान्तरण तौर पर आदिवासी समुदाय के लोग आज भी अन्धविश्वास पुराने रीति-रिवाज और वर्जन के साथ जी रहे हैं। संथाल परगना (दुमका) की संथाल जन-जाति के लोग भी कुछ ऐसा ही जीवन जीते आ रहे हैं।

संथाल समुदाय में महिलाओं और पुरूषों के लिए कुछ ऐसे कार्यकलाप हैं, जिन्हें संथाल समाज में वर्जित ठहराया जाता है, और यदि कोई इसे नहीं मानता है तो समाज अपने नियम के अनुसार दंडित करता है। संथालों के बीच, महिलाओं द्वारा खेत में हल जोतना वर्जित है, उनके विश्वास के अनुसार यदि कोई महिला खेत जोतती है तो उस वर्ष वर्षा नहीं होती है और अकाल पड़ जाता है। अगर कभी किसी महिला ने परिस्थितिवश हल छू भी लिया हो, तो उसे दंड का भागी बनना पड़ता है। उसी प्रकार अपने घर का छप्पड़ छारने के लिए संथाल महिलाएँ छत पर नहीं जा सकती । संथालों का विश्वास है कि मकान के छत पर ''बोंगा'' (पवित्र आत्मा) का पवित्र स्थान है जो ऐसा करने से अभिशाप दे सकते हैं और फसल मर सकती है, साथ ही साथ छत में साँप, बिच्छू रहना आरंभ कर दे सकते हैं। महिलाओं को 'जाहेर' वृक्ष पर चढ़ना या उसकी टहनी तोड़ना भी वर्जित है। संथालों की मान्यता

है कि जाहेर वृक्ष पर बोंगा निवास करते हैं। महिलाओं को वृक्ष पर चढ़ने से वह अपवित्र हो जाते हैं और नाराज होकर वर्षा रोक देते हैं। इस कारण अकाल पड़ जाता है। महिलाओं द्वारा किसी भी व्यक्ति का बाल काटना या कतरना (मुंडन करना) वर्जित है। यदि किसी महिला ने ऐसा किया तो उसे ''मांझी हड़ाम'' के समक्ष उपासना स्वरूप भेंट चढ़ानी पड़ती है।[28] महिलाओं की तरह पुरूषों के लिए भी ऐसे कई कार्य कलापों की पहचान की गई है जो संथाल समाज में वर्जित हैं।

गाँव की गली को जोतना वर्जित है, मान्यता है कि गाँव की गली मांझी हड़ाम की छाती है। वहाँ पवित्र आत्मा वास करती है। धरती को यदि जोता गया तो वे आत्माऐं भाग जायगी और उस गाँव पर आफत आ जायगी। ये भी मान्यता है कि ''जाहेर स्थान'' जो बोंगा का निवास स्थान है- अगर किसी मनुष्य द्वारा जोता जाता है तो बोंगा नाराज होकर उस गाँव में शेर और अन्य जंगली जानवर भेजकर उस गाँव के निवासियों का अहित करा देता है। इसी प्रकार ''जाहेर वृक्ष'' काटना भी मर्दों के लिए वर्जित है। यदि इन वर्जनों का उल्लंघन होता है तो उस व्यक्ति को दंडित किया जाता है। इस विषय पर संथालों में बहुत सारी कहानियाँ प्रचलित हैं। ''किसी संथाल ने' जाहेर वृक्ष, को तोड़कर अपना छत छार लिया तो, उसका पूरा घर बोंगा के अभिशाप से जल गया।''

संथालों के खान-पान में भी कुछ वर्जन की पहचान की गई है। सामान्य तौर पर संथाल किसी भी मांस को खा सकते हैं। परन्तु बंदर का मांस नहीं खाते हैं क्योंकि बन्दर मनुष्य से मिलता-जुलता प्राणी है। इसी प्रकार से गिद्ध और कौआ का मांस भी संथाल समाज में वर्जित है। एक मजे की बात यह है कि ''नील गाय'' का मांस केवल मुर्मू उपजाति के संथाल नहीं खा सकते हैं, अन्य संथालों के लिए यह वर्जित नहीं है।

खान-पान में संथालों के यहाँ कुछ और भी अनुशासन का पालन किया जाता है जैसे संथाल सामान्य रूप से गैर संताल के साथ खाना नहीं खाते हैं महिलाएँ तो गैर संथाल द्वारा पकाया खाना भी नहीं खाती है। जहाँ तक पुरूषों का प्रश्न है गैर संथाल द्वारा पकाया खाना खा सकते हैं परन्तु पूर्व में पहाड़िया, डोम, जुलाहा, हाड़ी, वाउरी, मोहली द्वारा पकाया हुआ खाना संथालों के लिए वर्जित था। खाने-पीने के सिलसिले में एक और रोचक नियम का पालन किया जाता है जिसमें स्पष्ट रूप से परिभाषित है कि कौन व्यक्ति किस व्यक्ति के साथ एक ही पत्ते (बर्त्तन) में खाना खा सकता है। संथालों के निम्नलिखित सम्बन्धों के साथ खाना-खाना वर्जित है-

1. मामा-भागिना/भगिनी
2. मामी-भगिना/भगिनी
3. किसी लड़के या किसी लड़की का पति और उस लड़के या लड़की का बड़ा भाई।
4. किसी लड़के की पत्नी और उस लड़के का बड़ा भाई।
5. लड़की का पति और लड़की की बड़ी बहन।
6. ससुर दामाद
7. सास-दामाद
8. ससुर-बहू
9. विवाहित छोटी बहन और उसके बड़े भाई या बहन
10. समधि-समधि
11. समधि-समधिन
12. समधिन-समधिन
13. पति-पत्नी

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त भी कई अन्य मान्यताओं एवं वर्जनाओं का उल्लेख संथाल समाज में किया गया है। यदि इनका सूक्ष्म परीक्षण किया जाय तो ये बातें प्रकाश में आती है कि खान-पान में संथाल समाज में एक कठोर आत्मानुशासन पाया जाता है।

आज का सभ्य समाज का इन बातों को नहीं मानता है, रीति-रिवाज पुराने मूल्यों आदि से परे एक प्रतिस्पर्धित जीवन व्यतीत कर रहा है जिसमें उन्हें अनेक चिंता, तनाव और कष्ट से गुजरना पर रहा है, पर कम से कम संथाल समाज इन अभिशापों से बचा हुआ है, भले ही उसे बोंगा का अभिशाप ही क्यों न सहन करना पड़े। सभ्यता का अभिशाप बोंगा के अभिशाप से कठोर नहीं है।

सन्दर्भ

1. ओमैली एस. एस., *'बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, संथाल परगना',* रिभाइज्ड एडिशन, राय बहादुर, एस. सी. मुखर्जी, पटना 1938 पृ. 48-52
2. दास जगन्नाथ एवं संजीव कुमार, *'सिदो और कान्हु जीवन एवं उपलब्धियाँ',* जानकी प्रकाशन, पटना, 2007
3. कलकत्ता रिव्यू, 1856
4. दत्ता के. के., *'दी संथाल इन्सुरेक्शन ऑफ 1855-57',* कलकत्ता, 1940 पृ. 09
5. ओमैली एल. एस. एस., *'बंगाल डिस्ट्रिक्ट गजेटियर संथाल परगना'* रिवाइज्ड एडिशन पृ. 48
6. दिनेश वी. एन., *'संथाल विद्रोह 1855-56',* एकेडिमक फोरम प्रकाशन केन्द्र, रामपुरहाट (वीरभूम) पश्चिम बंगाल, 2008 पृ. 37
8. उपरिवत्
9. भागलपुर कमिश्नर का एक पत्र बंगाल सरकार के सचिव के नाम, 10 जुलाई 1855, पैरा-2
10. कलकत्ता रिव्यू, 1856
11. कलकत्ता रिव्यू, 1860
12. मेजर वर्रोस का एक पत्र भागलपुर के कमिशनर के नाम दिनांक 8 जुलाई और 9जुलाई, 1855
13. भागलपुर कमिश्नर का एक पत्र दीनापुर के कमांडिंग ऑफिसर के नाम दिनांक 15 जुलाई, 1855
14. भागलपुर कमिश्नर का एक पत्र, मेजर जेनरल लॉयड, दिनापुर के कमांडिंग ऑफिसर के नाम, दिनांक 17 जुलाई, 1855, 10 पी. एम., पारा-7
15. भागलपुर कमिश्नर का एक पत्र बंगाल सरकार के सचिव के नाम दिनांक 15 जुलाई, 1855 पारा-4
16. भागलपुर के कमिश्नर का पत्र, मेजर जेनरल लॉयड, दिनापुर के कमांडिंग ऑफिसर के नाम, दिनांक 21जुलाई, 1855
17. भागलपुर कमिश्नर का एक पत्र, दीनापुर के कमांडिंग ऑफिसर मेजर जेनरल लॉयड के नाम, दिनांक 17 जुलाई 1855, 10 पी. एम., पैरा-6
18. दास जगन्नाथ, संजीव कुमार, पूर्वोक्त
19. दिगम्बर चक्रवती, *'हिस्ट्री ऑफ दि संथाल हुल ऑफ 1855',* कलकत्ता, 1989 पृ.- 40
20. भारत सरकार के वित्त विभाग की प्रोसीडिंग, दिनांक 22 दिसम्बर, 1855
21. बंगाल सरकार के सचिव, मि0 डब्ल्यू0 ग्रे का पत्र बिग्रेडियर ली0 सी0 वार्ड के नाम, दिनांक 3 मार्च 1856
22. उन रेजिमेंट एन. आई. कमाँडिंग के एन. डब्लयू. स्पॉटिम बुड का पत्र कैप्टन ई0सिरमोर को, दिनांक 3 मार्च, 1856
23. बंगाल के अण्डर सेकेटरी का पत्र, कैप्टेन ई. सिरमोर को दिनांक 5, मार्च, 1856
24. मिस्टर डब्लयू. सी. टेलर का पत्र ए. आर. थॉम्पसन को, श्री कुंड, दिनांक 20 फरवरी, 1856
25. कलकत्ता रिव्यू, 1856
26. भागलपुर कमिश्नर के रिकार्ड ऑफिस से प्राप्त न्यायिक प्रोसीडिंग नं. 28, दिनांक 23 दिसम्बर, 1855
27. उपरिवत्, न्यायिक प्रोसीडिंग नं.- 83, 1855
28. सिंह सत्येन्द्र कुमार, *'संथाल जीवन एवं संस्कृति',* एग्रेरियन, एसिस्टेन्स एसोसियेशन, दुमका बिहार द्वितीय संस्करण 2000, पृ. 26
29. स्मारिका, *'जनजातीय हिजला मेला',* 1995 संताल परगना, दुमका

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक	: गीता की सामाजिक प्रासंगिकता
लेखक	: डॉ. हरिप्रसाद जोशी
प्रकाशक	: समता प्रिन्टिंग प्रेस, रतलाम
प्रकाशन वर्ष	: 2018
मूल्य	: रू. 125
पृ. सं.	: 148

समाजशास्त्रीय साहित्य में ऑगस्ट कॉम्ट, इमाईल दुर्खीम, मैक्स वेबर, जी.एस.घुरिये जैसे प्रमुख समाजशास्त्रियों का प्राथमिक एवं द्वैतीयक तथ्य सामग्री पर आधारित धार्मिक अध्ययनों का महत्वपूर्ण सन्दर्भ मिलता है। लेकिन इन सभी अध्ययनों का एक विशिष्ट परिप्रेक्ष्य रहा है जिसमें समाजशास्त्रीय अवधारणाओं के सन्दर्भ में धर्मग्रन्थों की सटीक व्याख्या का अभाव दिखाई देता है। डॉ. जोशी द्वारा लिखित पुस्तक ''गीता की सामाजिक प्रासंगिकता'' इस कमी को पूरा करने का एक लघु प्रयास है। डॉ. जोशी ने अपनी इस पुस्तक में श्रीमद्‌भगवतगीता को न केवल समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में समझने का काम किया है वरन् गीता में उल्लेखित विविध प्रसंगों को समाजशास्त्रीय अवधारणाओं यथा प्रस्थिति, भूमिका, विसंगति, सन्दर्भ समूह आदि से जोड़कर समझाने का प्रयास भी किया है। इससे समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र में नवीन धार्मिक आयामों के विश्लेषण का मार्ग प्रशस्त होगा साथ ही धर्म एवं अध्यात्म के बीच अन्तर की सूक्ष्म समझ को भी ठोस दिशा प्राप्त हो सकेगी।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन में डॉ. जोशी ने व्यक्ति के वर्ण, धर्म, कर्म एवं सामाजिक सम्बन्धों को अंतर्संबंधित कर आध्यात्मिकता के भाव को कुल सात अध्यायों में विग्रह किया है। प्रथम अध्याय में आदि जगद्‌गुरू शंकराचार्य एवं आधुनिक काल के चिंतक श्री बालगंगाधर तिलक के गीता तात्विक ज्ञान की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इस तात्विक व्याख्या में व्यक्ति की आत्मा को केन्द्र मानकर परमात्मा को उसका योग निर्धारित करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि सामाजिक सम्बन्धों के जटिल स्वरूप में इस ज्ञान को मानव समाज के सामूहिक कल्याण में किस प्रकार जोड़ा जाए।

द्वितीय अध्याय में श्रीमद्‌भगवतगीता की समाजशास्त्रीय विवेचना प्रस्तुत की गई है। इस विवेचना में गीता में प्रयुक्त महत्वपूर्ण विशिष्ट शब्दों को संकलित कर गणनात्मक विधि के आधार पर इन विशिष्ट शब्दों की शोधात्मक मीमांसा को बताया गया है। वरीयता के आधार पर परमात्मा, आत्मा, कर्म, गुण, मन, योग व यज्ञ इन शब्दों का इनकी सामाजिक उपयोगिता एवं महत्व के आधार पर समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। इसके साथ ही कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग पर भी प्रभावी ढंग से प्रकाश डाला गया है।

तृतीय अध्याय सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से गीता के विषाद एवं सांख्य योग की विवेचना से सम्बन्धित है। इस विवेचना में श्री कृष्ण ने रणभूमि में अर्जुन को मानव जीवन से सम्बन्धित विविध तथ्यों को किस प्रकार समझाने का प्रयास किया गया, वह प्रसंग प्रमुख है। **कर्म** योग को सामाजिक क्रिया से जोड़ते हुए इन क्रियाओं के निष्पादन की विधियों की विवेचना चतुर्थ अध्याय में प्रस्तुत की गई है। इस विवेचना का आधार गीता के तीसरे, चौथे, पाँचवे एवं छठे अध्यायों में प्रतिपादित कर्मयोग, ज्ञानकर्मसन्यास योग, कर्मसन्यास योग एवं अभ्यास योग है जिसमें समस्त सामाजिक एवं व्यक्तिगत क्रियाओं में समतामूलक दृष्टिकोण अपनाए जाने की बात कही गयी है।

भक्तियोग की सामाजिक प्रासंगिकता की विस्तृत व्याख्या अध्याय पंचम में की गयी है। लेखक ने भक्ति योग की सामाजिक प्रासंगिकता को स्पष्ट करने से पूर्व इस अध्याय में ज्ञान विज्ञान, अक्षर ब्रह्मयोग तथा राजविधाराज गुह्ययोग की विस्तृत विवेचना को प्रस्तुत किया है ताकि भक्तियोग की सामाजिक प्रासंगिकता को अर्न्तमन की गहराइयों से समझा जा सके। भक्ति के द्वारा ही जीवन में महत्वपूर्ण दैवीय गुणों को भरा जा सकता है। ऐसा भक्तियोग के विविध स्वरूपों में गीता के सातवें से बारहवें अध्याय में लेखक ने महसूस किया है।

षष्ठम अध्याय में गीता के ज्ञानयोग को मानव समाज से जोड़ते हुए क्षैत्र एवं क्षैत्रज्ञ के माध्यम से प्रकृति एवं पुरूष को समझाया गया है। इस अध्याय में क्षैत्र क्षैत्रज विभाग योग, गुणत्रयविभाग योग, पुरूषोत्तम योग, दैवासुरसम्पद्विभाग योग, श्रद्धात्रयविभाग योग तथा मोक्ष सन्यास योग के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष की व्याख्या, मानव जीवन को किस प्रकार नैतिक रूप से आचरण करने की प्रेरणा देती है, सरल रूप में विश्लेषित किया गया है।

अन्तिम अध्याय में गीता के उन महत्वपूर्ण प्रसंगों को

निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत किया गया है जो समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण हैं ही, वैयक्तिक जीवन में भी अनुकरणीय होने के साथ उनका सामाजिक विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान है।

डॉ. जोशी ने अपनी पुस्तक में गीता में उद्धृत कर्मतत्वों की साम्यता को सामाजिक क्रिया के तत्वों के साथ तुलनात्मक विश्लेषण, प्रदत्त एवं अर्जित प्रस्थितियों के अनुरूप सकारात्मक भूमिकाओं की श्रेष्ठता, धर्म के समाजशास्त्र, सम्बन्धों के समाजशास्त्र एवं प्रकार्य जैसी कई समाजशास्त्रीय अवधारणाओं को गीता के जीवन एवं समय प्रबन्धन से जोड़कर जिस प्रकार समझने का प्रयास किया है यह उनके विस्तृत एवं गहन अध्ययन का परिणाम है। इस लेखन में विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखित धार्मिक ग्रन्थों, समाजशास्त्रियों की सन्दर्भ पुस्तकों, शोध अध्ययनों का अध्ययन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। पुस्तक के अन्त में गीता के कुल 18 अध्यायों के लगभग 700 श्लोकों में से 26 चयनित श्लोकों की प्रस्तुति भी सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। धर्म के समाजशास्त्र में यह पुस्तक विशेष योगदान रखती है और इस पुस्तक को पाठ्य सामग्री एवं शोध रचनाओं में सन्दर्भित किया जा सकता है। धार्मिक विषयों पर भविष्य में किये जाने वाले शोध कार्यों एवं धर्म में रूचि रखने वाले जिज्ञासु पाठकों के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। हम लेखक को उनके इस सुन्दर योगदान के लिए शुभकामनाऐं प्रेषित कर स्वस्थ जीवन की कामना करते हैं।

समीक्षक
डॉ. परेश द्विवेदी
विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)
प्रोफेसर सी.एल. शर्मा
आचार्य, समाजशास्त्र (सेवानिवृत)
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर (राज.)